ISSN 0973-3914

RESEARCH JOURNAL OF SOCIAL AND LIFE SCIENCES

HALF YEARLY, BILINGUAL (English/Hindi)

A REGISTERED REVIEWED/REFEREED RESEARCH JOURNAL
Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory©, ProQuest, U.S.A (Title Id: 715205)

अंक–XXIV-I हिन्दी संस्करण वर्ष–12 जून, 2018

UGC
Journal No. 40942
Impact Factor 3.112

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802,Year-1997
www.researchjournal.in

आई एस एस एन 0973–3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

पंजीकृत रिव्यूड/रेफर्ड रिसर्च जरनल

A Registered Reviewed/ Refereed

U.G.C. Journal No. 40942, Impact Factor 3.112
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest,
U.S.A. Title Id : 715205

अंक-XXIV-I हिन्दी संस्करण वर्ष-12 जून, 2018

प्रधान सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजगोपाल

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित
profbrajgopal@gmail.com

ऑनरेरी सम्पादक

डॉ. एस. अखिलेश

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल

प्राध्यापक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल

संयुक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर एन शर्मा

सेवानिवृत्त प्राध्यापक रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा की मुख्य शोध पत्रिका

म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत
पंजीयन क्रमांक 1802, सन् 1997

विषय विशेषज्ञ/परामर्श मण्डल

1. डॉ. अरविंद जोशी (प्राध्यापक) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
arvindvns@outlook.com
2. डॉ. रामशंकर (प्राध्यापक) रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर।
rs_dubey@yahoo.com
3. डॉ. डी. एस. राजपूत (प्राध्यापक) डॉक्टर हरिसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर।
drdiwakarrajeut@rediffmail.com
4. डॉ. बी. के. सिंह (प्राध्यापक) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी।
imdrbrajesh.kv@gmail.com
5. डॉ. अंजली श्रीवास्तव (प्राध्यापक) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा।
anjali_apsu@rediffmail.com
6. डॉ. बी. पी. बडोला (सेवानिवृत्त प्राध्यापक) कांगड़ा हिमाचल प्रदेश।
bpbadola@gmail.com
7. डॉ. आभा सक्सेना (सह प्राध्यापक) अग्रसेन कन्या स्वशासी महाविद्यालय वाराणसी।
drabhasaxena7@gmail.com
8. डॉ. प्रज्ञा मिश्रा (प्राध्यापक) महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट।
pragyamishramgcgv@gmail.com
9. डॉ. आशीष सक्सेना (प्राध्यापक) इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उत्तर प्रदेश।
ashish.ju@gmail.com
10. डॉ. ज्योति उपाध्याय (प्राध्यापक) विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश।
drjyotiupadhyay11@gmail.com
11. डॉ. प्रमिला पुनिया (सह प्राध्यापक इतिहास) राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान।
pramilapoonia@rediffmail.com
12. डॉ. रामलला शुक्ल (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। ramlalashukla666@gmail.com
13. डॉ. मृदुल जोशी (प्राध्यापक) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।
dr_mriduljoshi@yahoo.com
14. डॉ. के. के. शर्मा (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। sharmakktrs@gmail.com
15. डॉ. शैलजा दुबे (प्राध्यापक) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल। shailjadubey70@yahho.in
16. डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव (सह प्राध्यापक) शासकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान।
dr21pramila@gmail.com
17. डॉ. जयशंकर शाही (प्राध्यापक) अलवर राजस्थान।
jayshankarshahi@gmail.com
18. डॉ.एन. पी. त्रिपाठी (सेवानिवृत्त प्राध्यापक) रीवा मध्य प्रदेश।
19. डॉ. राजेश भट्ट, एच एन बी केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड।
rajeshbhatt11@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन–

- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेज (ISSN-0973-3914) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री, प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग–अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च, जून, सितंबर तथा दिसंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका रिव्यूड एवं रेफर्ड हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है। शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक, मोबाइल नं., ई–मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50–100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट– पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010 (फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए–4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com,**
  researchjournal.journal@gmail.com
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई–मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00

-सदस्यता शुल्क -		
अवधि	**व्यक्तिगत सदस्यता**	**संस्थागत सदस्यता**
पांच वर्ष	**2000.00**	**2500.00**
आजीवन (15 वर्ष)	**4500.00**	**5500.00**

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच–रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशकः **गायत्री पब्लिकेशन्स**
रीवा- 486001 (म.प्र.)

लेजर कम्पोजिंगः **अरविन्द कुमार व्यास**
रीवा (म.प्र.)

संपादकीय कार्यालय

एस.एस.डी.-4, 'गोकुल', विन्ध्य विहार कालोनी, ए.जी. कॉलेज रोड, दुर्गा मंदिर के सामने, रीवा- 486001 (म.प्र.)

E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com

www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

हमें अपने सदस्यों–शोधार्थियों, महाविद्यालयीन व विश्वविद्यालयीन शिक्षकों, संस्थाओं एवं अन्य सभी सुधी पाठकों के समक्ष रिसर्च जनरल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का 24वाँ अंक प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। यह शोध जरनल इस अंक से 12 वर्ष की विकास यात्रा पूर्ण कर लिया है। आज देश का ऐसा कोई प्रदेश नहीं है जहाँ इसके सदस्य न हों। सेण्टर फॉर रिसर्च स्टडीज देश के सभी क्षेत्रों में स्थित उच्च शिक्षा संस्थाओं से लगातार निरन्तर सम्पर्क में रहता है। यह जरनल स्तरीय शोध जरनल्स के सभी मानकों को पूरा करता है और सब्सक्राइबर्स को समय–समय पर इससे सम्बन्धित जानकारियाँ प्रदान करता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा शोध जरनल्स की सूची में इसका स्थान है।

इस समय देश में लोकसभा एवं राज्य के विधान मण्डलों के निर्वाचन एक साथ कराये जाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। संविधान लागू होने के पश्चात् देश में अनेक बार आम चुनाव एक साथ कराये जा चुके है। इस व्यवस्था से अनेक लाभ हैं और भारत सरकार एवं निर्वाचन आयोग को इस दिशा में संवैधानिक कदम उठाने चाहिए।

भारतीय समाज में इस समय बालिकाओं के साथ अनेक अमानवीय कृत्यों एवं अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। पीड़ित परिवार तथा भारतीय जनमानस ऐसे जघन्य अपराध करने वाले अपराधियों को फाँसी की सजा दिये जाने की मांग लगातार कर रहा है। भारतीय दण्ड संहिता में कठोर दण्ड के प्रावधान किये गये हैं, किन्तु न्यूनतम दण्ड फॉसी या, अंतिम श्वास तक जेल की सजा का प्रावधान यदि किया जाये तो वह समयोचित होगा।

किसानों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं के कारणों की खोज (शोध) आवश्यक है ताकि समाज और सरकार उन कारणों का समाधान कर सके। वैसे सरकार द्वारा इस समय किसानों के हित की अनेक योजनायें चलाई जा रही हैं।

समाज व राजनीति में अनेक राजनेताओं द्वारा इस समय असंसदीय भाषा का प्रयोग किया जाने लगा है, जिसे उचित नहीं कहा जा सकता है। संसद व विधान मण्डल के भीतर जिन बातों की चर्चा एवं बहस होनी चाहिए उनकी चर्चा आज बाहर मैदान में या सड़क में रैली आदि माध्यम से की जाने लगी है। संसदीय कार्यों में गतिरोध आज का ज्वलंत प्रश्न है। यही कारण है कि संसदीय सत्र अब कम दिनों के होते जा रहे हैं। मध्यप्रदेश विधान सभा का अभी हाल का सत्र मात्र दो दिन का रहा, जो संसदीय इतिहास में उल्लेखनीय है।

इसी तरह न्यायपालिका जिन उत्तरदायित्वों का निर्वहन स्वतंत्रता पूर्वक निष्पक्ष ढंग से कर रही है, उससे कुछ राजनेताओं को कठिनाई हो रही है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के विरुद्ध मानहानि का प्रस्ताव इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों तथा क्रीड़ा अधिकारियों के लिए सातवें वेतनमान की अनुशंसा कर दी है। लेकिन अधिकांश राज्य सरकारों द्वारा अभी तक नया वेतनमान नहीं दिया गया है। वास्तव में यह शर्मनाक है कि शिक्षकों को वेतनमान के लिए धरना, प्रदर्शन का आन्दोलन करना पड़े। शिक्षक यदि इस चिन्ता में डूब जाएगा तो अध्यापन और शोध की गुणवत्ता कैसे कायम होगी अतः राज्य सरकारों को चाहिए कि वे इस प्रश्न पर गंभीर चिंतन–मनन करें और शीघ्र ही शिक्षकों की माँगों पर ध्यान देकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत वेतनमान को अपने प्रदेश के विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के शिक्षकों को नियत तिथि 1 जनवरी 2016 से प्रदान करें।

हमें यह सूचित करते हुए भी हर्ष हो रहा है कि 13वें वर्ष में प्रारंभ से इस शोध जरनल का प्रकाशन छमाही के स्थान पर तिमाही किये जाने का निर्णय लिया गया है। इस हेतु भारत सरकार के संस्थान 'निस्केयर' से स्वीकृति हेतु लिखा गया है। प्रथम तिमाही अंक सितम्बर 2018 का आयेगा। इस तरह जरनल का प्रकाशन अब प्रत्येक वर्ष के मार्च, जून, सितम्बर और दिसम्बर माह के अंक के रूप में हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में होगा।

डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

(प्रोफेसर ब्रजगोपाल)
प्रधान संपादक

अनुक्रमणिका

1. कार्यकारी महिलाओं में जनसंख्या नियंत्रण के सम्बन्ध में अभिमतः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण 09
अखिलेश शुक्ल

2. भोपाल नगर की शासकीय छात्राओं में आधुनिक जनसंचार माध्यमों की उपयोगिता पर एक अध्ययन 18
रेणु वर्मा

3. भारत की कुछ प्रमुख जनजातियाँ, उनकी आर्थिक व्यवस्था एवं समस्याएँ 32
विजय कुमार

4. धूम्रपान : परिवर्तित परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित) 43
प्रियंका कुमारी

5. स्त्री शिक्षा की महत्ता और समाज 50
नीलम श्रीवास्तव

6. गोड़ जनजाति–एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (शहडोल जिले के विशेष सन्दर्भ में) 53
ओम प्रकाश वर्मा

7. भारत में महिलाओं के मानवाधिकार की स्थिति 59
रंगीला शाह

8. राजनीति के निर्धारक तत्वों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र के विशेष संदर्भ में) 72
मृत्युंजय भारद्वाज

9. व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन : गढ़वाल जनपद के विशेष सन्दर्भ में 80
हरिमोहन भण्डारी
अनिता रूडोला
के.सी. पुरोहित

10. महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का प्रभाव एवं मूल्यांकन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में) 90
मनीष शुक्ला
अभिषेक कुमार मालवीय

11. टिहरी जनपद में आर्थिक विकास, कृषि एवं सम्बद्ध क्रियायें 100
विजय कुमार मुयाल
राजेश भट्ट

12.	गढवाल में मंदिर व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययनः कमलेश्वर मंदिर के विशेष सन्दर्भ में **सत्येन्द्र धर्म्वाण** **शन्तन सिंह नेगी**	112
13.	चित्रकूट की ऐतिहासिकता एवं भौगोलिक परिक्षेत्र **प्रज्ञा मिश्रा**	129
14.	मनोहरश्याम जोशी के कथा–साहित्य में वर्णित ह्रासोन्मुख जीवन–मूल्य **मृदुल जोशी** **अनिका सिंह**	133
15.	नारद भक्ति सूत्र का वैशिष्ट्य **वेद प्रकाश मिश्र** **संतोष कुमार शर्मा**	138
16.	पारिजात हरण चम्पू काव्य में ईर्ष्या का स्वरूप **साक्षी गुप्ता**	143
17.	वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा में श्रीशंकरदेव की भूमिका **परिस्मिता बरदलै**	148
18.	'दस्तावेज' : एक परिचयात्मक मूल्यांकन **गुलाब सिंह**	154
19.	छत्तीसगढ़ लोकनाट्य 'नाचा' में लोक–चेतना **अर्चना झा** **भगवती साहू**	163
20.	पं. माधवराव सप्रे के निबंधो में शिक्षा और नीति **जी.पी. जायसवाल**	167
21.	बघेलखण्ड की सांगीतिक धरोहर–संगीत सम्राट तानसेन एवं उनके ध्रुपद **वाणी साठे**	173
22.	व्यक्ति की खेल में सहभागिता के मनोवैज्ञानिक कारणों का विश्लेषण **अर्चना दुबे**	180
23.	चित्रकला में प्रतीको की भूमिका **निशा गुप्ता**	186
24.	भारत में कचरे की समस्या (द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित) **आकांक्षा सारस्वत** **दीपमाला श्रीवास्तव**	192

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

कार्यकारी महिलाओं में जनसंख्या नियंत्रण के सम्बन्ध में अभिमतः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

* अखिलेश शुक्ल

सारांश– *वर्तमान समय में जनसंख्या की समस्या मानवीय समस्याओं में प्रमुख है। इसका प्रभाव देश की भौतिक एवं आर्थिक उन्नति पर पड़ता है। दुनिया में सबसे अधिक तेजी से जनसंख्या वृद्धि भारत में होती है। आज यह भारत की सबसे बड़ी समस्या बन गयी है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है। जनसंख्या वृद्धि के अनेक कारण है जैसे अशिक्षा, बेहतर चिकित्सा सुविधा, बाल विवाह, अंधविश्वास आदि। जनसंख्या वृद्धि से अनके समस्याएं उत्पन्न हो रही है जिनमें प्रमुख है पर्यावरण प्रदूषण, गरीबी, बेरोजगारी, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए प्रयास करना आवश्यक है तथा इसके लिए जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण करना सबसे ज्यादा आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि में नियंत्रण रखने में विज्ञान द्वारा किये गए उपाय कारगर साबित हो सकते है। आज विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि इसके माध्यम से जनसंख्या वृद्धि जैसी जटिल समास्या पर काबू पाया जा सकता है तथा हमारा भारत देश विकास की ओर अग्रसर हो सकता है।*

मुख्य शब्द– नियंत्रण जनसंख्या वृद्धि, स्लम, जन्मदर, मृत्युदर, कार्यरत महिलायें, आर्थिक विकास, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवायें।

जनसंख्या किसी भी राष्ट्र के लिए अमूल्य पूंजी होती है, जो वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करती है, वितरण करती है और उपभोग भी करती है। जनसंख्या देश के आर्थिक विकास का संवर्धन करती है। इसीलिए जनसंख्या को किसी भी देश के साधन और साध्य का दर्जा दिया जाता है। लेकिन अति किसी भी चीज की अच्छी नहीं होती। फिर चाहे वह अति जनसंख्या की ही क्यों न हो? वर्तमान में भारत की जनसंख्या वृद्धि इसी सच्चाई का उदाहरण है। अनुमान है कि 2025 तक भारत की जनसंख्या बढकर 15 अरब हो जाएगी। वर्ष 2030 तक यह आबादी जहाँ 1.53 अरब हो जाएगी वहीं 2060 तक यह बढकर 1.7 अरब हो जाएगी। इतना ही नहीं, 2030 तक भारत चीन से भी आगे निकल जाएगा। जनसंख्या वृद्धि के कारण पूरे देश की दो तिहाई शहरी आबादी को 2030 में शुद्ध पेय जल नसीब नहीं होगा। वर्तमान में पानी की प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति उपलब्धता जहाँ 1525 घन मी. है, वहीं 2025 में यह उपलब्धता मात्र 1060 घन मी. होगी। वर्तमान में प्रति दस हजार व्यक्तियों पर 3 चिकित्सक तथा 10 बिस्तर है, 2030 में उनके बारे में सोचना भी मुश्किल होगा। जनसंख्या वृद्धि के बोझ का ही यह परिणाम है कि एक तरफ जहाँ हमारी जमीन

* प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा

उर्वरकों के कारण अनउपजाऊ होती जा रही है। पैदावार कम होने के कारण लोग आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं। चार दशक पीछे देखें तो देश में गरीबी का प्रतिशत आधा रह गया है । सिर्फ शहर की 10 प्रतिशत आबादी का ही यह ऑकड़ा 62 रुपये प्रतिदिन है। जनसंख्या वृद्धि का ही परिणाम है कि देश में शहरी आबादी के साथ ही साथ स्लम आबादी भी लगातार बडती जा रही है। देश की कुल आबादी का 1.3 भाग झुग्गी, झोपड़ियों में रहती है अर्थात मुंबई में 1.63 लाख, दिल्ली में 1.18 लाख तथा कोलकता में 1.49 लाख लोग स्लम सीमा में रहते हैं। विश्व के कृषि भू-भाग का मात्र 2.4 प्रतिशत भारत में है जबकि यहाँ की आबादी दुनिया की कुल आबादी का 16.7 प्रतिशत है। विश्व में सबसे पहले 1952 में आधिकारिक रूप से जनसंख्या नियंत्रण हेतु परिवार नियोजन कार्यक्रम को अपनाया। हमारे देश में विज्ञान ने काफी विकास किया है। आज विश्व मे जब कही भी विज्ञान के विकास की चर्चा होती है तो हमारे देश का नाम अवश्य लिया जाता है। विज्ञान के क्षेत्र में व्यापक स्तर पर विकास कर लेने के बाद भी हमारे देश का नाम विकसित देशों की सूची में नही आता आज भी भारत की गिनती विकासशील देशों मे होती है। इसका कारण है, हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या। अधिक जनसंख्या होने के कारण विज्ञान का लाभ सही ढंग से हर व्यक्ति के नहीं पहुँच पाता। इसीलिए हमारे देश का जितना विकास होना चाहिए नही हो पा रहा है। जनसंख्या वृद्धि का स्वरूप जानने से पहले हमें जन्मदर और मृत्यदर को समझना आवश्यक है। जन्म दर प्रतिवर्ष प्रति हजार व्यक्ति पर पैदा होने वाले जीवित बच्चों की संख्या को जन्म दर कहते है। मृत्युदर प्रतिवर्ष प्रति हजार व्यक्ति पर मृत व्यक्तियों की संख्या को मृत्युदर कहते है। अर्थात एक वर्ष में पैदा हुए बच्चों की संख्या में से उस वर्ष में मरने वालों की संख्या को घटा दें तो जनसंख्या वृद्धि का पता चल जाता है। दुनिया में सबसे अधिक तेजी से जनसंख्या वृद्धि भारत में हो रही है। पूरे विश्व में हर साल 8 करोड़ की जनसंख्या वृद्धि होती है जिसमें से 2 करोड़ की वृद्धि अकेले भारत करता है। अर्थात पूरी दुनिया की कुल जनसंख्या वृद्धि का एक चौथाई हिस्सा अकेले भारत के हिस्से में आता है। भारत में प्रति मिनट 52 बच्चे पैदा होते है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा सबसे बडा देश है। पहले स्थान पर चीन है। किन्तु क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का स्थान विश्व में सातवाँ है। क्षेत्रफल के अनुपात में भारत की जनसंख्या कई गुना है। इसलिए यहाँ जनसंख्या वृद्धि के कारण जनजीवन से जुडी अनेक समस्याएं पैदा हो गई है।

अध्ययन के उद्देश्य– वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य कार्यरत महिलाओं में जनसंख्या नियंत्रण के सम्बन्ध में अभिमत ज्ञात करना है।

अध्ययन पद्धत्ति– इस सन्दर्भ में शोध की गहनता कार्यरत महिलाओं को निदर्श के रूप में चयनित करके उनकी संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक इकाईयों के अन्वेषण से जुड़ी हुई है। रीवा नगर में कार्यरत महिलाओं में से 200 का चयन इस पद्धति द्वारा किया गया है। चयन करते समय कार्यरत महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति को ध्यान में रखा गया है। चयन की गई महिलाओं का संख्यात्मक विवरण नीचे तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

आय स्तर	मासिक आय	निदर्श के रूप में चयनित कार्यरत महिलायें	
		संख्या	प्रतिशत
निम्न आय स्तर	10,000 रू. से कम	66	33
मध्य आय स्तर	10,000 रू. से 20,000 रू.	95	47.5
उच्च आय स्तर	20,000 रू. से अधिक	39	19.5

उक्त स्थिति को नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

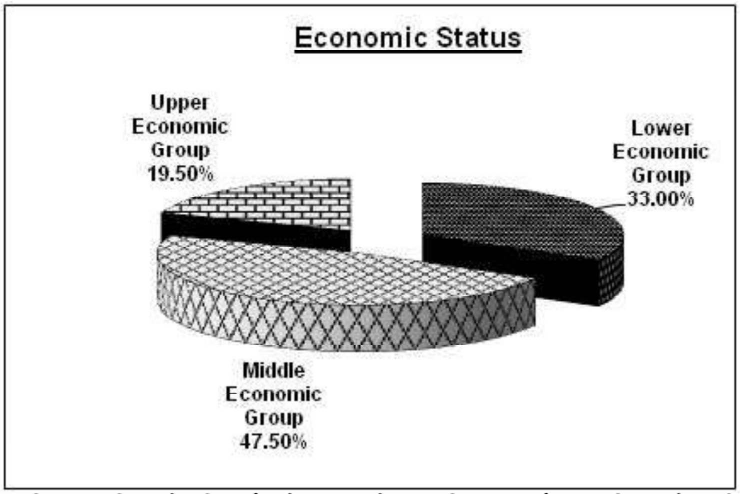

सामाजिक दृष्टि से निदर्श के रूप में चयनित कार्यरत महिलाओं की प्रस्थिति निम्नवत् है।

सामाजिक प्रस्थिति	निदर्श के रूप में चयनित कार्यरत महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत
विवाहित	140	70
अविवाहित	40	20
विधवा/परित्यक्ता	20	10

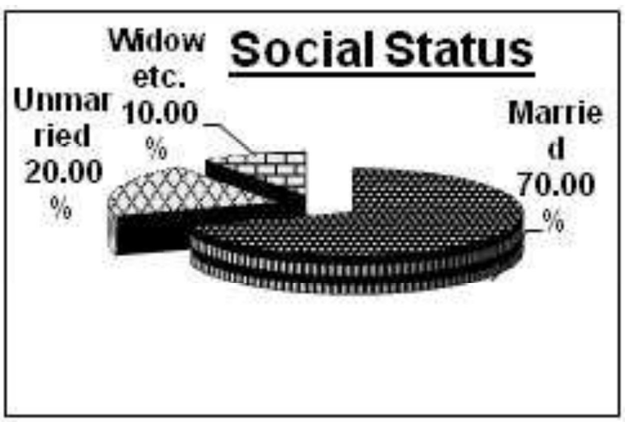

भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवो में रहती है। वहाँ जनसंख्या नियंत्रण के

उपायो का प्रयोग न हो पाने के कारण जन्म दर अधिक है। किन्तु शहरो में रोजगार की तलाश में गांव के लोगो का पलायन होने से शहरो की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। इससे शहरो में स्थान की कमी, पीने के पानी की समस्या, बिजली और यातायात की समस्या बढ जाती है।

देश का आर्थिक विकास जनसंख्या के आकार तथा गुणों पर निर्भर करता है। किसी देश की जनसंख्या वहां के श्रम, संगठन तथा साहस का स्रोत होती है। ये उत्पादन के प्रमुख सक्रिय साधन होते है। वास्तव में देश का कुल उत्पादन तथा विकास उसकी जनसंख्या पर ही निर्भर करता है। अतः जनसंख्या का आवश्यकता से कम या अधिक होना देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। जनसंख्या का आधिक्य देश के लिए खतरा बन जाता है। यही कारण है कि आज हमारे देश में जनसंख्या की समस्या सबसे गंभीर एवं महत्वपूर्ण समस्या बन गई है। विगत कुछ वर्षो में भारत की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई जिसके कारण निर्धनता तथा बेरोजगारी की समस्याएं भी भयंकर रूप धारण कर गई हैं। कार्यरत महिलाओं ने भारत में जनसंख्या वृद्धि के निम्न कारण बताये हैं -

* 80 प्रतिशत कार्यरत महिलाओं ने कहा है कि भारत में जन्म दर बहुत ऊंची है। ऊंची जन्म दर के अनेक कारण हैं जैसे- बाल विवाह, अनिवार्य विवाह, भाग्यवादिता, पारिवारिक मान्यता, अंध विश्वास, निर्धनता, निम्न जीवन स्तर तथा स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धि आदि।
* 75 प्रतिशत कार्यरत महिलाओं का मानना है कि जनसंख्या वृद्धि का एक कारण मृत्यु दर में कमी भी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सेवाओं में काफी वृद्धि हुई है। जिसके कारण औसत आयु बढ़ी है तथा मृत्यु दर घटी है। इसने भी जनाधिक्य को और बढ़ाया है।
* 85 प्रतिशत कार्यरत महिलाओं की मान्यता है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण यहां के निवासियों का निम्न जीवन स्तर है। अशिक्षित होने के कारण लोग जनसंख्या की समस्या को नहीं समझ पाते।
* 50 प्रतिशत कार्यरत महिलाओं की धारणा है कि भारत की जलवायु गर्म है। गर्म जलवायु वाले देशों में निवास करने वाले व्यक्तियों में परिपक्वता की अवस्था शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है, जिससे विवाह जल्दी कर दिए जाते हैं और संतानोत्पत्ति की अवधि लंबी हो जाती है।
* 40 प्रतिशत कार्यरत महिलाओं का मानना है कि इन सबके अतिरिक्त भारत में जनसंख्या वृद्धि का कारण शरणार्थियों का आगमन है। बंगलादेश के बन जाने के बाद लगभग एक करोड़ शरणार्थी भारत में आकर बस गए।
* 65 प्रतिशत कार्यरत महिलाओं ने बताया है कि अशिक्षा, निर्धनता तथा पिछड़ेपन के कारण भारत की अधिकांश जनसंख्या को परिवार कल्याण कार्यक्रमों का ज्ञान नहीं है। अतः वे सीमित परिवारों के लाभों से अनभिज्ञ रहते हैं। इससे जनसंख्या में वृद्धि होती है। जनसंख्या विस्फोट भारत के आर्थिक विकास में सबसे अधिक बाधक है। जनसंख्या वृद्धि से देश पर अनेक प्रभाव पड़ते हैं। जैसे - खाद्यान्न की समस्या, बेरोजगारी की समस्या, आश्रितों की संख्या और मूल्य स्तर में वृद्धि तथा भुगतान संतुलन की समस्या आदि। प्रश्न उठता है कि जनसंख्या की इस समस्या का समाधान कैसे हो तथा कैसे बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित किया जाए ? वैसे तो सरकार इस समस्या के समाधान के लिए अनेक कार्य

कर रही है, लेकिन देश के प्रत्येक नागरिक को इस ओर ध्यान देना चाहिए। विशेष कर महिलाओं को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि नारी अब दिन-प्रतिदिन प्रगति पथ पर अग्रसर हो रही है। समय एवं परिस्थितियों के परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप अब नारी प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति कर रही है वह पुरूषों के पीछे रहने वाली नारी नहीं है। तात्पर्य यह है कि आधुनिक युग में नारी ने आश्चर्य चकित करने वाली प्रगति की है। समय पड़ने पर नारी ने अपने परिवार, समाज तथा राष्ट्र के लिए बहुत से कार्य किए हैं। वर्तमान समय में हमारा देश तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या से चिंतित है। जिससे अनेक समस्याएं पैदा हो रही है। अगर नारी चाहे तो जनसंख्या नियंत्रण में भी देश का साथ दे सकती है। रीवा नगर में कार्यरत महिलाओं ने जनसंख्या को नियंत्रित करने में नारी की भूमिका के संदर्भ में अपने अभिमत निम्नवत प्रस्तुत किए हैं।

जनसंख्या नियंत्रण के सम्बन्ध में कार्यरत महिलाओं का अभिमत

जनसंख्या नियंत्रण के साधन	उत्तरदात्री कार्यकारी महिलाओं की संख्या					
	विवाहित (140)		अविवाहित (40)		विधवा/ परित्यकता (20)	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
शिक्षा सुविधाओं को अपना कर	100	71.4	20	50	15	75
दूसरों को शिक्षित करके	50	35.7	20	50	10	50
नियमों का कठोरता से पालन करके	20	14.2	10	25	10	50
मानसिकता में बदलाव लाकर	60	42.8	20	50	10	50
परिवार नियोजन के साधन अपनाकर	140	100	40	100	10	50
समाज सुधार कार्यक्रम	20	14.2	10	25	08	40
अनाथ बच्चों को अपनाकर	25	17.8	05	12.5	20	100
आत्म निर्भर बनकर	100	71.4	15	37.5	15	75

रीवा नगर की कार्यरत महिलाओं के अभिमतों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समय में जनसंख्या को नियंत्रित करने में महिलायें अपनी भूमिका अनेक प्रकार से निभा सकती है, जैसे -

1. **शिक्षा सुविधाओं को अपना कर**– सर्वप्रथम नारी को स्वयं शिक्षित होना चाहिए। यह एक तथ्य है कि शिक्षित परिवारों में सदस्यों की संख्या कम होती है। एक नारी के शिक्षित होने से दो परिवार शिक्षित होते हैं। जब भारत में शिक्षित लड़कियों की संख्या बढ़ेगी तो वे स्वतः ही अपने परिवार को सीमित रखेंगी और इस प्रकार जनसंख्या की समस्या, समस्या नहीं रहेगी।

2. **दूसरे को शिक्षित करके**– पढ़ी-लिखी लड़की दूसरों को शिक्षित करके भी इस समस्या को कम कर सकती है। वह अपने परिवार तथा आसपास की कम पढ़ी-लिखी, बिना पढ़ी महिलाओं को शिक्षित करके जनसंख्या संबंधी समस्या से परिचित करा सकती है और वह उन्हें समझा सकती है कि किस प्रकार जनसंख्या की समस्या का समाधान हो सकता है।

3. **नियमों का कठोरता से पालन करके**– लड़के तथा लड़कियों की विवाह योग्य आयु 21 व 18 वर्ष है। लड़कियों को 18 वर्ष से पहले शादी नहीं करनी चाहिए तथा

इन नियमों का उल्लंघन करने वाले माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों का विरोध करना चाहिए तथा उन्हें समझाना चाहिए।

4. **मानसिकता में बदलाव लाकर**- किसी-किसी परिवार में पुत्र प्राप्ति की इच्छा के कारण कई-कई बच्चों का जन्म हो जाता है। भारतीय परिवार में पुत्र का होना जरूरी माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि पुत्र ही वंश को चलाता है। महिलाओं को अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए तथा परिवार के बड़ों को भी समझना चाहिए कि बेटी-बेटा दोनों समान होते है। चाहे बेटा हो या बेटी परिवार को सीमित रखना चाहिए।

5. **परिवार नियोजन अपनाकर**- महिलाओं को परिवार नियोजन का पालन करना चाहिए। परिवार नियोजन से तात्पर्य है कि विवाहित दम्पति द्वारा अपने परिवार की संख्या सीमित रखने और बच्चों के जन्म के मध्य पर्याप्त अंतर रखने से है। इससे मां का स्वास्थ्य ठीक रहेगा तथा वह बच्चों का पालन-पोषण ठीक प्रकार से कर सकेगी। महिलाओं को ''दो बच्चों का लक्ष्य महान, लड़का-लड़की एक समान'' अथवा ''हम दो हमारे दो'' जैसे आदर्श अपनाने चाहिए तथा इनके लिए दूसरों को भी प्रेरित करना चाहिए।

6. **गर्भ निरोधक साधनों का प्रयोग**- आज के वैज्ञानिक युग में गर्भ निरोधक साधन आसानी से उपलब्ध हैं। देर से बच्चे पैदा करने के लिए तथा दो बच्चों के जन्म में अंतर करने के लिए महिलाएं इन साधनों का प्रयोग कर सकती हैं तथा बच्चों का जन्म हो जाने पर नसबंदी भी करा सकती हैं।

7. **समाज-सुधार कार्यक्रम में भाग लेकर**- जनसंख्या की समस्या को दूर करने के लिए महिलाएं समाज-सुधार कार्यक्रमों में भाग लेकर लोगों में प्रेरणा जाग्रत कर सकती है। घर-घर जाकर विशेष कर गांव में जाकर लोगों को अपने परिवार को सीमित रखने की बात समझा सकती है तथा गांव की अशिक्षित तथा गरीब महिलाओं को गर्भ निरोधक साधनों के बारे में जानकारी दे सकती है।

8. **अनाथ बच्चों को अपना कर**- जिन महिलाओं के बच्चे नहीं होते, वे अनाथ बच्चों को अपना कर समाज कल्याण में योगदान दे सकती है।

9. **आत्मनिर्भर बनकर**- लड़कियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करके आत्मनिर्भर बनना चाहिए। ज्यादातर निर्धन परिवारों में ही सदस्यों की संख्या अधिक होती है तथा मनोरंजन आदि का अभाव रहता है। प्रायः परिवार की स्थिति को सुधारने के लिए महिलाएं आत्मनिर्भर बनकर जीवन स्तर में सुधार ला सकती हैं तथा जनसंख्या नियंत्रण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

10. **शिक्षा का प्रसार**- भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या गश्वंवों में निवास करती है। जनसंख्या में यह तीव्र वृद्धि देश के लिए अभिशाप बनती जा रही है। फलस्वरूप गरीबी, बेराजगारी तथा महंगाई आदि समस्यायें दिनों दिन बढ़ती जा रही है। गांवों में शिक्षा की कमी और अज्ञानता के कारण तथा नगरों में गंदी बस्तियों के लोगों में शिक्षा की कमी के कारण जनसंख्या नियंत्रण का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो पा रहा है। अतएव लोगों में शिक्षा का प्रसार कर ही जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण किया जा सकता है।

11. **परिवार नियोजन**- जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए परिवार नियोजन के विभिन्न कार्यक्रमों का प्रचार-प्रसार अति आवश्यक है। परिवार नियोजन कार्यक्रम को जन आंदोलन का रूप दिया जाना चाहिए।

12. **विवाह की आयु में वृद्धि करना**– हमारे देश में आज भी बाल विवाह की प्रथा है। अतः बाल-विवाह पर कारगर कानूनी रोक लगायी जानी चाहिए। साथ ही लड़के-लडकियों की विवाह की उम्र को भी बढ़ाई जानी चाहिए।

13. **संतानोत्पत्ति की सीमा निर्धारण**– परिवार, समाज और राष्ट्र के हित में संतान की सीमा निर्धारण करना अति आवश्यक है। जनसंख्या विस्फोट से बचने के लिए प्रत्येक दम्पत्ति के संतानों की संख्या 1 या 2 करना अति आवश्यक है। चीन में इसी उपाय को अपनाकर जनसंख्या वृद्धि में नियंत्रण पा लिया गया है।

14. **सामाजिक सुरक्षा**– हमारे देश में वृद्धावस्था, बेकारी अथवा दुर्घटना से सुरक्षा न होने के कारण लोग बड़े परिवार की इच्छा रखते हैं। अतएव यहश्वं सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमों में बेराजगारी भत्ता, वृद्धावस्था, पेंशन, वृद्धा-आश्रम चलाकर लोगों में सुरक्षा की भावना जाग्रत की जाय।

15. **सन्तति सुधार कार्यक्रम**– जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के लिए सन्तति सुधार कार्यक्रमों को भी अपनाया जाना चाहिए। संक्रामक रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों के विवाह और सन्तानोत्पत्ति पर प्रतिबंध लगाया जाये।

16. **जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास**– देश में कृषि व औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाकर लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयास किये जाने चाहिए। जीवन स्तर के ऊँचा उठ जाने पर लोग स्वयं ही छोटे परिवार के महत्व को समझने लग जायेंगे।

17. **स्वास्थ्य सेवा व मनोरजन के साधन**– देश के नागरिकों की कार्यकुशलता एवं आर्थिक उत्पादन की क्षमता को बनाये रखने के लिए सार्वजनिक व घरेलू स्वास्थ्य सुविधा एवं सफाई पर ध्यान देना आवश्यक है। डाक्टर, नर्स एवं परिचारिकाओं आदि की संख्या में वृद्धि किया जाना चाहिए। ग्रामीणों को स्वास्थ्यप्रद जीवन व्यतीत करने तथा मनोरंजन के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध कराया जाना चाहिए और इस बात का विशेष ध्यान रखा जाये कि गॉवों में स्त्री पुरूषों के लिए एकमात्र मनोरंजन का साधन न रहे।

18. **जनसंख्या शिक्षा**– ये एक ऐसा कार्यक्रम है जो सरकार तथा स्वयं सेवी संगठनो द्वारा अपने अपने स्तर पर चलाया जा रहा है। उसके माध्यम से लोगो की बढती हुई जनसंख्या से उत्पन्न कठिनाईयाँ, दुष्प्रभावो, खान पान, बीमारी, स्वास्थ्य संबंधी गडबडियाँ, विवाह योग्य सही उम्र आदि की जानकारी दी जाती है। अब तो जनसंख्या शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। ताकि युवाओ में जनसंख्या के प्रति जागरूकता आ सके। लोगो को जागरूक बनाकर जनसंख्या वृद्धि को कम किया जा सकता है।

19. **परिवार नियोजन संबंधी शिक्षा**– लोगो को परिवार नियोजन की जानकारी देकर जनसंख्या वृद्धि में नियंत्रण किया जा सकता है। गर्भ निरोधकों के प्रयोग से जिसमें निरोध, कापरटी, नसबंदी, गर्भ निरोधको की गोलियों का सेवन इत्यादि की जानकारी देकर तथा इनका प्रचार, प्रसार करके जनसंख्या वृद्धि मे काबू पाया जा सकता है।

20. **महिला शिक्षा**– हमारे देश में आज भी महिलाओं की शिक्षा का स्तर पुरूषों की अपेक्षा काफी कम है। महिलाओं के शिक्षित न होने के कारण व जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों को नही समझ पाती। वे अपने खान पान पर भी ध्यान नहीं देपाती तथा जनसंख्या नियंत्रण में अपना योगदान नहीं दे पाती। जिन क्षेत्रों मे महिलाओं का शिक्षा स्तर

कम है। वहां जनसंख्या वृद्धि दर अधिक है। पढ़ी लिखी महिलाएं जनसंख्या नियंत्रण के प्रति जागरूक होती है। इस तरह महिलाएं शिक्षित होंगी तो वे अपने बच्चों के खानपान, पोषण तथा स्वास्थ्य पर भी ध्यान देंगी तथा जनसंख्या पर भी नियंत्रण होगा और एक स्वस्थ समाज का निर्माण होगा।

21. **यौन शिक्षा**– आज भी हमारे समाज में यौन संबंधों को छिपाने की चीज समझा ज्ञाता है। लोग यौन संबंधी बातें तथा उससे जुड़ी समस्याओं पर खुलकर बातें करने से कतराते है। यौन संबंधी जानकारी न होने के कारण लोग असमय तथा अधिक बच्चे पैदा करते है। यौन संबंधी जानकारी से जनसंख्या वृद्धि को रोकने में सहायता मिल सकती है।

22. **जन संपर्क**– कई स्वयं सेवी संगठन भी लोगो के बीच जाकर उनसे बातचीत कर जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं की जानकारी देते हैं। उन्हें नुक्कड नाटको, सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा तरह-तरह की प्रतियोगिताएं कराकर जनसंख्या वृद्धि के कारणों तथा समस्याओं की जानकारी देकर उन्हे जागरूक बनाते है।

23. **जनसंचार माध्यमों द्वारा प्रचार प्रसार**– सरकार समाचार पत्रो, पत्रिकाओं, रेडियों, टेलीविजन पर परिवार नियोजन तथा जनसंख्या शिक्षण संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा दे रही है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि से होने वाली समस्याओं तथा उन्हें रोकने के उपयों का प्रचार प्रसार भी करती है।

उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त अन्योन्य उपायों से जन्मदर में कमी करना विवाह की अनिवार्यता को ढीला बनाना, स्त्री शिक्षा, स्त्रियों के आर्थिक स्वावलम्बन पर जोर देना, गर्भपात एवं बन्ध्याकरण की विश्वसनीय सुविधाओं का विस्तार करना, अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाले दम्पत्ति को सरकारी सुविधाओं से वंचित करना एक या दो बच्चे पैदा करने वाले दम्पत्ति को विभिन्न शासकीय लाभ दिया जाना चाहिए। 1970 के बाद चीन ने 'एक दम्पत्ति एक सन्तान' का नारा देकर अपनी बढ़ती जनसंख्या को नियंत्रित करने में सफलता प्राप्त की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नारी जनसंख्या वृद्धि जैसी समस्या के समाधान में राष्ट्र का साथ दे सकती है। यदि महिलाएं शिक्षा ग्रहण कर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करें तो वे समाज को अनेक कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, आडंबरों से मुक्त करा सकती है तथा नारी अपनी सजगता से जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने में अपनी भूमिका निभा सकती है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Gore, M.S., 'Urbanization and Family Change', Popular Prakashan, Bombay, 1968 cited by Rai S., Women Labour, page 11.
2. Conklin, G.H., 'Secularization and Economic Development in India: An Exploratory Study', Asian Survey, Vol. 14, pages 418-428.
3. Kapadia, K.M., 1966. Marriage and Family in India, Oxford University Press, Bombay, cited by Rai Saroj, opp. cited, page 11.
4. Upadhyay, N. and R. Pandey, 1990, Women in India : Past and Present, Chug Publication, Allahabad, pages 43-50.
5. Desai, A.R. 1966, Social Background of Indian Nationalism, Bombay.
6. Ibid.
7. Thomas, M.M., 1991, Tradition and Modernity in Development of People,

Mainstream, Vol. 29, No. 14, (26 January), pages 39-43.
8. Mies, M. 1980, Capitalist Development and Subsistence Production : Rural Women in India, Bulletin of Concerned Asian Scholars, Vol. 12, No. 1, pages 2-14.
9. See, Oakley, A. 1972, Sex. Gender and Society, Temple Smith, London.
10. Desai, N. 1957, op. cited.
11. Kapadia, K.M. 1968, op. cited.
12. De Bary, W.T. (ed.), 1968. Source of Indian Tradition, Vol. II, Columbia University Press, New York and Panikkar, K.M. 1963. The Foundation of New India, London, page 120.
13. http://www.essaysinhindi.com/trending
14. शर्मा, क्षमा, ''स्त्री का समय'', मेघा बुक्स, दिल्ली, 2001, पृष्ठ 12-13.
15. प्रो. एम. एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में जातिवाद, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1971, पृष्ठ 16-17.

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

भोपाल नगर की शासकीय छात्राओं में आधुनिक जनसंचार माध्यमों की उपयोगिता पर एक अध्ययन

* रेणु वर्मा

सारांश– *जनसंचार वह अप्रत्यक्ष माध्यम है जो संचार के प्रत्यक्ष माध्यमो द्वारा शिक्षा को सहयोग करता है वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूर्णतः तकनीकों और संयत्रों पर निर्भर है। शिक्षा के इस प्रवाह में शासकीय विघालयों की छात्राओं में भी आधुनिक जनसंचार माध्यमों की पहुँच को नकारा नही जा सकता। शिक्षा व्यवस्था का प्रत्येक क्षेत्र जनसंचार के सम्पूर्ण माध्यमों को सहजता से स्वीकार कर चुका है। आज न सिर्फ अध्यापन के क्षेत्र में अध्यापकों बल्कि स्वयं छात्रों द्वारा संचार के विभिन्न माध्यमों का उपयोग शिक्षा और दैनिक जीवन में बड़ी ही सरलता से किया जाता है। प्रस्तुत शोध में उच्च शासकीय विद्यालयों में छात्राओं द्वारा प्रयोग किये जाने वाले जनसंचार एवं आधुनिकता के परिप्रेक्ष में कुछ प्रश्न तथा स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए गये हैं।*

मुख्य शब्द– जनसंचार, ज्ञान, प्रक्रिया, माध्यम

जनसंचार सूचनाओं की वह प्रक्रिया है जिसमें ज्ञान और शब्द का संकलन एवं संपादन कर आमजन तक आसानी और सरल माध्यमों द्वारा, अधिक से अधिक लाभान्वित किया जा सकता है। जनसंचार के माध्यमो कुछ भी हो सकते है- जैसे पुस्तके, अखबार, पत्र-पत्रिकाएं, पर्चे, रेडियो,चलचित्र, वृत्तचित्र, टेलीविजन, सी. डी. या डी. वी. डी. प्लेयर, कम्प्यूटर, सिनेमा, इंटरनेट, टेलीफोन, प्रोजेक्टर, लैपटॉप, विडियो गेम और मोबाईल इसके अलावा सर्चइंजिन एवं सोसल नेटवर्किंग साइटस इत्यादि। प्रस्तुत अध्ययन में भोपाल नगरीय क्षेत्र के उच्च शासकीय विद्यालयीन छात्राओं पर जनसंचार एवं आधुनिकता के परिवेश को ध्यान में रखते हुए शिक्षा से जुड़े कुछ प्रश्न तथा स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए गये है। संचार के उन माध्यमों का अध्ययन करना जिनके बारे में छात्राओं ने अपने शिक्षण संस्थान परिवार, घर, सामाजिक परिवेश आदि में सुना, देखा, जाना, या प्रयोग किया है और अपने जीवन को लाभान्वित किया है। इसी प्रक्रिया में जे.बी. विलैनीलय '[1]'के अनुसार 'सभी प्रकार की शिक्षा संचार के माध्यमों द्वारा छत्रगणों को संचारित की जाती रही है'। शिक्षा और संचार दो अलग नही अपितु एक ही पहलू है जिसे अलग-अलग नजरों से देखा जाता है। वर्तमान शिक्षा संचार माध्यमों द्वारा संचारित एवं संपादित की जाती है चाहे वह विद्यालय में शिक्षक के माध्यम से पाठ्क्रम का प्रयोग हो या फिर तकनीको द्वारा प्रयोगिक शिक्षा माध्यम हो।

''श्यामाचरण दूबे के अनुसार'' '[2]' जनसंचार की प्रक्रिया तब पूर्ण होती है जब एक स्थान या व्यक्ति से दूसरे स्थान या व्यक्ति, या व्यक्तियों तक सूचना पहुँचायी जाती है।

=========================

* शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, बरकतउल्ला विश्वविधालय, भोपाल (म.प्र.)

जनसंचार सदैव हुए किसी भी घटना समस्या एवं विचारों को ज्ञानवर्धक रूप में विकसित कर समाचार, कहानी, कथा, फिल्मों एवं अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से प्रसारित करता रहता है, इसमें अब एक अनोखपन भी पाया जाता है। कभी इस संचार को टेलीविजन और रेडियों के माध्यम से देखते-सुनते है, तो कभी अपने मनचाहे कार्यक्रमों को इंटरनेट और कम्प्यूटर के माध्यम से मनोरंजन कर सकते है। संचार का माध्यम कोई भी हो वास्तविकता में ज्ञान और शिक्षा ही प्रसारित होता है। हम अपने जीवन को इससे कैसे जोड़ते है, महत्वपूर्ण तथ्य यह है। अनेको तकनीकी माध्यमों को अपनाकर जनसंचार आज और अधिक नया, आमजन के निकट, प्रभावपूर्ण, जन रूचि पूर्ण, संघर्षमयी, महत्वपूर्ण, उपयोगी और अत्यधिक ज्ञानवर्धक हो गया है।ऐसा माना जाता है कि इक्कीसवीं सदी विश्व के रंगमंच पर बुनियादी परिवर्तन लाने वाली संभव प्रतीत होती है भविष्य का समाज ज्ञान का समाज होगा।'[3]' स्वाभावतः कल के बाजार भी ज्ञान के बाजार होगे क्योकि आज का युवा और युवओं में समाज शिक्षा को एक अपरिहार्य सम्पदा के रूप में देख रही है। शिक्षा और आधुनिकीकरण के बीज सम्बन्धो के विश्लेषण में मुख्य प्रश्न शिक्षा की दिशा और दशाओं से है। शिक्षा में सूचना या यूँ कहे कि सूचना की शिक्षा, जो कि आधुनिक शिक्षा का प्रतिबिम्ब है इसका सर्वप्रथम माध्यम शिक्षक को ही माना जा सकता हैं। सदैव से ही शिक्षा छात्राओं में सामाजीकरण की प्रमुख एवं सटीक प्रक्रिया के रूप में मानी जाती रही है। आज शासकीय शिक्षण संस्थाएं और शिक्षक छात्रों में विशेष मूल्य, आकांक्षाएं और अभिरूचियों जागृत करना चाहते है। सन 2011 की जनगणना के अनुसार शहर और और गाँव के मध्य देश की एक तिहाई बालिकाएं सातवीं कक्षा की छात्रा से आंठवी कक्षा की छात्रा नही बन पाती है। शहर और गाँव दोनो ही क्षेत्रो में बालिका शिक्षा अत्यन्त धीमीगति और उदानसीनता से बढ़ रही हैं।'[4]'शैक्षणिक स्तर पर देखा जाए तो शिक्षा और आधुनिकता एक दूसरे के पूरक हैं। समाज में परिवर्तन लाने के लिए आधुनिक शिक्षा आवश्यक है साथ ही समाज में बालिकाओं को शिक्षित करना अतिआवश्यक हैं।

शोध के उद्देश्य-

* आधुनिकता एवं जनसंचार के विभिन्न घटको का छात्राओं की शैक्षणिक स्थिति के साथ संबंधो की जानकारी प्राप्त करना।
* उच्च विद्यालय (विद्यालय) में शिक्षित छात्राओं को प्रेरित करने वाले जनसंचार एवं आधुनिकता के मुख्य स्त्रोतो की जानकारी प्राप्त करना।
* आधुनिक संचार के माध्यमों की शासकीय छात्राओं तक पहुँच का ऑकलन करना।

उपकल्पनाएं-

* अपेक्षाकृत कम शिक्षित परिवार की छात्राओं तक जनसंचार माध्यमों की पहुँच कम होगी या नही होगी।
* किशोरावस्था के चलते छात्राओं द्वारा आधुनिक संचार माध्यमों का उपयोग अधिक किया जाता होगा।
* विद्यालय में शैक्षणिक आवश्यकताओं एवं व्यक्तिगत विकास के लिए जनसंचार के आधुनिक माध्यमों की पहुँच छात्राओं में आकर्षक एवं प्रेरणा स्त्रोत होगी।

शोध की सीमाएं-

* शासकीय विद्यालयों की छात्राओं का अध्ययन करना जो उस समय नौवी एवं दसवीं

में शिक्षा प्राप्त कर रही है।

* छात्राओं की आयु 14 वर्ष से अधिक एवं 21 वर्ष से कम हैं।
* सभी छात्राएं शिक्षा में किसी न किसी संचार माध्यमों का प्रयोग करती हैं।
* सभी छात्राएं जनसंचार के किसी न किसी संचार माध्यमों का उपयोग करती है या संचार माध्यमों से अवगत हैं।
* सभी 10 प्रतिशत शासकीय विद्यालय भोपाल नगर में कार्यरत् है।

अध्ययन क्षेत्र एवं अध्ययन विधि–

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या सात करोड़ पच्चीस लाख है। जिसमें तीन करोड़ छियतर लाख पुरूष और साढ़े तीन करोड़ महिला जनसंख्या है। जो भारत की कुल जनसंख्या का 6 प्रतिशत है। जनसंख्या कि दृष्टि से मध्यप्रदेश का स्थान सातवां है और साक्षारता दर से देखे तो कुल 80 प्रतिशत पुरूषों में सिर्फ 60 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर है। मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल है। कुल 10 शासकीय विद्यालयों का चयन किया गया हैं। जिसमें नौवीं एवं दसवीं की छात्राओं पर यह शोध निर्धारित हैं, जो कि साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्रित आकड़ों पर द्वारा सम्पन्न किया गया हैं। भोपाल नगर 75 वर्ग किलोमीटर में फैला शहर हैं। जिसकी कुल जनसंख्या 18 लाख 86 हजार हैं। इसकी ऐतिहासिक विशेषता मिश्रित हैं। द्रविड़ मालावी, मुगहा, हिन्दु सभ्यता का मिश्रण हैं। राजा भोज के नाम पर इसका नाम भोपाल पड़ा है। भोपाल तालों की नगरी मानी जाती है। भोपाल की 64.4 प्रतिशत कुल साक्षरता दर है। जिसमें 81.9 प्रतिशत पुरूष तथा 66.4 प्रतिशत महिला साक्षरता है। प्रस्तुत शोध में निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है यह शोध भोपाल जिसे के शहरी क्षेत्र में कार्यरत् 10 विद्यालयों पर आधारित है। सभी विद्यालय मुख्य सड़कों या उसके आस-पास व्यवस्थित है, इन विद्यालयों में से कुल 300 छात्राओं पर अध्ययन के लिए भागीदारी सुनिश्चित की गई।

क्रं.	निदर्श के प्रकार	संख्या
1.	विद्यालयों की संख्या	10
2.	छात्राओं की संख्या	300
3.	शिक्षण, अर्थव्यवस्था, शासकीय संगठन संस्थाएं	25
	योग	335

तथ्य संकलन एवं शोध पद्धति–

शोध के दौरान चुने गये विद्यालयों में जिन छात्राओं ने शोध में भागीदारी सुनिश्चित की उनकी शैक्षणिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने में विद्यालय परिसर के कार्यकर्त्ता, शिक्षकों एवं प्रधानाचार्या ने भी पूर्ण सहयोग दिया है। स्वयं छात्राओ ने भी अपने बारे में जानकारी प्रदान कराई, साथ ही जनसंचार एवं आधुनिकता विषय से सम्बधित प्राथमिक जानकारी भी प्राप्त कराई गई, ताकि साक्षात्कार अनुसूची को भली-भांति आत्मसात कर उत्तरदाता सही उत्तर का चुनाव कर सकें। भोपाल नगर में निवास करने वाली इन छात्राओं का भोपाल नगर के अलावा अपने जन्म स्थल से भी काफी जुड़ाव है। भोपाल नगर में ज्यादार छात्राओं के परिवार स्वयं का कामकाज या रोजगार की तलाश में पलायन कर आये हैं।

क्रं.	**छात्राओं का विवरण**	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
1.	नौवी कक्षा की छात्राऐं	114	38.00
2.	दसवीं कक्षा की छात्राऐं	186	62.00
3.	अनुसूचित जाति	75	25.00
4.	अनुसूचित जनजाति	37	12.3
5.	पिछड़ावर्ग	91	30.0
6.	सामान्य	97	32.3
7.	हिन्दू धर्म की छात्राऐं	242	80.7
8.	मुस्लिम	58	19.3

शोध में सुनिश्चित सभी छात्राओं में हिन्दू छात्राओं की भागीदारी अधिक हैं। सम्भवतः शिक्षा के क्षेत्र में आज भी हिन्दू छात्राऐं सजक प्रतीत होती हैं। उपरोक्त तालिका के अनुसार कुल 300 छात्राओं में सभी जाति एवं धर्म के लोगो को शामिल किया गया था, किन्तु उपस्थित छात्राओं में सिर्फ दो ही समुदायों की भागीदारी प्रस्तुत की जा सकी है। सामान्य जाति की छात्राओं का योगदान एवं जिज्ञासु होना एक सामान्य स्थिति है। अनुसूचित जाति की छात्राओं की भागीदारी सबसे कम हैं।

क्रं.	**पारिवारिक शैक्षणिक योग्यता का विवरण**	**अशिक्षित है/नहीं है।** (प्रतिशत में)	**प्राइमरी (1–5)** (प्रतिशत में)	**द्वितीय (6–8)** (प्रतिशत में)	**हाईस्कूल (9–10)** (प्रतिशत में)	**हायरसेकेन्ड्री (11–12)** (प्रतिशत में)
1.	पिता	24	23	13	18	20
2.	माता	38	17	21	13	10
3.	बड़े भाई	51	8	7	20	77
4.	बड़ी बहन	37	5	13	23	9
5.	छोटे भाई	31	16	30	12	01
6.	छोटी बहन	37	22	18	10	11

उपरोक्त तालिका के अनुसार शोध में शामिल जिन छात्राओं के पिता शिक्षित है उन्हें घर-परिवार से शिक्षा के लिए पूर्ण प्रेरणा प्राप्त होती है और वही यदि परिवार में माता-पिता-भाई-बहने शिक्षित है या शिक्षा ग्रहण कर रही है तो पारिवारिक वातावरण सामान्य शिक्षित दृष्टिकोण से उत्तम है, सभी छात्राओं की पारिवारिक स्थिति में अन्तर है किन्तु शिक्षा के प्रति इनकी सोच सकारात्मक हैं।

क्रं	उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय	आवृत्ति	प्रतिशत
1	3,000 से कम	9	3.0
2	3,000 से 5,000	47	15.7
3	5,001 से 7,000	45	15.0
4	7,001 से 9,000	57	19.0
5	9,001 से 11,000	43	14.3
6	11,001 से 13,000	70	23.3
7	13,001 से अधिक	29	9.7
	योग	300	100.0

प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण में समाहित संसाधनों के समुचित उपयोग द्वारा अर्थव्यवस्था का विकास होता है किन्तु इसके द्वारा मानव को प्रकृति के साथ सतत् संघर्षशील रहना पड़ता है। किसी भी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि उस प्रदेश के मानव समुदाय ने किस सीमा तक किसी प्रकार से संसाधनों का उपयोग कर आर्थिक एवं सांस्कृतिक भू-दृश्य का निर्माण किया है। अधिकांश उत्तरदाता शिक्षण कार्य के अतिरिक्त अपने समय में से कुछ समय निकालकर भिन्न-भिन्न प्रकार के आर्थिक कार्यों को निपटाकर कर घर के लिए आर्थिक मदद करते हैं। वे प्रायः घरेलू नौकरानी, चाय की दुकान पर हाथ बटाने, एवं दूसरों के परिवार के कपड़े सिलकर या मेंहदी और नकली जेवर बनाकर अपने माता एवं पिता की आय मे हाथ बटांते हैं। सर्वाधिक 23.3 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता है जिनकी पारिवारिक मासिक आय 11,000 से 13,000/-वो उत्तरदाता किसी दफ्तर में नौकरी करते या फिर कोर्ट-कचहरी में काम करते हैं, 19.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 7000 से 9000/- तक है, 15.7 प्रतिशत की मासिक आय 3000 से 5000/- रूपये है,15 प्रतिशत की मासिक आय 5000 से 7000/- रूपये प्रतिमाह है। कुल 14.3 प्रतिशत की मासिक आय 9001 से 11,000/- रूपये, 9.7 प्रतिशत उत्तरदाता प्रतिमाह 13,000/- रूपये या उससे अधिक की आय अर्जित करते है, केवल 9 (3.0 प्रतिशत) उत्तरदाताओं की औसत मासिक आय 3000/- रूपये से कम है।

क्रं	शिक्षा के लिये प्रेरणा स्त्रोत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	माता	174	58.0
2	पिता	10	3.3
3	भाई	15	5.0
4	बहन	22	7.3
5	शिक्षक	78	26.0
6	अन्य	1	0.3
	योग	300	100.0

कुल उत्तरदाताओं में से लगभग एवं सर्वाधिक 174 (58.0 प्रतिशत) ने बताया कि उनकी माताएँ एवं शिक्षकों ने उन्हें शैक्षणिक गतिविधियों के लिए प्रेरित किया। स्वयं वह अभावग्रस्तता से जूझ रहे हैं लेकिन उन्होनें पढ़ाई की महत्ता को ध्यान में रखते हुए अपने परिवार के प्रत्येक सदस्यों को विद्यालय भेजा हैं, विद्यालयों में पढ़ने से परिवार को आर्थिक नुकसान भी उठाना पड़ता है, किन्तु परिवार जन अपने स्वार्थ को छोड़कर बालिका शिक्षा के महत्व को समझा है यही आवश्यक और सकारात्मक स्वरूप प्रत्यक्ष है। शिक्षकों का सहयोग पुराने भोपाल नगर के शासकीय विद्यालयों में सहजता से दीखने को मिला। यहाँ के धार्मिक समुदाय की छात्राओं की शिक्षा ग्रहण करने हेतु अपने बच्चों और परिवारों की उलझनों के साथ आती है।

क्रं	विद्यालय आना पसंद है	आवृति	प्रतिशत
1	पढ़ना पसंद है	133	44.3
2	विद्यालय पसंद है	54	18.0
3	शिक्षक पसंद है	95	31.7
4	अन्य	18	6.0
		300	**100.0**

सर्वाधिक 44.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि विद्यालय आना इसलिए पसंद है क्योंकि उन्हें पढ़ना पसंद है एवं पढकर आगे बढ़ना चाहती है एवं समाज में अपना नाम रौशन करना चाहती हैं, आय अर्जित करना चाहती है, साथ ही 31.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि विद्यालय के शिक्षक एवं उनके व्यवहार के कारण वे विद्यालय आना पसंद करती हैं। इनमें से 18.0 प्रतिशत को उनका विद्यालय का भवन, प्रांगण अच्छा लगता है।

क्रं	आधुनिक शिक्षा पर विचार	आवृति	प्रतिशत
1	अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने से	186	62.0
2	कम्प्यूटर के माध्यम से पढ़ने से	10	3.3
3	संचार तकनीकों से	2	0.7
4	स्मार्ट क्लासेस	17	5.7
5	1+2	79	26.3
6	अन्य	6	2.0
	योग	300	100.0

सर्वाधिक उत्तरदाताओं ने बताया कि संपूर्ण पाठ्यक्रम को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने को ही आधुनिकता का बोध होता है जबकि उत्तरदाताओं ने आधुनिक शिक्षा वह है जिससे पाठ्यक्रम अंग्रेजी माध्यम का तो हो ही साथ ही सारी पढ़ाई कम्प्यूटर के माध्यम से ही हो। इसी तारतम्य कुछ उत्तरदाता स्मार्ट क्लास के पक्ष में थे। और कुछ पूरी शिक्षा कम्प्यूटर के माध्यम से पढ़ाई करने को आधुनिकता की संज्ञा देते हैं, कुछ का मन है कि संचार की तकनीकों से जैसे टेलीविजन, स्मार्ट क्लास, दृश्य-श्रव्य इत्यादि माध्यम से पढ़ने को ही आधुनिक शिक्षा कहा जा सकता है।

कं	छात्राओं द्वारा जनसंचार माध्यमो पर विचार	आवृति	प्रतिशत
1	अखबार	254	84.66
2	पत्र पत्रिकाएँ	86	28.66
3	रेडियों	195	65.00
4	टेलीविजन	2	00.66
5	इंटरनेट	200	66.66
6	टेलीफोन	250	83.33
7	मोबाईल	35	11.66
8	कम्प्यूटर	83	27.66

आज के शैक्षणिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में जनसंचार माध्यमों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। जनसंचार माध्यमों में मुख्यतः अखबार पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियों, टेलिविजन, इंटरनेट, टेलिफोन, मोबाईल एवं कम्प्यूटर प्रमुख रूप से आते है। इन माध्यमों से व्यक्ति के अंर्तमन में विषयों के प्रति जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है व्यक्ति उक्त विषय में पारंगत हो जाता है। व्यक्ति स्वभावतः वैसे तो जिज्ञासु प्रकृति का तो होता ही है लेकिन यदि उसी जिज्ञासा को साकार रूप देने का कार्य जनसंचार माध्यम ही होते है।

इस प्रकार लगभग सभी उत्तरदाता जनसंचार माध्यमों का निर्वाद्य, गति से प्रयोग करते है। भले ही अखबार के किसी ब्रांड का प्रयोग हो, पत्र-पत्रिकाओं मे विभिन्नता हो,रेडियों सेट से सुनते हों या मोबाइल फोन से, टेलिफोन बेसिक हो या फिर मोबाईल फोन हों,कम्प्यूटर का प्रयोग वे घर पर उपलब्ध कम्प्यूटर से करते हों या फिर इंटरनेट कैफे फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उनमें जनसंचार के प्रयोग के प्रति क्रांति का सूत्रपात हो चुका है।

क्रं	शिक्षा के क्षेत्र मे जनसंचार माध्यमो का उपयोग	आवृति	प्रतिशत
1	सूचना के क्षेत्र में	48	16.00
2	मनोरंजन के क्षेत्र में	91	30.33
3	शिक्षा के क्षेत्र में	37	12.33
4	1+2+3	124	41.33
	योग	300	100

सर्वाधिक उत्तरदाताओं ने बताया कि मनोरंजन में तो जनसंचार अव्वल नम्बर पर है जबकि अन्य उत्तरदाओं शिक्षा एवं सूचना के क्षेत्र में सहायक बताया है। सूचनाओं के आदान-प्रदान के माध्यमो में मोबाईल फोन, बेसिक फोन, इंटरनेट, कम्प्यूटर, टेलिविजन एवं रेडियो तथा समाचार पत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम है। आज लगभग सभी शासकीय, निजी अर्द्धशासकीय कार्यालयों, लोगो के व्यावसायिक संस्थानो एवं निजी एवं स्वयं के प्रयोग में भी इन माध्यमों का प्रयोग निरंतर सफलतापूर्वक किया जा रहा है। एवं सूचनाएँ सफलतापूर्वक एक जगह से दूसरी जगह भेजी जा रही है। वर्तमान परिस्थितियाँ पूर्व की तुलना मे आधुनिकता की ओर अग्रसर हो रही है। शैक्षणिक क्षेत्र मे निरंतर नए-नए प्रयोग हो रहे है इनमें विविधता के साथ-साथ आधुनिकता लाने का प्रयास किया जा रहा है। विभिन्न शासकीय प्रयोग से इनमे निरंतर परिवर्तन होता जा रहा हैं। शासकीय प्रयासों

में जनसंचार के माध्यमों पर अधिक बल दिया जा रहा है एवं ये माध्यम उपयोगी भी सिद्ध हो रहे है।

क्रं	छात्राओं द्वारा विद्यालय में जनसंचार माध्यमों का प्रयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
1	अखबार	84	28.00
2	पत्र पत्रिकाएँ	267	89.00
3	टेलीविजन	7	02.33
4	टेलीफोन	33	11.00
5	कम्प्यूटर	23	07.66
6	इंटरनेट	21	07.00
7	प्रोजेक्टर	195	65.00
8	स्कैनर	58	19.33

शिक्षा में नित्य नए-नए प्रयोग किये जा रहे हैं एवं पाठक्रम में मूलभूत संशोधन तथा परिमार्जन किए जा रहे हैं। ऐसे में जनसंचार माध्यमों का प्रयोग वांछनीय है। विद्यालयों में जनसंचार माध्यमों का प्रयोग बड़े पैमाने पर करने की अनुशंसा शासन द्वारा भी की गई है एवं उसे प्रयोग में भी लाया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि विद्यालय में अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ, टेलिविजन, टेलिफोन, कम्प्यूटर, इंटरनेट, प्रोजेक्टर एवं स्कैनर जैसे जनसंचार माध्यमों का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जा रहा है एवं विद्यालय में जनसंचार की नई तकनीकों को प्रयोग कर शिक्षा के क्षेत्र में नई क्रांति का सूत्रपात हुआ है। तकनीकी माध्यमों को लेकर शिक्षाशास्त्री सजग और सतर्क है। शासकीय उच्च विद्यालयों की जनसंचार माध्यमो की आवश्यकता को स्वीकार किया जा रहा है।

क्रं	छात्राओं द्वारा विद्यालय में जनसंचार माध्यमों का प्रयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
1	अखबार	84	28.00
2	पत्र पत्रिकाएँ	267	89.00
3	टेलीविजन	7	02.33
4	टेलीफोन	33	11.00
5	कम्प्यूटर	23	07.66
6	इंटरनेट	21	07.00
7	प्रोजेक्टर	195	65.00
8	स्कैनर	58	19.33

वास्तविकता में जनसंचार के सभी माध्यम सरल नही होते अर्थात सभी विद्यार्थियों की मानसिक क्षमता एक समान नही होती, तो सर्वाधिक छात्राओं ने बताया कि अखबार और मोबाइल जैसे जनसंचार माध्यम सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वव्यापी है इसमें भी अखबार सबसे उपयोगी एवं सरल माध्यम है। आज वर्तमान में बाजार में विभिन्न ज्ञानवर्द्धक पत्र-पत्रिकाएँ मिल जाती है। जो मुख्य रूप से शिक्षा और जनसंचार के वैज्ञानिक

दृष्टिकोण से लाभकारी होती है। ऐसे में उत्तरदाताओं को सबसे सरल जनसंचार माध्यम पत्र-पत्रिकाएँ ही होती है। जहाँ तक टेलिफोन की बात करे तो, ज्ञात हो कि टेलिकॉम विभाग में भी अब टेलिफोन पर विभिन्न भाषाओं में जानकारी उपलब्ध कराते हैं ऐसे में बहुत सी जानकारी टेलिफोन से भी मिल जाया करती है। जबकि ठीक इसकें विपरीत उत्तरदाताओं ने रेडियों, टेलिविजन, कम्प्यूटर इंटरनेट इत्यादि, को भी सरल जनसंचार का माध्यम माना है।

क्रं	छात्राओं के विचार में आमजन तक कौन से जनसंचार माध्यमों की पहुँच है	आवृत्ति	प्रतिशत
1	अखबार	7	02.33
2	पत्र पत्रिकाएँ	5	01.66
3	रेडियों	191	63.66
4	टेलीविजन	74	24.66
5	कम्प्यूटर	193	64.33
6	इंटरनेट	17	05.66
7	टेलीफोन	8	02.66
8	मोबाईल	149	49.66

कम्प्यूटर, मोबाइल और टेलिविजन जैसे जनसंचार का माध्यम सर्वाधिक रूप में लोकप्रिय हो चुके है एवं इसकी सरलतम पहुँच आमजन तक है। आज कम्प्यूटर घर-घर तक पहुँच चुका है लेकिन यदि किसी कारणवश यह घर पर न भी हो तो 'कैफे कम्प्यूटर' के माध्यम से लोग इसके आदी हो चुके है। शासन की ओर से भी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कम्प्यूटर उपलब्ध कराया गया है। जबकि ठीक इसके विपरीत अखबार पत्र-पत्रिकाओं, एवं टेलिफोन को भी आमजन तक पहुँच बताया है लेकिन उसकी संख्या कम है।

क्रं	शिक्षा से सीधे जुडे जनसंचार माध्यम	आवृत्ति	प्रतिशत
1	अखबार	147	49.00
2	पत्र पत्रिकाएँ	84	28.00
3	रेडियों	113	37.66
4	टेलीविजन	161	53.66
5	कम्प्यूटर	84	28.00
6	इंटरनेट	17	05.66
7	टेलीफोन	8	02.66
8	मोबाईल	149	49.66

छात्राओं ने टेलिविजन को शिक्षा से सीधे जुड़े जनसंचार माध्यम को मानते हैं। जबकि कुछ छात्राएं अखबार, मोबाईल फोन, रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं और कम्प्यूटर जैसे माध्यमों को शिक्षा से सीधे जुड़े जनसंचार माध्यम मानते हैं। स्पष्ट होता है कि वे भिन्न-भिन्न माध्यमों को शिक्षा से सीधे जुड़े होने का दावा करते हैं। ऐसे में यह कहना कि

कोई एक साधन शिक्षा से जुड़े है तो यह उचित नही हेगा क्योंकि उत्तरदाताओं द्वारा अपने विचारों से इनमें भिन्नता नजर आ रही है। सभी छात्राओं के पारिवारिक स्वरूप ज्यादा तो एंकाकी हैं। पारिवारिक आयु सामानयतः युवा है और ज्यादातर छात्राऐं अपने परिवार की पहली या फिर दूसरी संतानत है जिसका लाभ उन्हें मिला हैं। शिक्षा में प्रोत्साहन और सहयोग दोनो प्राप्त हुए है।

अनुशंसा–

* छात्राओं से यह विचार जानने का प्रयास किया गया कि क्या शिक्षा का आधुनिकीकरण करके राष्ट्र निर्माण संभव है इस प्रश्न पर 51 प्रतिशत का मत आधुनिकिरण और शिक्षा के प्रति सकारात्मक था।
* सर्वाधिक 44 प्रतिशत छात्राओं के कहाँ की वह भी आधुनिक तकनीको सें शिक्षा प्राप्त करना चाहती हैं।
* सर्वाधिक 71 प्रतिशत छात्राओं का मानना है कि शिक्षा पूर्ण करनी है और आप के साधन जुटाने है चाहे वह नौकरी के माध्यम से हो या फिर स्वयं के रोजगार के माध्यमो द्वारा हो।
* शैक्षणिक दृष्टिकोण पर 10 छात्राओ का विचार है कि जो 45 प्रतिशत है कि वर्तमान में शिक्षा में तीव्र बदलाव हुए है शिक्षा से जनसंचार माध्यम किताबो से ज्यादा बेहतर हैं।
* आधुनिक शिक्षा जनसंचार माध्यमो के बिना अधूरी है। अपंग है ऐसी मान्यता को मानने वाले 56 प्रतिशत छात्राओं का विचार हैं।
* सर्वाधिक 52 प्रतिशम छात्राओं का विचार है कि जनसंचार रचनात्मक एवं आधुनिक शिक्षा का सटीक स्त्रोत साबित हुआ हैं।
* इसके साथ ही 59 प्रतिशत छात्राओं का मानना है कि शिक्षा से जुड़े कार्यो का संचालन करने में जनसंचार उपयोगी माध्यम है साथ ही शिक्षित व्यकित समाज की एक जागरूक आवाज बन सकता है तथा समाज का सर्वागिक विकास करने में सहयोग कर सकता हैं।
* जनसंचार माध्यम आधुनिक शिक्षा से जुड़ी उन आवश्यकताओ को पूर्ण कर सकता है जिसके अभाव से शिखा की प्रगति में अभी भी रूकावटें बनी हुई हैं।

निष्कर्ष–

समकालीन समाज वैश्विकर बन चुका है। आज की शिक्षा पद्धति अत्याधुनिक दौर से गुजर रही है जिससे शासकीय विद्यालय भी अछूते नहीं है। आज शिक्षा के विस्तार के लिए इंटरनेट की सुविधाओं की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे आधुनिक समाज संचार के विभिन्न माध्यमों द्वारा बालिका शिक्षा के प्रति जागरूक दिखाई देता है उसी प्रकार वर्तमान आधुनिक शिक्षा इंटरनेट और जनसंचार पर निर्भर होती जा रही है। जनसंचार के क्षेत्र में अनेकों परिवर्तन सामने आये है। जनसंचार के सभी माध्यम जैसे रेडियो, टेलीविजन तथा मोबाइल फोन पर प्रसारित होने वाली सूचनाएं शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आज के आधुनिक काल में यह तथ्य सत्य भी है कि जनसंचार ही वह माध्यम है जिनके द्वारा हम वास्तविक ज्ञान को व्यावहारिक ज्ञान में परिवर्तित कर सकते हैं। वर्तमान में विद्यालयीन शिक्षा प्रणाली में शिक्षा और संचार माध्यमों की उपयोगिता व्यक्ति को कुशल,

समर्थ और जागरूक बनाता है ताकि प्रत्येक युवा भविष्य में होने वाले परिवर्तनों और चरणों में कदम से कदम मिलाकर चल सके।

प्रस्तुत शोध में जनसंचार माध्यम, शिक्षा और आधुनिकता के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि यह विषय एक नई शोध का विषय है आज के वैज्ञानिक युग में एवं आधुनिक युग में जनसंचार माध्यम जैसे साधनों का ही चारों ओर बोलबाला है। मुद्रित संचार माध्यम लम्बे समय तक सहेजकर रखने वाली सामग्री होते, हम अपनी बात अखबार के माध्यम से जनता और सरकार तक पहुँचा सकें। जनसंचार के माध्यमों जैसे, इंटरनेट, कम्प्यूटर, टेलिफोन, लैपटॉप द्वारा हम घंटों का काम मिनटों में घर बैठे व इंटरनेट द्वारा आधुनिक शिक्षा प्रणाली का सुगम एवं सरल ढंग से ज्ञान देश-विदेश में होने वाले अनुसंधान कार्य ,शोध ,शैक्षाणिक गतिविधियों का अध्ययन, दृश्य-शब्द साधनों द्वारा अध्यापनों से छात्र अधिक कठिन विषयों को रूचिकर ढंग से अध्ययन कर पाते हैं कठिन से कठिन विषयों जैसे विज्ञान, गणित, चिकित्सा व्यापार आदि की पढ़ाई सरल एवं सुगम तरीके से आसानी से सीख लेते हैं। इन माध्यमों का छात्रों पर प्रभावी एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं छात्रों की कक्षाओं में उपस्थिति भी बढ़ती है। जनसंचार माध्यमों के बिना कोई भी व्यक्ति उतनी शिक्षा नहीं दे सकता जितनी शिक्षा जनसंचार माध्यम के द्वारा शिक्षा दी जा सकती है।

स्पष्ट है कि कुछ उत्तरदाता अपनी इच्छा एवं आकांक्षाओं के अनुरुप पढ़ना चाहते हैं लेकिन साथ ही उनमें से कुछ उत्तरदाता माता-पिता की इच्छाओं एवं हैसियत को ध्यान में रखते हुए पढ़ना चाहते हैं। इसका मुख्य कारण गरीबी, इच्छाशक्ति की कमी एवं जागरुकता की कमी है। संक्षेप में, उत्तरदाताओं के परिवार में सामाजिक-आर्थिक जीवन परम्परागत एवं आधुनिक विकास के मानकों के आधार पर संक्रमण की स्थिति में है। एक तरफ जहाँ जन्मगत प्रस्थिति पर आधारित तथ्य अपने परम्परागत स्वरूप को अभी भी बनाये हुये हैं, जैसे लिंगानुपात का अपेक्षाकृत अधिक होना, परिवार के अंदर निर्णय लेने में महिलाओं की भूमिका का महत्वपूर्ण होना एवं आर्थिक गतिविधियों में उनकी संलग्नता आदि।

भोपाल नगर स्थित सभी उत्तरदाताओं का विवरण प्रत्येक विद्यालयीन वातावरण अनुसार भिन्न हैं। सभी उत्तरदाताओं की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक वातावरण में भिन्नता होने के बावजूद एक समानता भी है कि सभी उत्तरदाता एक ही तरह के शासकीय विद्यालय की छात्रा है और सभी सामान्य रूप से निम्न वर्ग की हैं। हालांकि भोपाल नगर के भौगोलिक वातावरण में भिन्नता होने के कारण सभी शासकीय विचालयों में कुछ न कुछ भिन्नताएं है। शोधकार्य में भागीदार सभी छात्राएँ किसी न किसी ग्रामीण इलाके या छोटे कस्बे से पलायन करके, भोपाल में आकर बसे है। धर्म भी अलग-अलग है। कुछ क्षेत्र पूर्ण रूप से मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र हैं। यहाँ की संस्कृति और परम्परा नये भोपाल का तुलना में पूर्णता भिन्न है क्योंकि नये भोपाल में हिन्दू धर्म की बहुलता है। पुराने भोपाल क्षेत्र में बसे विद्यालयों की छात्राओं की हालत इतनी बुरी है कि शायद ही उन्होंने विद्यालय परिसर और फिल्य-या टेलीविजन में देखा गया लैपटॉप और स्मार्ट फोन को हाथ भी लगता हो।

शोधकार्य से ज्ञात हुआ कि अब पारिवारिक स्थिति ज्यादातर एकाकी परिवारों की हो चुकी है, ज्यादातर परिवारों में सदस्यों की संख्या औसतन 5-7 लोगों की रह गयी हैं।

सभी परिवारों ने परिवार नियोजन कार्यक्रमों को अच्छे से समझा और जाना है। किन्तु अभी भी महिला पुरूष लिंगानुपात में अन्तर है। कर्मचारी एवं शिक्षित पारिवारिक वर्ग अपने बच्चों की शिक्षा को लेकर चिंतित नजर आये तथा उन्हें राज्य में चल रहे, शैक्षणिक योजनाओं की जानकारी भी है, और उन्हें अच्छी शिक्षा देने के लिए प्रयासरत भी दिखे। साथ ही अब अपने अन्य बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित करना चाहते है। पारिवारिक आय सामान्य है किन्तु शिक्षित एवं जागरूकता कि कमी के कारण अर्जित किया धन उचित बचत योजनाओं या कार्यो में नही खर्च हो पाता इसलिए धन अस्थायी रूप में रहता है जमा निधि या बचत खाता नही खुलवाया गया हैं। इसलिए धन संग्रहण में अवरोध उत्पन्न होता है। पारिवारिक आय एवं आवश्यकता के अनुसार भौतिक संसाधनी की कोई कमी नही है। श शासकीय विद्यालयों में भी छात्राओं को शिक्षा से सम्बधित महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती रहती है। आज भारत वर्ष में कुल आबादी का चालीस प्रतिशत युवा बीस वर्ष से कम आयु का है और इन्ही पर हम आगे चलकर देश का भविष्य देखते है। प्रत्येक विद्यालयों में शिक्षा के बेहतर सुधार की कई योजनायें क्रियान्वित है किन्तु जब तक छात्राओं में नेतृत्व क्षमता और व्यक्तित्व महत्वाकांक्षाओं वे गुण विकसित नही होगे तब तक भविष्य के भार को सहन करने वाले नागरिक भावना का जन्म नहीं हो सकता। अभी भी छात्राओं में आधुनिक संचार माध्यमों के द्वारा आधुनिक शिक्षा की कल्पना करना भी असहज है। विद्यालय प्रागण के अलावा संचार संसाधनों से शिक्षा प्राप्त करना अविश्वसनीय लगता है। जनसंचार माध्यमों का उपयोग छात्राएं केवल टेलीविजन फिल्मों तक ही सीमित समझती है शिक्षा से जोडना असहज मानती है। पारम्परिक शिक्षा पद्धति को ही अपनाया है किन्तु इसकी संख्या काफी कम हैं। आधुनिक शिक्षा वो सिर्फ अंगेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना मानती है। अंग्रेजी भाषा आधुनिकता का प्रत्तीक है ऐसी धारणा इनमें विकसित है।

जनसंचार माध्यमों से शिक्षा एवं शिक्षा सम्बन्धित जानकारियों को प्राप्त करना सरल और सहज है साथ ही इसमें आकषर्ण एवं रोचकता भी बनी रहती है। अब तकनीकी विकास ने भाषा की भी बाध्यता खत्म कर दी है, अब कम्प्यूटर के माध्यम से हम अपनी किसी भी प्रादेशिक भाषा में जानकारी या शिक्षा प्राप्त कर सकते है इसकी भी जानकारी छात्राओं को भली प्रकार से हैं। जागरूकता का प्रभाव इन छात्राओं में नही है किन्तु सही मार्गदर्शक की कमी है।

जो छात्राएं जिज्ञासु प्रवृत्ति की है उनमें इन सभी योग्यताओं का समावेश है। लगभग सभी उत्तरदाता मोबाईल फोन का उपयोग करती है और मानती है कि इसके बिना जीवन संभव नही हैं। आज सरकारी महकमों एवं अर्धशासकीय कार्यालयों में तकनीकी संचार माध्यमों की अधिकता है। मीडिया एक ऐसा साधन है जिसके बिना व्यक्ति अपने जीवन में दिन की शुरूआत नही मानता आज मीडिया भी आवाज हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुनाई पड़ती है। ग्रामीण क्षेत्र हो या नगर कस्बा हो या पंचायत सभी क्षेत्रो में संचार माध्यमों की आवाज बुलंद है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. विलैनीलय, जे.वी., (2011), 'पब्लिक रिलेशन इन इण्डिया सेज पब्लिकेशन, मथुरा रोड, नई दिल्ली।

2. दूबे,श्यामाचरण, (1994): ''शिक्षा, समाज और भविष्य',राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. विलैनीलम, जे.वी.,(2009):'डिवेलेपमेण्ट कम्यूनिकेशन इन प्रैक्टिस': इण्डिया एण्ड द मिलेनियम डिवेलेपमेण्ट गोल्स,' सेज पब्लिकेशन, मथुरा रोड, नई दिल्ली।
4. K. David, (2006):, "Communication for social change Analogy ,historicalAnd contemporary", Alfonso DragonAnd Thomas, South Orange, New Jersey, USA
5. बर्लो.के. डेविड, (2006):'कम्प्यूनिकेशन फॉर सोसल चेन्ज एन्थोप्रोलॉजी: हिस्टोरीकल एडं कान्टेम्परारी रीडिंग्स, अनुवाद, अलफोन्सो-डेगोन एण्ड थॉमस, साअथ ऑरेन्ज, न्यू जर्सी, यूनाइटेड स्टेट।

Books:

- Holstein,And gubrium,(2003):, " Inside the interviewing new loans, new colony", Sage Publication, New Delhi.
- Prasad, V.R.K,(2016):, "EducationAnd National Building" , Heritage Publication House ,New Delhi.
- Evidson, Elizabeth,(2014):, "National eternityAnd education reform contest classes", Routledge, New York.
- Kumar, Keval J.,(2000):, "Mass Communication in India", Jayco publication, Singh publishing house, Mumbai.
- K. David, (2006):, "Communication for social changeAnalogy ,historicalAnd contemporary" ,Alfonso DragonAnd Thomas ,South Orange, New Jersey ,USA
- Kahan, sylvan I., (1995):, "Developing information educationAnd communication strategy for population program" ,United Nation population fund, Indiana University.
- Martin, C.A.,And J.D. Worries Breeze, (2016):, "ScienceAnd Technology education", Sage Publication, Boston.
- Duba, V.K., (2008):, "Extension educationAnd communication",New Edge International Publication private Limited, New Delhi,
- Martin, Robert King, (1968):, "Social theoryAnd social structure", SimonAnd Huehtr, New York.
- Harding, S., (2015), "ObjectivityAnd Diversity:Another Logic of Scientific Research", University of Chicago Press, Chicago.
- Singh, Devendra,(2009):, " Indian electronic media" ,Prabhat Publication , Delhi.
- Singh, Paramveer(2017) Indian Television history ,education publishing ,New Delhi.
- Srinivas mAnd Translator Rashmi Choudhary, (2009):, "Advanced Indian Cast", Rajkamal Publication, New Delhi.
- Mukherjee, Robin, (2000):, "Democracy of failure Psephology solution for human, welfare", University Press ,New York.
- Harrison, David, (1988): "The Sociology of Modernization ofAnd Development, United Human ltd, New Yogk.
- Wagner, Peter,(1994):, "A Sociology of Modernity LibertyAnd discipline, Rutledge, London.
- Jecques, Donzelat , (1991): " The mobilization of society University of Chicago Press, Chicago London.
- Chekki.A. Danesh, (2017): "modernizationAnd kin Network. Rutledge. London.
- Hirst, Pout. H., (2011): "Educational TheoryAnd its Foundation Disciplines, Rutledge. London.
- Gupta, B.S (1904):, "Mahatma GandhiAnd mass communication", Rawat

publication, New Delhi.

Journals & Articals:

- M. Lips, J.A. TaylorAnd F. Bannister (Eds.), PublicAdministration in the Information Society-Essays on RiskAnd Trust.
- Ibarrahm, (1993), " Network centrality, power,And innovation involvement: Determinants of technicalAndAdministrative roles. TheAcademy of Management Journal 36:471-501.
- Wilson F (2005) Caught between differenceAnd similarity: The case of womanAcademics. Women in Management Review 20 (3/4): 234-248.
- M. Veenswijk (Ed.) Organizing Innovation-NewApproaches to Cultural ChangeAnd Intervention in Pubic Sector Organizations.
- V.J.J.M. BekkersAnd V.M.F. Hornburg (Eds.) The Information Ecology of E-Government-E-GovernmentAs InstitutionalAnd Technological Innovation in PublicAdministration.
- D. Ward. The European Union Democratic DeficitAnd the Public Sphere:An Evaluation of EU Media Policy.
- M.M.J. van KlinkAnd J.E.J. Prins, LawAnd Regulation: Scenarios for the InformationAge.

Websites:

- www.education.newkerala.com/india-education/Brief-History-of-Education-in-India.html
- www.jagranjosh.com/general-knowledge/summary-on-the-history-of-modern-education-during-british-india
- www.shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/69112/5/chapter%203.pdf
- www.en.wikipedia.org/wiki/History_of_American_journalism
- www.newworldencyclopedia.org/entry/Journalism
- www.newworldencyclopedia.org/entry/Journalism
- www.education.newkerala.com/india-education/Brief-History-of-Education-in-India.html
- www.informationvine.com/Answers

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

भारत की कुछ प्रमुख जनजातियाँ, उनकी आर्थिक व्यवस्था एवं समस्याएँ

* विजय कुमार

सारांश- *अनुसूचित जनजाति को आदिम समाज, आदिवासी, वन्य जाति, गिरिजन इत्यादि नामों से जाना जाता है। पूरे भारतवर्ष में आदिम जातियों का निवास स्थल लगभग पहाड़ों, कन्दराओं, जंगलों में था, इसीलिए इनके जीवन निर्वाह का साधन भी लगभग इन्हीं संसाधनों के ऊपर था। इन समाजों की आर्थिक स्थिति सामान्यतः आखेटक, फंदा शिकारी, पशुपालक और झूम खेती से सम्बन्धित थी। वनों में निवास स्थल होने के कारण इनके जीवन निर्वाह के साधन सामान्यतः वनों से सम्बन्धित उत्पादों पर था। ये लोग अपने जीवन-निर्वाह हेतु परम्परागत कृषि, हाट या बाजार पर निर्भर थे, जिसमें वस्तु-विनिमय के द्वारा वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था। इनमें मुद्रा का चलन नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगीकरण, नगरीकरण, मुद्रा का चलन तथा सड़क सम्पर्क मार्ग के बढ़ने के कारण भारत के अन्य निवासियों के सम्पर्क में आये, जिससे उनके सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में बदलाव आया। इन लोगों के बीच में विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाएँ जैसे-परसंस्कृतिग्रहण, सात्मीकरण देखी जा सकती है। प्रकृति प्रेमी होने के कारण यह लोग प्रकृति पर अपना अधिकार समझते थे, परन्तु भारत सरकार के द्वारा जल, जंगल और जमीन पर अपना केन्द्रीय कानून बनाकर अधिग्रहण करने के कारण जनजाति के लोग इन प्राकृतिक संसाधनों से बेदखल हो गये। इस बेदखली के कारण जनजातियों में अनेक प्रकार की समस्यायें पैदा हुईं। इन समाजों के उत्थान हेतु भारतीय संविधान में बहुत से प्रावधान किये गये हैं तथा सरकार अनेक प्रकार की परियोजनाएँ चला रही है जिससे अनुसूचित जनजाति के लोग समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकें।*

मुख्य शब्द- अनुसूचित जनजाति, वस्तु-विनिमय, परसंस्कृतिग्रहण, प्राकृतिक संसाधन, वन अधिकार नियम, आर्थिक व्यवस्था, सात्मीकरण

प्रस्तावना- जनजाति कौन है, इनका रहन-सहन, खान-पान, बोली-भाषा तथा इनकी आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु कौन-कौन से रूप हैं, प्रस्तुत शोध पत्र में इसका वर्णन किया गया है। जनजाति को आदिम समाज, आदिवासी, वन्य जाति, गिरिजन एवं अनुसूचित जनजाति आदि नामों से जाना जाता है। इनकी सामान्य विशेषताओं को यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है। अनुसूचित जातियों के जीवन निर्वाह के कौन-कौन से साधन है तथा पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आने के कारण इनकी परम्परागत आर्थिक व्यवस्था में कैसा परिवर्तन हुआ है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इनके उत्थान हेतु जो संवैधानिक प्रावधान

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, बी.एस.एन.वी. पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

किये गये इन सबका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

जनजाति– जनजाति कौन है? इसकी परिभाषा क्या होनी चाहिए, इस सम्बन्ध में अनेक लोगों ने अनेक तरह से विचार दिये हैं। जनजातियों को आदिम समाज, आदिवासी, वन्य जाति, गिरिजन एवं अनुसूचित जनजाति आदि नामों से पुकारा जाता है। आदिवासियों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा जनगणना में विभिन्न शीर्षक दिये गये हैं[1]–

वर्ष	सरकारी जनगणना में दिया गया शीर्षक (नाम)
1891	कृषि तथा पशुपालक जातियों के अंतर्गत 'जंगली जनजातियाँ' (Forest tribes' Under Agricultural and Pastoral Castes)
1901	प्रकृतिवादी (Animists)
1911	जनजातीय प्रकृतिवादी अथवा जनजातीय धर्म के अनुयायी (Tribal Animists or People Following Tribal Religion)
1921	पर्वतीय एवं जंगली जनजातियाँ (Hill and Forest Tribes)
1931	आदिम जनजातियाँ (Primtive Tribes)
1941	जनजातियाँ (Tribes)

(स्रोत : द इस्टर्न एंथ्रोपोलोजिस्ट, अक्टूबर-दिसंबर 2008, पेज 489)

स्वतंत्रता के बाद इनका नामकरण अनुसूचित जनजाति के रूप में किया गया। इम्पीरियल गेजेटियर ऑफ इंडिया के अनुसार, 'एक जनजाति परिवारों का एक संकलन है, जिसका एक नाम होता है, जो एक बोली बोलती हैं, एक सामान्य भू-भाग पर अधिकार रखती हैं या अधिकार जताती हैं और जो प्रायः अंतर्विवाह नहीं करती रही हैं।'

डब्लू.जे. पेरी के अनुसार, 'एक समूह सामान्य भाषा बोल रहा है और सामान्य क्षेत्र में निवास कर रहा है तो वह एक जनजाति है।' डॉ0 डी.एन. मजुमदार के अनुसार, 'एक जनजाति परिवारों या परिवारों के समूह का संकलन होता है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं, समान भाषा बोलते हैं और विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में निश्चित निषेधात्मक नियमों का पालन करते हैं और पारस्परिक कर्तव्यों की एक सुविकसित व्यवस्था को मानते है।

हावेल का मानना हैं कि, 'एक जनजाति एक सामाजिक समूह है, जो एक विशेष भाषा बोलता है तथा एक विशेष संस्कृति रखता हैं जो उन्हें दूसरे जनजाति समूहों से पृथक करती है। यह अनिवार्य रूप से राजनीतिक संगठन नहीं है।

अतः एक जनजाति एक ऐसा समूह है जिसकी एक सामान्य संस्कृति, रहन-सहन, भाषा, व्यवसाय, क्षेत्र और राजनीतिक संगठन होता है तथा जो सामान्यतः अंतर्विवाही नियमों का पालन करते हैं।

जनजाति के लक्षण (विशेषताएँ)– जनजाति की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

1. **निश्चित सामान्य भौगोलिक स्थिति:** एक जनजाति एक निश्चित भू-भाग में रहती है। इस कारण उस भू-भाग से एक लगाव और मजबूत सामुदायिक भावना पाई जाती है, किन्तु रिवर्स जनजाति के लिए एक निश्चित भू-भाग को आवश्यक नहीं मानते। फिर भी सामान्यतयाः जनजातियों का एक निश्चित भू-भाग होता हैं जैसे-मुण्डा, हो, संथाल, गोंड, नागा, कुकी, मीणा, थारू, जारवा इत्यादि का है।

2. **सामान्य भाषाः** हर जनजाति की अपनी एक सामान्य भाषा होती है। जैसे-गोंड समुदाय की गोंडी, मुण्डा की मुण्डारी, संथाल की संथाली इत्यादि। ये लोग अपनी भाषा के माध्यम से ही अपनी संस्कृति का आदान-प्रदान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करते हैं। परन्तु आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, संस्कृतिकरण, सात्मीकरण, पर-संस्कृतिकरण तथा ईसाइयत के प्रसार ने इनकी भाषा पर आघात किया है।

3. **सामूहिक चेतनाः** हर जनजाति में अपने सदस्यों के प्रति एकीकरण संबंधी चेतना होती है। वह अपने धर्म, भाषा, लोक-संस्कृति, भौगोलिक क्षेत्र के प्रति सचेत रहते हैं।

4. **सामान्य निषेधः** हर जनजाति का अपना कोई-न-कोई टोटम होता है। टोटम के प्रति लगाव और श्रद्धा भक्ति होती है। उसे छूना, मारना, खाना निषिद्ध होता है। उसके नाम को बड़े श्रद्धाभाव से उच्चारित करते है।

5. **अंतर्विवाही समूहः** सामान्यतया एक जनजाति के सदस्य अपनी ही जनजाति में विवाह करते हैं, अर्थात् ये अंतःविवाही होते हैं।

6. **सामान्य संस्कृतिः** एक जनजाति की सामान्य संस्कृति होती है। इनकी प्रथा, लोकाचार, संगीत, नृत्य, कला, धर्म, जादू-टोना, रीति-रिवाज, विश्वास, मूल्य इत्यादि में समानता पाई जाती है।

7. **एक नामः** प्रत्येक जनजाति का कोई एक नाम अवश्य होता है, जिसके द्वारा वह पहचानी जाती है। लगभग हर जनजाति अपना नाम प्रकृति से जोड़कर रखती है, जैसे-गोंड लोग अपने नाम के बाद धुरिया, टीकम, मरकाम, मारिया, मुरिया इत्यादि लगाते हैं, जो पृथ्वी, वृक्ष, पहाड़ इत्यादि का सूचक होता है। लगभग वही उसका टोटम भी होता है।

8. **आर्थिक आत्मनिर्भरताः** प्रत्येक जनजाति का संबंध प्रकृति से जुड़ा होता है। खुरपी, कुदाल, बेधनी, हंसिया, तीर-धनुष इनके हथियार होते हैं। उनका बेहद सरल जीवन उसी प्रकृति पर आश्रित रहता है तथा 'झूम खेती', स्थानीय मजदूरी, वनों के उत्पादों का एकत्रीकरण कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। अतः ये आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते हैं।

9. **सामाजिक संगठनः** भारतीय जनजातियों में युवा संगठन एक संस्था के रूप में पाया जाता है, जहाँ पर इनके युवाओं को जीवन जीने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जनजातियों के अलग-अलग नामों से यह युवा संगठन पाया जाता है, जैसे-कोनयक नागा युवकों के संगठन को "मरूंग" तथा युवतियों के संगठन को "यो", मेमी, नागाओं में इस संगठन को क्रमशः "इखइची" तथा "इलोइची"; अंगोमी नागाओं में "किचुकी"; मुण्डा और हो में "गिटिओरा"; ओरांव में "घुमकुरिया"; गोंड में "गोटुल" या "घोटुल" कहा जाता है।

10. **राजनीतिक संगठनः** जनजातियों का अपना एक राजनीतिक संगठन होता है। इनमें मुखिया का पद वंशानुगत आधार पर मिलता है। मुखिया अपने सदस्यों में परंपराओं का पालन कराने, नियंत्रण बनाए रखने एवं उल्लंघन करने पर सामूहिक दंड देने की व्यवस्था करता है। परन्तु स्वंतत्रता के बाद विभिन्न राजनीतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक परिवर्तनों के कारण इनकी व्यवस्था में बदलाव आया, किन्तु अब अलगाव व उपेक्षा के कारण इनमें नृजातीयता की भावना पैदा हुई है। अब ये लोग स्वयं लोकतांत्रिक ढंग से राजनीतिक दलों का निर्माण करने लगे हैं और अपनी पहचान को बनाने का प्रयास कर

रहे हैं।

भारतीय जनजातियों में आर्थिक संगठन का रूप– समकालीन आदिम अर्थव्यवस्था प्रागइतिहासकालीन आर्थिकी के काफी समान है। आर्थिक जीवन के विभिन्न प्रकारों के बारे में थर्नवाल्ड द्वारा प्रस्तुत सूची इस प्रकार है-

1. आखेटक एवं फंदा शिकारी पुरूषों तथा खाद्य संकलन स्त्रियों का समरूपी समुदाय। कादर, चेंचू, खरिया, कोरवा आदि इसी वर्ग में आने वाली भारतीय जनजातियाँ हैं।
2. आखेटक, फंदा शिकारी एवं कृषकों का समरूपी समुदाय। कमार, बैगा और बिरहोर जनजातियाँ इसी प्रकार के उदाहरण हैं।
3. आखेटक, फंदा शिकारी, कृषक एवं दस्तकारों का स्तरीकृत समाज। भारत की अधिकांश जनजातियाँ इसी वर्ग में आती हैं। चेरो तथा अगरिया एवं कुछ अन्य जनजातियाँ दस्तकारी के लिए प्रसिद्ध हैं।
4. पशुपालक। टोडा और भीलों के कुछेक वर्ग उत्कृष्ट पशुपालक हैं।
5. समरूपी आखेटक एवं पशुपालक। टोडा पशुपालक तो हैं, किन्तु शिकारी नहीं। ये मछलियों एवं पक्षियों को नहीं मारते।
6. प्रजातीय दृष्टि से स्तरीकृत पशुपालक एवं व्यापारी। उत्तर प्रदेश के हिमालयवर्ती क्षेत्रों के भोटिया याक पालक और जिबस टट्टूपालक तथा भ्रमणकारी व्यापारी हैं। ये सर्दियों में मैदानी इलाकों में उतर आते हैं तथा गर्मियों में तिब्बत तक पहुँचते हैं।

हिल्डरब्रांड ने वस्तु-विनिमय (बार्टर), मुद्रा (मनी) और उधारी (क्रेडिट) पर आधारित आर्थिक व्यवस्थाओं का उपयोगी वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।[2]

ए.आर.एन. श्रीवास्तव ने आर्थिक आधार पर जनजातियों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है-

1. **जंगलों में शिकार करने वाली जनजातियाँ**– जंगलों पर आश्रित रहने वाली जनजातियाँ दक्षिण भारत में अधिक हैं। आन्ध्रप्रदेश के चेंचु चांड़ी, केरल के कादर, मालापतरम, करूम्बा, तमिलनाडु के पलियन एवं अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह के ओंगे, जारवा, सैन्टिनल तथा निकोबारी प्रमुख हैं।

2. **पहाड़ी कृषि करने वाली जनजातियाँ**– ये लोग जंगल के कुछ भाग को काटकर जला देते हैं, फिर राखयुक्त मिट्टी पर खेती करते हैं। पहाड़ी कृषि के इस रूप को स्थानान्तरित खेती या "काटो और जलाओ कृषि" की संज्ञा दी जाती है। उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के असम, अरूणांचल, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम की जनजातियाँ स्थानान्तरित खेती में लगी हैं। इसे झूम खेती भी कहा जाता है।

3. **समतल भूमि पर कृषि करने वाली जनजातियाँ**– मध्यप्रदेश के उरांव, मुण्डा, हो, संथाल, गोंड, भील, कोल, भूमिज आदि सरल कृषक हैं।

4. **सरल कारीगर जनजातियाँ**– कश्मीर के गुज्जर, हिमांचल प्रदेश के किन्नौरी ऐसी जनजातियाँ हैं जो लकड़ी से आवश्यक वस्तुएँ बनाने का काम करती हैं। छोटानागपुर के लोहरा, करमाली, चीक, बराईक, महली कारीगर श्रेणी की जनजातियाँ हैं। बिहार के असुर और मध्यप्रदेश के अगरिया लोहा गलाकर विभिन्न औजार बनाते हैं। दक्षिण भारत में ईरूला, बाँस की चटाई तथा टोकरी बनाकर जीविका चलाते हैं।

5. **पशुपालक जनजातियाँ**– इनमें दक्षिणी भारत की टोडा जनजाति प्रमुख है। हिमाँचल प्रदेश के बकराबल, गद्दी तथा जद्ध दुग्ध उत्पादन कार्य में लीन हैं।

6. **लोक कलाकार जनजातियाँ**– उत्तर प्रदेश के दक्षिणी-पूर्वी भाग में भ्रमण करने वाले नट एवं सपेरा इसके उदाहरण हैं। उड़ीसा के मुण्डुप्पता कुशल कलाबाज हैं।

7. **कृषक और गैर–कृषक जनजातियाँ**– कुछ जनजातियाँ ऐसी हैं, जो परम्परागत रूप से कृषक हैं परन्तु भूमिहीन हैं। वे कृषि मजदूर के रूप में कार्य करती हैं तथा गैर कृषक श्रमिक जो विभिन्न लघु उद्योगों में मजदूर के रूप में लगे हैं। बिहार तथा पश्चिमी बंगाल की कुछ जनजातियाँ असम के चाय बागानों में मजदूरी कर जीविका चलाती हैं।

8. **नौकरी तथा व्यापार में लगी जनजातियाँ**– मेघालय, मिजोरम तथा नागालैण्ड तथा राजस्थान के मीणा आदिवासी उच्च प्रशासनिक पदों पर आसीन हैं।[3]

नृ-विज्ञानियों ने अपने जनजातीय समाजों के अध्ययन के माध्यम से तीन प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाओं की चर्चा की है-

1. जो वन पशुओं के शिकार तथा कन्द-मूल के संचय पर निर्भर हैं,
2. जो पशुपालन पर निर्भर हैं,
3. जो कृषि या पशुपालन मिश्रित कृषि पर आधारित हैं।[4]

भारत की आखेटक जनजातियाँ यथा-असम के कोन्याक, उड़ीसा के जुआंग, आन्ध्रप्रदेश के चेन्चु, केरल के कुरूम्बा और कादार, बिहार के बिरहोर इत्यादि के युवा एवं प्रौढ़ पुरूष जंगलों में आखेटन, शहद संग्रह, मत्स्यमारण के लिए प्रस्थान करते हैं तो स्त्रियाँ खाद्यमूल संग्रह, फल संग्रह, जलावन संग्रह का कार्य करती हैं। कृषि कार्यरत, जनजातियाँ यथा मुण्डा, उरांव, गोंड के पुरूष सदस्य खेतों की जुताई और तैयारी करते हैं, तो पशुपालक टोडा भैंस का पवित्र दुग्धोत्पादन करते हैं।[5]

जनजातियाँ पहाड़ों, कन्दराओं, जंगलों, नदियों इत्यादि में वास होने के कारण उनका आर्थिक जीवन भी इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता है, जैसे- 1. वन पर निर्भर अर्थव्यवस्था, 2. सरल तकनीकी, 3. आर्थिक व्यवहार में मुनाफावृत्ति का अभाव, 4. समुदाय एक सहकारी इकाई, 5. उपहार एवं उत्सव विनिमय (अ) साधारण आदान-प्रदान, (ब) समान आदान-प्रदान, (स) नकारात्मक आदान-प्रदान), 6. निश्चित अन्तराल बाजार, 7. परस्पर-निर्भरता

जनजातियों की आर्थिक स्थिति पर निर्मल कुमार बोस द्वारा प्रस्तुत विवरण इस प्रकार है- बोस लिखते हैं कि बिरहोर की संस्कृति की मुख्य विशेषता यह है कि ये लोग भूमि से स्थायी रूप से कभी बँधे नहीं रहे और न ही स्थायी रूप से अपना घर बनाये। बिरहोर जनजाति के लोग जंगल के उत्पादों और छोटे शिकारों के ऊपर जीवन निर्वाह करते थे।[6] जुआंग की महिलाएँ जंगल से जंगली जड़ों, पत्तियों और बेरियों के संग्रह का काम प्रमुखता से करती हैं। परन्तु यह सभी वस्तुएँ जंगल के अन्दर तक मिलती हैं तो पुरूष भी इनकी सहायता के लिए आते हैं। कुछ जंगली जड़ों का स्वाद अम्लीय होने के कारण जुआंग जनजाति के लोग खाने से पूर्व गर्म पानी में बार-बार धोते हैं, तब इसको खाने में प्रयोग करते हैं।[7] आर्थिक संगठन के अन्तर्गत मछली मारना, आम की गुठली को पीसकर विभिन्न प्रकार का पाउडर बनाना इत्यादि करते हैं। जुआंग पुरूष जंगल से लकड़ी की चोरी करते हैं और अपने पड़ोसियों को बेच देते हैं। क्योंझर की महिलाएँ बड़ी मात्रा में

तेन्दू की पत्तियाँ इकट्ठा करके मैदानी क्षेत्रों के व्यापारियों को बेच देती हैं तथा वह लोग इसका बीड़ी बनाने वाले उद्योगों को निर्यात कर देते हैं। बहुत से गाँवों की महिलाएँ जंगली खजूर के पेड़ के पत्तों को इकट्ठा करके और उसकी चटाई बनाकर बाहरी लोगों को बेच देती हैं। पालाहार के पुरूष जंगलों से बाँस को इकट्ठा करके उसकी टोकरी बनाकर अपने घरों से बहुत दूर जाकर साप्ताहिक बाजारों में बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करते हैं। जुआंग लोग अपने जीवन निर्वाह हेतु स्थानान्तरित खेती पर भी निर्भर रहते हैं, जिसको असम में झूम खेती कहते हैं।[8]

सवोरा जनजाति में पहाड़ी सवोरा को छोड़कर बहुतायत में सवोरा लोग मैदानी भागों में पलायन कर चुके हैं, जिसके कारण वे अपनी भाषा या तो उड़ीसा या तेलगू को समाप्त कर चुके हैं। अन्य जनजातियों के तरह ही सवोरा लोगों का व्यवसाय लोहे के तीर-धनुष का निर्माण करना, टोकरी बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना तथा झूम खेती करना इत्यादि है। बहुत से सवोरा लोग असम के चाय के बागानों में नौकरी पा गये। इससे प्रभावित होकर महत्वाकांक्षी सवोरा युवा असम गये तथा पर्याप्त मात्रा में धन कमाकर वापस आये तथा जमीन खरीदे और स्वतंत्र कृषक के रूप में स्थायी बस गये। कुछ कामगार कृषि श्रमिक के रूप में, कुछ घरेलू नौकर के रूप में तथा नगर पालिका में नौकरी पर लग गये।[9] गद्दी जनजाति आंशिक रूप से कृषि तथा आंशिक रूप से पशुपालन, व्यापार तथा मजदूर के रूप में आश्रित हैं। गद्दी लोग हिमांचल प्रदेश और पंजाब के कुछ जिलों में पाये जाते हैं। ये लोग कश्मीर में भी पाये जाते हैं जो अब इस्लाम धर्म ग्रहण कर चुके हैं। खासी जनजाति के लोग 'काटो और जलाओ' विधि से खेती करते हैं परन्तु अब वे बहुतायत में इस विधि में परिवर्तन कर चुके हैं। उनका मुख्य फसल धान की खेती था, परन्तु अब बड़ी मात्रा में आलू, अनन्नास और संतरे की खेती मुख्यतः व्यापार हेतु करने लगे हैं। खासी लोग पान तथा सुपारी से विशेष लगाव रखते हैं। ये लोग तेजपत्ते का भी व्यवसाय करते हैं। अन्य फसलों में अरवी, अदरक, हल्दी, मिर्च इत्यादि स्थानीय उपभोग हेतु उत्पादन कार्य करते हैं। मछली और सुअर का मांस इनका पसंदीदा भोजन है। यह लोग तीर-धनुष और भाला फेंककर शिकार करते हैं।[10]

आर्थिक व्यवस्था का औपचारिक तत्व बाजार होता है। सरल समाज के लोगों में यह दशा तुलनात्मक रूप से बहुत कम पायी जाती है। बहुधा बाजार व्यवस्था अपने समुदाय के लोगों में वस्तुओं के आदान-प्रदान में सहायता देता है। परम्परागत रूप से वस्तुओं और सेवाओं का आदान-प्रदान को मार्सेल मॉस ने मनोवैज्ञानिक रूप से गिट का नाम देते हैं। ब्रोनिस्लाव मैलिनोवस्की ने अपनी पुस्तक 'एर्गोनाट्स आफ द वेस्टर्न : ऐन एकाउण्ट आफ नेटिव इण्टरप्राइज एण्ड ऐडवेन्चर इन द आर्किपेलेगोज आफ मेलेनेशियन न्यू गिनियाँ' में लिखते हैं कि अदला-बदली की आर्थिक व्यवस्था की प्रकृति केवल व्यापारिक ही नहीं थी इसने ट्रोब्रियाण्ड आइलैण्ड के आस-पास रहने वाले लोगों के साथ सामाजिक सम्बन्ध के बनाये रखने में भी सहयोग किया। प्रस्तुत किताब का मुख्य विषय कुला विनिमय है, जो एक अद्वितीय आर्थिक अदला-बदली की व्यवस्था है। वह लिखते हैं कि कुला विनिमय अदला-बदली की ऐसी व्यवस्था है जो आइलैण्ड्स के समूह में एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। मार्सेल मॉस कहते हैं कि ब्रोनिस्लाव मैलिनोवस्की यह देखकर आश्चर्यचकित थे कि मैलेनेशिया के लोग वापसी उपहार देते थे। वाणिज्य और उपहार दो भिन्न प्रकार की

क्रियाएँ हैं। वाणिज्य पूर्णरूप से क्षतिपूर्ति और उपहार स्वतः आगे की ओर ले जाने पर आधारित था, क्योंकि कुला विनिमय एक ऐसी मूल्यवान वस्तु है जो ट्रोब्रियाण्ड आइलैण्ड और इसके चारो ओर विस्तृत फैले क्षेत्र में परिभ्रमण करता है जो वाणिज्यिक अदला-बदली में नहीं था। मॉस शुद्ध उपहार को अनर्थक कहते हैं और घोषणा करते हैं कि ट्रोब्रियाण्ड पुरूष वास्तव में अपनी पत्नियों को यौनिक सेवा के बदले क्षतिपूर्ति करते हैं।[11]

जनजातियों में आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित क्रियाओं में नातेदारी एक प्रमुख आधार है। वस्तुओं और सेवाओं का वितरण एक व्यवस्था के तहत सभी समाजों में किया जाता है। यह तीन प्रकार का होता है- (1) पारस्परिकता, (2) पुनः वितरण, (3) बाजार या वाणिज्यिक विनिमय।

वाल्कर लिखते हैं कि दक्षिणी भारत में निवास करने वाली नीलगिरि पहाड़ियों की टोडा जनजाति सदियों से पशुपालक रही है। भैंसे उनकी देवी के रूप में हैं। टोडा चरवाहा अपने पहाड़ों को अन्य तीन जनजातीय समूहों के साथ सहभागी बनाते हैं-कोटा जो कृषक, चमड़े के काम करने वाले, लुहार और मिट्टी के बर्तन बनाने वाले हैं। दूसरा और तीसरा कुरूम्बा और इरूला जो जंगल के निवासी हैं जिनका परम्परागत अर्थव्यवस्था शिकार करना और परम्परागत कृषि है।[12] जीवन निर्वाह की विभिन्न आवश्यक वस्तुओं के लिए टोडा लोग दूसरे लोगों के ऊपर आश्रित रहते हैं। टोडा जनजाति के लोग अनाज, बर्तन, हथियार या औजार तथा अन्य वस्तुएँ अपने साथ की दूसरी जनजातियों से प्राप्त करते हैं तथा उसके बदले में मुख्य रूप से दुग्ध सम्बन्धी उत्पाद देते हैं, परन्तु यह व्यवस्था सीधे-सीधे अदला-बदली से नहीं था। टोडा लोग सामान्यतः आर्थिक मामलों में अपने प्रमुख परम्परागत मित्र बड्गा समुदाय के ऊपर आश्रित रहते थे, जो एक नीलगिरि लोगों में मुख्य जोतदार और व्यापारी के रूप में आर्थिक जीवन जीते हैं। टोडा लोग बड्गा जनजाति से भोजन सामग्री, अनाज इत्यादि प्राप्त करते थे। अपने बड्गा साथी के लिए टोडा लोग टोकरियाँ बनाते हैं ओर घर बनाने वाली सामग्री को भी देते हैं।[13] टोडा अपने भैसों से प्राप्त दूध, घी, उपला और कभी-कभी भैंस या उसका बच्चा भी धन की कमी पूरी करने हेतु बेच देते हैं। एक औसत परिवार में पति-पत्नी, तीन या चार बच्चे होते हैं। टोडा के आय का साधन केवल जानवर है। टोडा दूध को या तो नीलगिरि को-ऑपरेटिव मिल्क सोसाइटी (एक सरकारी संगठन) या नीला मलाई मिल्क सोसाइटी (एक प्राईवेट संगठन) या चाय, काफी की दुकानों पर प्रत्यक्ष रूप से बेच देते हैं। जब टोडा भैंस या भैंस के बच्चे को बेचना चाहते हैं तो वह कसाई या बड्गा को बेचना चाहते हैं।[14]

एस.सी. दुबे अपनी पुस्तक 'द कमार' में लिखते हैं कि पुराने समय में कमार जीवनयापन की वस्तुओं को आदिम विधि से कृषि, अंशतः आखेट या शिकार, मछली मारना और भोजन को जंगल से प्राप्त करते थे। ये लोग बाँस के बने उत्पाद पर निर्भर करते हैं। इन लोगों की सामान्य दिनचर्या और ऊर्जा टोकरियाँ बनाने में केन्द्रित होती है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव और नये आर्थिक मानकों और तकनीकों परिणामस्वरूप उनकी आत्मनिर्भर जनजातीय अर्थव्यवस्था क्षीण हुई है। प्रशासनिक अभिकरणों द्वारा जंगलों में प्रवेश से रोक तथा झूम खेती पर रोंक के कारण कमार लोगों ने जीवनयापन हेतु नये साधनों को अपनाना शुरू कर दिया है। कमार जनजाति के जीवनयापन के कुछ प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं- 1. कृषि, 2. आखेट, 3. मछली मारना, 4. जंगल से भोजन पदार्थ को

इकट्ठा करना, 5. टोकरियाँ बनाना, 6. व्यापार और वस्तुओं की अदला-बदली, 7. कभी-कभी मजदूरी हेतु श्रम करना।[15]

मणिपुर के मोइटी (एक नृजाति समूह) के लिए मुद्रा एक अलग प्रकार का अर्थ रखती है जो सम्पदा से भिन्न है। इसमें कृषि अर्थव्यवस्था की प्रधानता है जो अदला-बदली के सिद्धान्त पर काम करती है। लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं अदला-बदली के माध्यम से होती है। उत्पादन, खरीदारी, कृषि उत्पाद को बेचना एवं टैक्स को चुकाना इत्यादि, धान एवं अन्य खाद्य पदार्थों वाले अनाजों के माध्यम से होता है। मोइटी के लोग एक आर्थिक संगठन मारूप (मित्र) चलाते हैं जो आर्थिक आवश्यकता के समय इससे सहायता मिलती है।[16]

जनजातियों की आर्थिक समस्याएँ- जनजातियों की अर्थव्यवस्थाओं के रूप भिन्न-भिन्न होने के कारण जनजातियों को अनेक प्रकार की आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारत के जनजातियों की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं- 1. भूमि संक्रमण की समस्या, 2. ऋणग्रस्तता की समस्या, 3. स्थानान्तरित कृषि की समस्या, 4. सिंचाई की समस्या, 5. बेरोजगारी की समस्या, 6. कृषक मजदूर की समस्या, 7. बंधुआ मजदूर की समस्या, 8. वन से सम्बन्धित समस्या, 9. साहूकारों और जनजातियों के बीच का सम्बन्ध, 10. वन ठेकेदारों, आबकारी और जनजातियों के बीच संघर्षपूर्ण सम्बन्ध इत्यादि।

जनजातीय अध्ययनों से पता चलता है कि जनजातियों की संस्कृति, दूसरे लोगों से सम्पर्क, परसंस्कृतिग्रहण, औद्योगीकरण और नगरीकरण के प्रभाव के कारण इनकी परम्परागत आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आया है। मैलिनोवस्की का 'कुला विनिमय' तथा मार्सेल मॉस का 'द गिट' जनजातीय समाजों के विनिमय और विनिमय व्यवस्था का उदाहरण पेश करता है। सरल समाजों के बीच पारस्परिकता और पुनः वितरण का सिद्धान्त लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह उसी प्रकार से है जैसे हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में जातियों के मध्य जजमानी व्यवस्था थी, जो सेवा के बदले सेवा पर आधारित थी। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरूआती समय से अ-जनजातीय व्यापारी वर्ग के लोगों ने पहाड़ों और जंगलों में रहने वाले जनजातियों से सम्पर्क बनाने हेतु व्यापारिक केन्द्र बनाना शुरू किये। इसके माध्यम से जनजातियों में नकद मुद्रा का चलन प्रारम्भ हुआ। अपने आर्थिक लाभ हेतु मित्रता बढ़ाने के लिए परम्परागत संस्थाओं जैसे समारोह आयोजित करने लगे। साप्ताहिक हाट या बाजार जनजातीय समुदायों के जीवन (सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक) में महत्वपूर्ण स्थान बनाने लगे। अन्तःपारस्परिक जनजातीय बाजार, सांस्कृतिक परिवर्तन को लाने में विशेष भूमिका निभाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक जनजातीय क्षेत्रों के लोग अदला-बदली अर्थव्यवस्था से नकद अर्थव्यवस्था की ओर जाने लगे। 2016 में विमुद्रीकरण के कारण और आधार कार्ड के माध्यम से सार्वजनिक वितरण प्रणाली वाली दुकानों से सामान मिलने तथा फिर बैंकिंग व्यवस्था से जुड़कर नकदरहित व्यवस्था होने के कारण धीरे-धीरे नकदरहित और डिजिटल अर्थव्यवस्था की ओर खींचा जाने लगा। इस प्रक्रिया से परम्परागत जनजातीय अर्थव्यवस्था समाप्ति की ओर अग्रसर होने लगेगी। सी.पी.आई. (एम.) सम्बद्ध संगठन ऑल इण्डिया किसान सभा ने मुम्बई में आन्दोलन किया जिसका मुख्य मुद्दा कृषक समाज के सम्बन्धित समस्याओं पर था। इन

आन्दोलन में 90 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के थे जो बहुतायत में भूमिहीन थे। उनकी मुख्य माँग वन अधिकार कानून 2006 को लागू करना था और विशेष रूप से व्यक्तिगत वन भूमि पर अपना अधिकार पत्र या पट्टे को दिया जाना था जो वे लोग दशकों से जोतते आये हैं। जनजातियाँ जंगल के उत्पाद पर अपना कानूनी अधिकार चाहती हैं जो परम्परागत रूप से जीविका का स्रोत है। उनका कहना है कि- यदि हम जमीन का पट्टा पाते हैं तो बिना भय के कुँआ खोद सकते हैं। आधुनिक कृषि तकनीक खरीद के लिए लोन लेकर विनियोग कर सकते हैं, हम पानी को रक्षित करने की संरचना को बना सकते हैं जो हमको पूरे वर्ष मदद कर सकता है।[17] महाराष्ट्र की जनजातियों (कटकरी, महादेव कालोज, गोंड और भील) के लिए निर्वनीकृत भूमि 'आई' या माँ है। सिंचाई के लिए कोई स्रोत नहीं है और न ही धन है जिससे सिंचाई के लिए पानी खरीदा जाय। यह जंगल की जमीन न तो उनके आनन्द के लिए है और न ही धन के लिए बल्कि यह जीवन-निर्वाह हेतु है। पूरे महाराष्ट्र की जनजातीय बाहुल्य जिलों में आन्दोलन करने वालो की पट्टे से सम्बन्धित माँग उनके जीवन से गहन रूप से जुड़ी है। अधिकांश जनजाति अपने तालाब का प्रयोग मत्स्य उत्पादन हेतु करती हैं। इससे पर्यावरण भी सन्तुलित रहता है।

वन अधिकार नियम 2006 जनजातीय समुदायों के भूमि अधिकार पाने हेतु लागू हुआ जो पीढ़ियों से जोतते और रहते आये हैं। वन अधिकार नियम की दो विशेषताएँ हैं- पहला, जनजातीयों को व्यक्तिगत या समुदाय को उनके भूमि के ऊपर अधिकार और जंगल के उत्पादों के ऊपर अधिकार देना, दूसरा अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि से परकीकृत और बहिष्कृत होने पर गाँव सभा स्तर तक के शक्ति को विकसित करना है।

नियामगिरि पर्वतों के चारो ओर वेदांता बाक्साइड खानों के प्राजेक्ट के कारण जनजातियों के जल, जंगल, और जमीन का नाश हो रहा है। उड़ीसा के कालाहाड़ी हेमलेट के जनजाति टुनगुरू माझी ने जिला जज से कहा कि "झरना पानी, पवन, पत्ता सब नाश हो जायेगा। नियामगिरि हमारा मेडिकल सेन्टर है। हमारा जानी, बेजुनी (गाँव के देवी और देवता)" हैं। हम पौधों से औषधि इकट्ठा करके अपने बच्चों की दवा करते हैं। क्या आप जानते हैं कि सरकार ने हमको हमारे पहाड़ों पर अधिकार नहीं दिया है। जिस प्रकार से ब्राह्मणों और कायस्थों के देवता लार्ड जगन्नाथ हैं, उसी प्रकार हमारे नियामराजा देवता हैं।" खामबेसी गाँव के निवासियों ने कहा कि, "नियामगिरि हमारा हॉस्पिटल है, यह हमकों औषधि देता है। नियामगिरि हमारा भगवान है, हम इसे किसी को नहीं दे सकते । हम जंगल से दवा हेतु औषधि, फल, और तेन्दू की पत्तियाँ पाते हैं, जिससे हमारी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है। जंगल के कारण पर्यावरण भी स्वच्छ होता है।"[18]

उड़ीसा राज्य के कन्धमाल जिले के मधिखोल गाँव के जनजातियों का आर्थिक जीवन महुआ के फूल और उससे वने उत्पाद के ऊपर भी निर्भर है। महुआ का फूल काफी मीठा होता है। महुआ को सब्जी जैसे पकाकर खाया जाता है तथा सुखाकर रोटी बनाकर खाया जाता है, जैम बनता है, जानवरों के चारे में मिलाया जाता है और पेय पदार्थ बनाने में भी प्रयोग होता है। फूलबनी ब्लाक में मधिखोल और पलेही गाँव के लोगों का कहना है कि महुआ 25रू0 प्रति किलोग्राम से अधिक मिलता है, परन्तु व्यापारी वर्ग अच्छे दाम देने के मामलों में जनजातियों को उत्पीड़ित करते हैं। उनका कहना है कि "कठिन श्रम के द्वारा महुआ बीनने, सुखाने और संग्रहीत करने में अधिक समय खर्च होता है, परन्तु उचित

मूल्य नहीं मिलता है"। रामभबाती कन्हारा जो 'स्वयं सहायता समूह' की सदस्य है, कहती हैं कि गाँव की महिलाओं से समूह के लोग 20रू. प्रति किलोग्राम महुआ खरीदा, 22रू. से अधिक का दाम मिलना चाहिए परन्तु व्यापारी वर्ग ने रू.16-18 तक ही देने को कहा। राज्य सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य में महुआ को शामिल नहीं किया। फूलबनी कस्बा के व्यापारी हम लोगों को लूटते है। पंचायती राज मंत्रालय के 2011 अध्ययन के अनुसार उड़ीसा राज्य के 75 प्रतिशत जनजातीय घर महुआ इकट्ठा करते हैं परन्तु इसका उचित मूल्य नहीं मिलता है। महुआ का न्यूनतम समर्थन मूल्य के निर्धारित न होने के कारण व्यापारी इसका अनुचित लाभ उठाते हैं। महुआ को एल्कोहल के रूप में नहीं बेचने पर भी जनजातियों को कुछ नहीं मिलता।[19]

जनजातीय एकीकरण हेतु संवैधानिक प्रावधान[20]

राष्ट्रीय एकीकरण की मुख्य धारा में लाने हेतु जनजातियों के लिए किए गए कुछ महत्त्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान निम्नलिखित हैं-

* अनुच्छेद 15 में कहा गया है कि भारत अपने नागरिकों में धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, और जन्मस्थान के आधार पर किसी तरह का भेदभाव नहीं करेगा।
* अनुच्छेद 16 एवं अनुच्छेद 335 में यह कहा गया हैं कि यदि सार्वजनिक सेवाओं या सरकारी नौकरियों में जनजातीय लोगों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो, तो सरकार को उनके लिए स्थान सुरक्षित रखने का अधिकार देना और सरकारी नौकरियों में नियुक्तियों के समय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों पर विचार करना।
* अनुच्छेद 19 में संभाषण, अभिव्यक्ति, निवास एवं मुक्त विचरण करने की स्वतंत्रता है।
* अनुच्छेद 46 में राज्य द्वारा कमजोर वर्गों के लोगों विशेषकर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को बढ़ावा देने एवं सामाजिक अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध इन्हें संरक्षण देने का प्रावधान है।
* अनुच्छेद 164, 338 तथा पांचवीं अनुसूची में जनजातियों के कल्याण तथा हितों के प्रयोजन से राज्यों में जनजाति सलाहकार परिषदों तथा पृथक विभागों की स्थापना करने और केन्द्र में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान है।
* अनुच्छेद 164 में असम के अतिरिक्त बिहार, मध्य प्रदेश और ओडिशा में जनजातीय मंत्रालय स्थापित करने का प्रावधान है।
* अनुच्छेद 29 (2) में यह कहा गया है कि सरकार द्वारा संचालित अथवा सरकारी धन से संचालित शिक्षालयों में धर्म, प्रजाति, जाति और भाषा के आधार पर प्रवेश में कोई बाधा न रखी जाए।
* अनुच्छेद 275 (1) के अनुसार, केंद्रीय सरकार द्वारा राज्यों को अनुसूचित जनजातियों के कल्याण को बढ़ावा देने एवं इनके लिए प्रशासन की उचित व्यवस्था करने के लिए विशेष धनराशि प्रदान करने की व्यवस्था की गई है।
* अनुच्छेद 330, 332 एवं 334 में, लोक सभा एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व हेतु सीटें सुरक्षित करने का प्रावधान किया गया है।

* अनुच्छेद 325 में, यह प्रावधान है कि किसी को भी धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग या उनमें से किसी आधार पर मताधिकार से वंचित नहीं रखा जाएगा।

निष्कर्ष– भारत में अनेक प्रकार की जनजातियाँ भौगोलिक आधार अलग-अलग क्षेत्रों में निवास करती हैं। लगभग प्रत्येक जनजातियों की आर्थिक संगठन जल, जंगल और जमीन से जुड़ी रही हैं। यह सभी साधन सामुदायिक स्वामित्व से सम्बन्धित रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रश्चात् इन सभी संसाधनों का राष्ट्रीकरण होने के कारण इनके उपभोग करने पर सरकारी तंत्रों द्वारा रोक लगा दी गई, जिससे जनजातियों को अनेक तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा। ये लोग जल, जंगल और जमीन से परकीकृत हो गये। इसके निदान हेतु वन अधिकार अधिनियम 2006 पारित किया गया तथा भारत सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के संवैधानिक प्रावधान और परियोजनाएँ चलाई गयीं। इन सबके परिणामस्वरूप इन जनजातियों के जीवन में बहुत से सुधार आ रहे हैं तथा वे आर्थिक रूप से सबल होने के लिये प्रयासरत हैं।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. कुमार, डॉ. विजय (2014) भारतीय समाजशास्त्र के अग्रणी चिंतक, (यादव राम गनेश, मुख्य सम्पादक), ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, पृष्ठ 26-28
2. मजुमदार, डी.एन. एवं मदन, टी.एन. (1999), सामाजिक मानवशास्त्र परिचय, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, पृष्ठ 165-166
3. श्रीवास्तव, ए.आर.एन. (2003), भारत की जनजातियाँ, के.के. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, पृष्ठ 231-235
4. उपाध्याय, विजय शंकर एवं शर्मा, विजय प्रकाश (2009), भारत की जनजातीय संस्कृति, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ 22
5. तथैव : पृष्ठ 25
6. बोस, निर्मल कुमार (1972), सम इण्डियन ट्राइब्स, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, पृष्ठ 16
7. तथैव : पृष्ठ 37
8. तथैव : पृष्ठ 38
9. तथैव : पृष्ठ 55-56
10. तथैव : पृष्ठ 154
11. मॉस मार्सेल (2002), द गिट, राउटलेज क्लैसिक, लंदन एवं न्यूयार्क, पृष्ठ ग
12. वाल्कर, एन्थोनी आर. (1986), द टोडा ऑफ साउथ इण्डिया : ए न्यू लुक, हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली, पृष्ठ 10
13. तथैव : पृष्ठ 25-27
14. तथैव : पृष्ठ 116
15. दुबे, एस.सी. (2004), द कमार, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 35
16. सोशियोलाजिकल बुलेटिन (2017), वाल्यूम 66, इश्यू 3, पृष्ठ 349
17. द सण्डे एक्सप्रेस (2018), लखनऊ, 18 मार्च, पृष्ठ 10
18. द इण्डियन एक्सप्रेस (2018), लखनऊ, 17 मार्च, पृष्ठ 13
19. द इण्डियन एक्सप्रेस (2018), लखनऊ, 22 मार्च, पृष्ठ 7
20. कुमार, डॉ. विजय **Op. cit**, पृष्ठ 41

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

धूम्रपान : परिवर्तित परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित)

* प्रियंका कुमारी

सारांश– *चिंता चिता के समान है इसे हमारे पूर्वजों द्वारा ऐसे ही नहीं कहा गया है बल्कि यह सत्य भी है। चिंता/तनाव के कारण व्यक्ति अपना सब कुछ गंवा देता है अपने मन की शान्ति और अपना स्वास्थ्य भी और इन सबके साथ ही वह मानसिक संतुलन भी धीरे-धीरे खोने लगता है। परिवर्तित परिस्थिति के कारण भी व्यक्ति अक्सर तनावग्रस्त हो जाता है। जबकि परिवर्तन एक शाश्वत सत्य है जिसे बदला नहीं जा सकता। समय-समय पर विभिन्न परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक काल व परिस्थिति और समाज में समयानुसार परिवर्तन आते रहते हैं। जहाँ पहले का समाज सरल था। वहीं व्यक्ति का जीवन भी उतना ही सरल व आसान था, परन्तु जैसे-जैसे सामाजिक परिवेश और परिस्थितियों में परिवर्तन आते गये समाज की संरचनायें भी जटिल होती गई, उतनी ही व्यक्ति के जीवन में भी जटिलता आती गयी। व्यक्ति के जीवन में जब कठिनाई व जटिलतायें अधिक होने लगी एवं प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए उस पर दबाव बढ़ने लगा वैसे ही उसके जीवन में तनाव व मानसिक अवसाद जैसे कारक उभरने लगे। जो परिवर्तित समाज की ही देन था। जीवन में उत्पन्न इन तनावों से बचने के लिए वह कभी भौतिक संसाधनों की खोज करने लगे तो कभी आध्यात्मिक मार्गो की। जब इन सबमें असफल रहा तो वह समाज के नकारात्मक पक्ष की ओर बढ़ने लगा। जैसे- नशा, शराब, ड्रग्स, धूम्रपान इत्यादि। धूम्रपान में मौजूद निकोटीन व्यक्ति के मस्तिष्क की नसों को शांत कर थोड़ी देर के लिए आराम की स्थिति में पहुँचा देती है। और व्यक्ति को विश्वास होता है कि वह उसके तनाव को दूर कर रही है और इस तरह से व्यक्ति हर बार तनाव की स्थिति में धूम्रपान का सेवन करने लगता है और यही क्रिया जब बार-बार होती है तो व्यक्ति धूम्रपान के सेवन का आदी हो जाता है। वह जरा सा परेशान होते ही धूम्रपान का सेवन करने लगता है और यह उसके मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। धूम्रपान का सेवन समाज को तबाह कर रहा है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य तनाव की स्थिति में धूम्रपान के अत्यधिक प्रयोग के कारणों का अध्ययन करना है तथा इस शोध पत्र में द्वितीयक स्त्रोतों के आधार पर समीक्षात्मक मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।*

मुख्य शब्द– धूम्रपान, निकोटीन, तनाव, मानसिक अवसाद

प्रस्तावना–आज के समाज की सामाजिक संरचना पहले के समाज की सामाजिक संरचना की तुलना में अधिक जटिल हो गई है। व्यक्ति का जीवन भी उतना आसान नहीं

* रिसर्च स्कॉलर, समाज विज्ञान संस्थान, आगरा (उ.प्र.)

रह गया है जितना पहले था, साथ ही उसकी आवश्यकतायें सीमित थीं और वह सन्तुष्ट था परन्तु जैसे-जैसे समाज विकसित होता गया मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ने लगीं। आवश्यकताओं के फलस्वरूप नये-नये आविष्कार होने लगे, भौतिक संसाधनों में वृद्धि होने लगी साथ ही हर क्षेत्र में गला काट प्रतियोगिता होने लगी, वैसे ही मानव तनावग्रस्त व अवसाद में घिरने लगा और अपनी स्थिति से असन्तुष्ट रहने लगा।

वर्तमान समय में भागदौड़ भरी जिदंगी में व्यक्ति अनेकानेक समस्याओं से घिरा रहता है और यह समस्यायें उसकी व्यावसायिक होती है तो कुछ घरेलू, समस्यायें, जहाँ वह इन सारी समस्याओं से जूझता रहता है। इन समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए कभी वह भौतिक उपाय अपनाता है तो कभी आध्यात्मिक। जब अपनी समस्याओं का समाधान वह इन उपायों से भी प्राप्त नहीं कर पाता है। तब वह तनाव, व मानसिक अवसाद जैसे नकारात्मक अवधारणाओं से घिरने लगता है। काम के उच्च स्तर का तनाव, परिवार व सामाजिक दायित्वों को निर्वाह करने में कठिनाई, अत्यधिक महत्वाकाँछा, अपनी स्थिति से सन्तुष्ट न होना, स्वयं को समयानुसार ना बदल पाना इत्यादि होने पर व्यक्ति के जीवन पर तनाव हावी होने लगता है, तथा वह एक ऐसी अवस्था में आ जाता है जहाँ वह समाज के बनाये नियमों की अवहेलना कर समाज के नकारात्मक पक्ष की ओर जाने लगता है और तनाव से दूर रहने के लिए अवांछित तत्वों का सहारा लेता है जैसे- शराब, ड्रग्स धूम्रपान। धूम्रपान का नशा भी एक ऐसा नशा है जिसे आमतौर पर लोग तनाव या दबाव में आकर लेते हैं और अपनी समस्याओं से उपजे तनाव को व्यक्ति इसी धूम्रपान के सेवन से दूर करना चाहता है। धूम्रपान में मौजूद निकोटीन जो डोपामाइन नाम रसायन उत्पन्न करता है जो व्यक्ति के मस्तिष्क में पहुँचकर एक अलग तरह की शांति व आराम की स्थिति में पहुँचा देता है, जिस कारण धीरे-धीरे व्यक्ति निकोटीन के नशे का आदी होने लगता है और तनाव ही नहीं बल्कि वह इसे हरपल लेने की कोशिश करता है ताकि वह किसी अवांछित तनाव से स्वयं को दूर रख सके। इस धूम्रपान की प्रवृत्ति में ना केवल युवा वर्ग अपितु समाज के मार्गदर्शक माने जाने वाले बुर्जुग वर्ग भी इसके आदी हो रहे हैं और समय से पहले अपना स्वास्थ्य गंवा रहे हैं। युवा राष्ट्र का भविष्य होते हैं साथ ही समाज के आधार शिला की सशक्त कड़ी भी होते हैं जो देश को मजबूत बनाते हैं। युवा वर्ग ही देश के भविष्य कहे जाते हैं परन्तु वही युवा आज अपनी समस्याओं के कारण तनाव और दबाव में धूम्रपान की गिरफ्त में कसता चला जा रहा है और मानसिक अवसाद के शिकार हो रहे हैं। और इसी मानसिक अवसाद में आकर अवांछित तत्वों का सहारा लेकर वह समाज विरोधी कार्य में लिप्त हो जाते हैं जिससे समाज को व्यक्तिगत, आर्थिक व सामाजिक रूप से हानि होती है और वह समाज में योगदान नहीं दे पाते हैं। और कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो केवल मनोरंजन के लिए इसका प्रयोग करते हैं तो वहीं कुछ अपनी विविध समस्याओं, तनाव से मुक्ति पाने के लिए इस पर निर्भर होते हैं। जब व्यक्ति का मन और शरीर इसके सेवन का आदी हो जाता है तो निकोटीन का प्रभाव उसके शरीर और मन पर भी पड़ने लगता है और कुछ समय के अंतराल के बाद वह सिगरेट/धूम्रपान का प्रयोग अपनी बैचेनी कम करने के लिए करने लगता है।

तनाव जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है जैसे- धूप-छाँव, जीवन में आने वाली समस्याओं/तनावों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। तनाव व्यक्ति के रोजमर्रा जीवन

का आज हिस्सा बन गया है जिससे दूर नहीं रहा जा सकता, और जब तनाव व्यक्ति के जीवन में अधिक होने लगता है तो वह कुंठा, निराशा व हताशा और नकारात्मक विचारों से घिरने लगता है और एक ऐसी अवस्था में पहुँचने लगता है जहाँ पर वह नशे और धूम्रपान की ओर उन्मुख होने लगता है। व्यक्ति अपनी हताशा व निराशा को छिपाने का प्रयास करने के लिए धूम्रपान का अधिक प्रयोग करने लगता है जिस कारण वह यदा-कदा आपराधिक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो जाता है और यही प्रवृत्ति उसे अपराधी या मानसिक रोगी बना देती है। जो समाज के लिए अहितकर होता है। समाज में धूम्रपान करनेवाले, नशा करने वाले तथा अपराधियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है जो कि आज एक चिंताग्रस्त समस्या बन गयी है, और व्यक्ति ही नहीं अपितु वह परिवार जिसका कोई सदस्य धूम्रपान का नशा करता है वह भी तनावग्रस्त होने लगते हैं।

धीरे-धीरे धूम्रपान की समस्या एक विश्वव्यापी समस्या बन गई है। धूम्रपान प्रत्येक समाज या राष्ट्र में हर काल व परिस्थिति में विद्यमान रहा है। पहले हुक्का का प्रयोग होता था जो अधिकांश बुर्जुगों द्वारा किया जाता था, और युवा वर्ग के इससे दूर रखा जाता था, परन्तु वर्तमान समय में अब धूम्रपान के लिए सिगरेट/बीड़ी का प्रयोग अधिक होने लगा है जो युवा वर्ग द्वारा अधिक प्रयोग में लाया जा रहा है। तम्बाकू/धूम्रपान वर्तमान में धूम्रपान करने का सबसे लोकप्रिय प्रकार है। तम्बाकू का धूम्रपान एक ऐसी प्रक्रिया है जो 1.1 बिलियन लोगों द्वारा की जाती है। इसके उपभोगकर्त्ता 1/3 भाग वयस्क आबादी है। विभिन्न आँकड़ों के अनुसार 1 अरब से ज्यादा लोगों द्वारा धूम्रपान का सेवन किया जाता है जो 2014 की जनसंख्या का 20 प्रतिशत है।[1]

जनसंख्यात्मक दृष्टिकोण से देखें तो वर्तमान में विश्वभर में धूम्रपान करने वालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है ना केवल पुरूष बल्कि महिलायें भी धूम्रपान का सेवन कर रही है धूम्रपान का सेवन करना इनकी स्वतंत्रता का कारक है।[2] इस धारणा के साथ वे इसके सेवन से अछूती नहीं रही है। यहाँ तक कि गर्भावस्था में भी महिलायें धूम्रपान के सेवन का मोह नहीं छोड़ पाती है। क्योंकि उन्हें विश्वास होता है कि इसके सेवन से उन्हें गर्भावस्था में होने वाले तनाव से निपटने में मदद मिलेगी।[3] वही वयस्क अपने काम के दौरान होने वाले उच्च्व स्तर के तनाव को दूर करने के लिए इसका सहारा लेते हैं। धूम्रपान में मौजूद निकोटीन बहुत जल्द इन्हें अपना आदी बना लेता है। व्यक्ति इस पर इस कदर निर्भर हो जाता है कि तनाव होने पर वह इसका सेवन तुरंत करने लगता है। धूम्रपान के लिए सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[4] धूम्रपान में नशे की लत, मजे के लिए धूम्रपान, तनाव में शान्ति-आराम की स्थिति, उबाऊ-बोरियत दूर करने के लिए,[5] सामाजिक दबाब (मित्र-परिवार) उत्तेजना एवं सामाजिक प्रस्थिति के कारण भी व्यक्ति धूम्रपान करना नहीं छोड़ पाते हैं। निकोटीन व्यक्ति की अवसादक अवस्था में नसों को शांत करता है एवं एकाग्रता बढ़ाने में मदद करता है। निकोटीन उत्तेजक व अवसाद दोनों का ही प्रभाव देने लगता है इसका सबसे अधिक प्रभाव मानव व्यवहार पर पड़ता है। निकोटीन व्यक्ति के मस्तिष्क संचरण को प्रभावित कर व्यवहार को परिवर्तित कर देता है।[6] जिससे वह हर पल बैचेन, उदास, नकारात्मकता, असभ्य व्यवहार, हताशा-निराशा आदि जैसे भाव आते रहते हैं। व्यक्ति चाहकर भी धूम्रपान का सेवन नहीं रोक पाता है क्योंकि उसके मस्तिष्क में निकोटीन की मात्रा इतनी अधिक होने लगती है कि ना लेने पर

वह उसका व्यवहार बदल जाता है वह बैचेन अवस्था में धूम्रपान के सेवन के बारे में सोचने लगता है। जिससे वह और तनाव की स्थिति में आ जाता है और मानसिक अवसाद जैसी स्थिति से घिर जाता है और धूम्रपान का सेवन करना प्रारम्भ कर देता है। जिससे वह शारीरिक तौर पर कमजोर होने लगता है तथा विभिन्न प्रकार के रोगों द्वारा ग्रसित होता है जिसमें कैंसर मुख्य रोग के रूप में उभर कर सामने आता है। World Health Organization के अनुसार भारत में वर्ष 2010 में होने वाली मृत्युदर का आंकड़ा 53 प्रतिशत है। धूम्रपान दुनिया भर में अकाल मृत्यु के प्रमुख कारणों में से एक है।[7]

धूम्रपान /तम्बाकू से होने वाले प्रमुख कैंसर मुँह का कैंसर है जिससे व्यक्ति सबसे अधिक प्रभावित होते हैं और यह भारत में होने वाले सबसे अधिक कैंसर है।[8] वहीं फेफड़ों के कैंसर से विश्वभर में सबसे अधिक मृत्यु होती है। हीमोग्लोबिन का स्तर कम हो जाता है। त्वचा विकार, कैंसर, ब्रैस्ट कैंसर और अन्य गंभीर शारीरिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं।[9] यह हृदय रोग, स्ट्रोक व रक्त वाहिकाओं के रोगों का कारण भी बनता है पहले उच्च वर्ग द्वारा इसका प्रयोग किया जाता था किन्तु बदलते समय के साथ धूम्रपान का प्रयोग निम्न या मध्यम वर्ग भी उच्च वर्ग के अनुसरण के साथ करने लगा। जिससे उनकी सामाजिक प्रस्थिति पर भी प्रभाव पड़ने लगा और साथ ही साथ आर्थिक प्रस्थिति पर भी। धूम्रपान का नशा व्यक्ति को पूरी तरह से अपने शिकंजे में कस लेता है। उसके बाद व्यक्ति इसके मोह से बच नहीं पाता है और व्यक्ति इसके सेवन को लेकर गंभीर हो जाता है व कई बीमारियों का शिकार भी।

साहित्य समीक्षा–

Haro Rose and frank J. Chaloupka (2001)[11] धूम्रपान व्यक्ति की बाहरी असफलता व नकारात्मकता का परिणाम है। जब व्यक्ति मानसिक तौर पर बीमार, किसी के दबाव में या स्वयं किसी कार्य में असफल होने का भय होता है तब व्यक्ति अक्सर इन तत्वों की तरफ आकर्षित होता है।

राम आहुजा (सामाजिक समस्यायें 2009)[10] व्यक्ति जब सिगरेट बीड़ी, तम्बाकू, इत्यादि में से किसी एक नशीले पदार्थ का आदी हो जाता है तो उस व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक निर्भरता इन पदार्थो पर इस हद तक जाती है कि इनके बिना वह खालीपन, बैचेनी, हताशा व निराशा महसूस करने लगता है। सिगरेट/तम्बाकू को उत्तेजक, अवसादक व भम्रोत्पादक पदार्थ माना जाता है। जिससे व्यक्ति अपनी बोरियत/उबाऊपन व तनाव को दूर करता है।

Pomerleau F ovide Pomerleav Cyathia[12]. जो लोग अपना तनाव चिंता, घबराहट को दूर करने के लिए व शांति प्राप्त करने के उद्देश्य से धूम्रपान का सेवन करते हैं, और परमानंद की प्राप्ति का अनुभव करते हैं। इनके मस्तिष्क में निकोटीन की मात्रा इतनी अधिक होती है। कि वे धूम्रपान का सेवन कर सिर्फ आत्म संतुष्टि प्राप्त करना चाहते हैं कुछ व्यक्ति तनाव की स्थिति में अत्यधिक धूम्रपान का सेवन करने लगते हैं।

Dr. Deo Jen and Dr. Chris (2009)[13] वयस्क व्यक्ति अक्सर इस धारणा के साथ/धूम्रपान/निकोटीन लेना आरम्भ करता है कि ये उसका तनाव दूर कर देगी पर धूम्रपान व्यक्ति का तनाव दूर करने का बजाय उन्हें धीरे-धीरे मानसिक रोगी बना देता है और उनके व्यवहार को अनियंत्रित कर देता है।

Abikoge E Gboyege et al[14] धूम्रपान का सेवन/निकोटीन व्यक्ति के शरीर व मस्ष्तिक में तेज आघात करता है जिससे व्यक्ति का मस्तिष्क सुन्न पड़ जाता है। धीरे-धीरे वह तनाव और अवसाद से दूर जाने के बजाय अवसाद में घिर जाता है। जिससे व्यक्ति निकोटीन का सेवन अधिक करने लगता है।

Zoe Hows (2014)[15] मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति धूम्रपान/तम्बाकू की तरफ आकर्षित होते हैं। और जब उनमें इच्छाशक्ति का अभाव होने लगता है, तनाव की अत्यधिक अवस्था में व्यक्ति रहने लगता है तो धूम्रपान का सेवन करना प्रसंद करता है।

Smoking and Mental Heatlh के अनुसार अक्सर व्यक्ति अपने मूड को एवं एकाग्रता में सुधार करने के लिए इसका प्रयोग करता है। जब व्यक्ति धूम्रपान करता है जो निकोटिन की मात्रा लगभग दस सेकण्ड में व्यक्ति के मस्तिष्क में पहुँच जाती है। निकोटिन के नियमित सेवन से मस्तिष्क में भी परिवर्तन आ जाता है। यह भूख को कम करता है जिससे व्यक्ति धीरे-धीरे गंभीर बीमारियों का शिकार हो जाता है।

उद्देश्य पद्धति-

* तनाव होने की स्थिति में धूम्रपान के अधिकाधिक प्रयोग करने के कारणों को ज्ञात करना।
* यह शोध पत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है।

समीक्षा एवं निष्कर्ष-

विभिन्न अध्ययनों के अन्तर्गत यह निष्कर्ष निकाला गया कि फैशन व महानगरीय व पाश्चात्य संस्कृति का अनुसरण, मित्रों के साथ नए अनुभव प्राप्ति, हताशा, कुंठा व तनाव, सामाजिक व पारिवारिक जिम्मेदारी को निभाने में कठिनाई जैसे दबाव से बचने के लिए व्यक्ति धूम्रपान की ओर आकर्षित होते हैं तथा जल्दी ही इसके सेवन के आदी हो जाते हैं। वही आज का युवा वर्ग अपनी स्वतंत्र पहचान के संकट और तनाव के बीच जूझ रहे हैं और इसी तनाव को कम करने के लिए धूम्रपान का सेवन करने लगता है उनका विश्वास होता है धूम्रपान के सेवन से उनका तनाव कम होता है और एकाग्रता बढ़ती है। फिल्मों, टेलीविजन में कलाकारों द्वारा धूम्रपान किये जाने वाले दृश्यों को देखकर भी युवा वर्ग वैसा ही अनुसरण करने का प्रयास करता है। अगर हम गौर से देखें तो धूम्रपान व्यक्ति को नशेड़ी बनाने के प्रथम प्रवेश द्वार की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, समाज में सिगरेट का सस्ता होना, उस तक सरल पहुँच निम्न व माध्यम वर्ग का अधिकांश रूझान, धूम्रपान से जुड़े कारणों की लचर स्थिति और साथ ही व्यक्ति के जीवन में आने वाले उतार-चढ़ावों से उपजे तनाव इत्यादि कारक धूम्रपान के सेवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वहीं अनेक व्यक्तियों में व्यक्गित कमजोरियाँ होती हैं। जिसके कारण वे जीवन में आने वाली समस्याओं और कठिनाइयों का मुकाबला नहीं कर पाते हैं मित्रों में संघर्ष, पति-पत्नी में तनाव, तलाक, काम में असफलता अधिक काम और घर व कार्यालय जैसे कि वातावरण में अचानक परिवर्तन, योग्यतानुसार वेतन न मिलना, नये कार्यों को करने में कठिनाई का अनुभव आदि के कारण व्यक्ति अपने आपको दुःखी व इन परिस्थतियों से मुकाबला करने में स्वयं को असमर्थ महसूस करता है ऐसी अवस्था में वे कभी धूम्रपान व शराब का प्रयोग आरम्भ कर देते हैं और इसके आदी होने लगते हैं।

तनाव होने की स्थिति में व्यक्ति का रूझान सिगरेट के पैकेट की तरफ चला जाता

है। और इस दौरान उसने कितनी सिगरेट ली यह याद नहीं रहता। व्यक्ति के मस्तिष्क में निकोटीन की अधिक मात्रा हो जाने पर उसका मस्तिष्क धीरे-धीरे शून्य होने लगता है और साथ ही शारीरिक कमजोरियां भी आने लगती हैं। धूम्रपान के सेवन से ना केवल मस्तिष्क बल्कि शरीर भी कई अन्य गंभीर बीमारियों का घर बन जाता है जिसमें कैंसर सर्वप्रमुख मुख्य रोग है न केवल मुंह का कैंसर अपितु त्वचा कैंसर फेफड़ों का कैंसर, ब्रेस्ट कैंसर, ब्लड कैंसर जैसे गम्भीर व लाइलाज रोग उत्पन्न हो जाते हैं। व्यक्ति आधुनिकता के प्रति आकर्षित होकर धूम्रपान का सेवन प्रारम्भ कर देता है। साथ ही धूम्रपान के साथ मद्यपान का प्रयोग करने लग जाता है। जिससे उसके नैतिक मूल्यों का धीरे-धीरे पतन जैसे होने लगता है। और साथ ही शरीर का क्षरण भी होने लगता है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. www.wikipedia.com/www.smokingwikipedia.com
2. Dr. Evo. "Smoking and risk of myocardial infarction in women and men: longitudinal populations tudy', Prescolt Institute of Preventive Medicine, Kommune Hospital, DK-1399 (1997-98).
3. Cwing J.H. "Trends in smoking and health research' Smoking during pregnancy chapter III by Kathering Everelt chronic diseases of life style unit, Medical Research Council, South Africa- 2005.
4. Smoking and Mental Health- Mental Health foundation https// mentalhealth.org.uk/ a-to-z/s/smoking and mental health.
5. Tobacco smoking_wikipedia.com.
6. Abikage E Gboyege, Kashimawo J. Adeseyun and Ezez Chikeve. "Tobacco smoking and awareness of smoking cessation products'. University Community Journal of Public Health and Epidemiology, Vol. 6(8) pp. 351-356 (2013).
7. प्रो. जुगल किशोर, स्वास्थ्य पर तंबाकू का प्रभाव सामूहिक चिकित्सा विभाग, मौला आजाद मेडीकल कॉलेज, NHP India - Gateway of Authentic Health Information Published Date 1st May, 2016, Published by Zahid Creted by Sunita, Last updated 1 May, 2016.
8. Park K., Park"s Text Book of "Preventive and Social Medicine' M/s Banarsidas Bhanot, Publishers-1167, Prem Nagar, Nagpur Road, Jabalpur, 482001 (India), 2015, K. Part ISBN No. 978-93-82219-05-7, 23rd edition.
9. डॉ. सुसंत सिम्पनिक "चिकित्सा रजिस्ट्रार" बाइकारो अस्पताल, हैमिल्टन, न्यूजीलैण्ड, क्मतउ छमज छण 2.2015
10. राम आहूजा, "सामाजिक समस्याऐं" (द्वितीय संस्करण) 2000, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, री-प्रिन्ट 2004.
11. Hano Ross, Frank J. Chaloupka, "The effect of cigarette Prices on youth smoking', Research Paper, Series No. 7, Feb. 2001.
12. Pomerleau F. Ovide and Pomerleau Cyathias: "Research on stress and smoking - Progress and Problems' British Journal of Addiction, Vol. 86, Issue 5, pages 599-603 May 1991 (Article fist published online 24th Jan. 2006).
13. Dr. Deo Jen and Dr. Chris "Tobaccos immediate effects on the body compaign for tobacco-free kids'. Sept. 17, 2009.
14. Abikoge E. Gboyege, Kashimawo J, Adeseyun and Ezeu Chikeve- "Tobacco smoking and awareness of smoking cessation production'. University Community Journal of Public Health and Epidemiology, Vol. 5(8) pp. 351-356, 20134.

15. Zoe Hows "Smoking and quitting in persons with mental illness: A review of selected literature' Occasional Research Series: 6 Nov. 2014.
16. Smoking and Mental Health - Mental Health Foundation https//mentalhealth. org.uk/a-to-2/5/smokingandmenthalhealth.

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

स्त्री शिक्षा की महत्ता और समाज

* नीलम श्रीवास्तव

सारांश– *समाज को आगे बढ़ाने के लिए नर और नारी की सहभागिता आवश्यक है। जिस प्रकार गाड़ी को ठीक ढंग से चलने के लिए गाड़ी के दोनो पहियों का साथ–साथ चलना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार समाज रूपी गाड़ी को भी चलने के लिए स्त्री–पुरूष को साथ–साथ चलना होगा। जैसे किसी पक्षी का एक पंख के सहारे उड़ना नितांत असंभव है उसी प्रकार यदि समाज में केवल पुरूष ही शिक्षित हो और स्त्री अशिक्षित तो इससे समाज उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच सकता। अतः समाज के ढॉचे में संतुलन बनाये रखने के लिए और उसे प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए स्त्री का पुरूष के समान ही शिक्षित होना आवश्यक है।*

मुख्य शब्द– समाज, सहभागिता, परिवार स्त्री, संकीर्णता

यह समाज पुरूष प्रधान समाज है। प्रायः स्त्री को घर की चहार दिवारी के अंदर रहने के लिए विवश किया जाता है और उसे नाना प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ देखा जाता है। परंतु आवश्यकता तो इस बात की है कि समाज को सुदृढ़ और प्रगतिशील होने के लिए सबसे पहले स्त्री को ही शिक्षित होना चाहिए क्योंकि समाज की निरंतरता और स्थायित्व को बनाये रखने के लिए स्त्री ही परिवार के माध्यम से बच्चे को जन्म देती है। और उसका पालन-पोषण करती है तथा हर तरह से उसकी देखभाल करती है। तात्पर्य यह है कि स्त्री एक माता के रूप में बच्चो को शिक्षित करती है। मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने कहा है कि बच्चे में पहले सात वर्ष की आयु तक जो गुण पैदा हो जाते है, वे ही बाद में मनुष्य के व्यक्तित्व की रचना करते है।

इसी संबंध में गोल्डस्टीज ने लिखा है कि 'परिवार वह झूला है जिसमें समाज के भविष्य का जन्म होता है इसलिए यदि समाज को सुधारना चाहते है तो सबसे पहले परिवार की संचालक स्त्री को शिक्षित करना होगा।

प्राचीन काल से लेकर आज तक समाज में अधिकांशतः जितने भी महान दार्शनिक, साहित्यकार और समाज सुधारक हुए, वे स्कूल या कॉलेज की शिक्षा के द्वारा ही महान नहीं हुए बल्कि उनकी महानता का श्रेय बहुत हद तक उनकी शिक्षित माताओं को ही जाता है, जैसे क्षत्रपति शिवजी की वीरता की महानता का श्रेय उनकी माता को ही जाता है, जिन्होंने उन्हे वीरता की कहानियाँ सुना-सुना कर निडर और साहसी बनाया। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर समय-समय पर अनेक महापुरूषो और समाज सुधारकों ने समाज की प्रगति और उत्थान के लिए स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। इसमें मुख्य रूप से

* जे.पी.कालेज ऑफ एजुकेशन रीवा (म.प्र.)

ब्रम्ह समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय, आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा गांधी और डॉ. राधाकृष्णन आदि ने समाज में स्त्री शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की और स्त्रियों को पुरूषों के समान शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि स्त्री शिक्षा के अभाव में समाज कभी भी प्रगति नहीं कर सकता। उन्होने नारी की गरिमा का सदा समर्थन किया और उसके सामाजिक जीवन पर लगे प्रतिबंधो की निन्दा की। मध्यकाल में वेदो के अध्ययन से स्त्रियों को वंचित रखना स्वामी दयानंद की दृष्टि में अनुचित था। स्वामी दयानंद सरस्वती ने जोरदार शब्दों मे कहा कि वेदो के अध्ययन-अध्यापन का अधिकार स्त्रियों को उतना ही है जितना पुरूषों को। इसलिए स्त्रियों को पढ़ने-पढ़ाने का निषेध स्वामी दयानंद की दृष्टि में मूर्खता, स्वार्थ और निर्बुद्धिता का प्रभाव था। अतः उन्होने स्त्रियों को शिक्षा के लिए कई शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की ताकि शिक्षित भारतीय समाज की दरिद्रता व संकीर्णता के लिए उत्तरदायी कुसंस्कारों तथा बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेकने के लिए आगे आयें।

21वीं शताब्दी में महिला सशक्तीकरण की बात हुई। महिलाओं के अधिकार में परिवर्तन आया। उनका क्षेत्र केवल घर में रहा वरन वे बाहर भी आयी और उन्होनें बड़ी ही खूबी के साथ प्रत्येक क्षेत्र में अपना नाम किया जैसे इंजीनियरिंग, डॉक्टर, सेना, वायुयान संचालन इत्यादि। इस प्रकार देखते है कि स्त्री किसी भी तरह की भूमिका को सफलतापूर्वक निभाने की क्षमता रखती हैं। केवल उन्हें शिक्षित करने की आवश्यकता है। स्त्री एवं पुरूष के बीच प्राकृतिक तथा जैविक भेद को छोड़कर अन्य सारे भेद या विभाजन कृत्रिम हैं तथा स्त्री और पुरूष सभ्यता की प्रगति के दो अपरिहार्य पहलू है। आधुनिक युग में शिक्षा प्रचार और प्रसार अत्यधिक हुआ है इससे मध्यवर्गीय महिलाओं को स्थिति में कुछ सुधार हुआ लेकिन गरीब पिछड़े वर्ग की स्त्रियों में तुलनात्मक रूप से कम सुधार हुआ है।

सामाजिक बुराइयों और समस्याओं को दूर करने के लिए भी स्त्री शिक्षा की अधिक आवश्यकता है। जब तक स्त्रियॉ शिक्षित नहीं होंगी तब तक समाज निम्न स्तर से उठकर उच्चतर स्तर तक नहीं पहुॅच सकता हैं क्योंकि शिक्षा के अभाव में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक विकास पूर्ण रूप में नहीं हो पाता। वे अंधविश्वास और रूढ़िवादी विचारों में जकड़ी रहती है। अशिक्षित होने के कारण वे प्रगतिशील विचारो कें संपर्क में नही आ पाती। वे अपने अधिकार के प्रति भी जागरूक नहीं होती। वैसे तो महिलाओं के अधिकार की बात हर जगह हो रही है फिर भी पुरूष प्रधान समाज में वे असुरक्षित है, उन पर शोषण हो रहा है, कहीं वे जलायी जा रही है, तो कहीं वे हवस की शिकार हो रही है, अतः समाज में इन सभी परिस्थितियों से निपटने के लिए स्त्रियों का शिक्षित होना आवश्यक है। आज अनुभव कर रहे है कि शिक्षा से लाभान्वित होकर वे अपने अधिकार के प्रति जागरूक हो रही हैं तथा सामाजिक बुराइयों के प्रति आवाज उठा रहीं है, जैसे- बालविवाह, पर्दाप्रथा, सतीप्रथा, विवाह विच्छेद इत्यादि। आज प्रत्येक देश एवं समाज की सबसे बड़ी समस्या जनसंख्या वृद्धि की है। बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने शिक्षा सदा उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप महिलाओं के हितों की उपेक्षा सबसे अधिक होती है। निम्न वर्गीय तथा निम्न मध्यवर्गीय महिलाओं की

स्थिति पर इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। परिवार के अंदर ही तुलनात्मक रूप से बालकों की शिक्षा तथा उनके पोषण पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा बालिकायें सामान्यतया उपेक्षित होती है। परिवार की इस मनोवृत्ति का गहरा प्रभाव बालिकाओं की मानसिकता पर पड़ता है, जो उनके वयः प्राप्ति के बाद भी बना रहता है तथा क्रमशः एक सामाजिक अनुबंध का रूप लेता है। इस संलक्षण का प्रभाव अन्ततः संपूर्ण समाज पर पड़ता है जैसे शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह पक्षपात के फलस्वरूप समाज का अर्द्धांश अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित रह जाता है। उसी तरह, स्वास्थ्य के क्षेत्र में बालिकाओं तथा महिलाआं का कुपोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का अभाव उनकी मातृत्व अवस्था तक पहुँचता है, जिसकी वजह से भ्रूण विकास में गतिरोध होता है और परिणामस्वरूप कम वजन के या अस्वस्थ्य शिशुओं का जन्म होता है जो अन्ततः कई प्रकार के रोगो से आक्रांत हो जाते हैं। इस तरह से जो बात महिलाओं की हितों की उपेक्षा से शुरू होती है, अन्ततः वह अन्यों के लिए भी अहितकार साबित होती है।

इसी तरह शिक्षित स्त्री पर भाग्यवादी दृष्टिकोण, धार्मिक अन्धविश्वास व सामाजिक मिथ्या धारणाओं का प्रभाव भी बहुत कम पड़ता है। जबकि अशिक्षित स्त्री बिना सोचे-समझे उनकी जकड़ में आ जाती है और उनका शिकार बन जाती है, जैसे अशिक्षित माता-पिता बच्चों को ईश्वर की देने समझते है, जो संसार में अपना भाग्य साथ लेकर आता है। पुत्र ही माता-पिता के लिए स्वर्ग का रास्ता खोलता है इत्यादि। लेकिन इन सबका शिकार होने से बचने के लिए आवश्यक है कि स्त्री शिक्षित होनी चाहिए तभी परिवार, समाज व राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

निष्कर्ष यह है कि स्त्रियाँ आज कंधे-से-कंधे मिलाकर कार्य कर रहीं है और आगे बढ़ रहीं है। आज सरकारी और गैर सरकारी अनेक संस्थाएँ स्त्री शिक्षा के लिए काम कर रहीं है, जैसे-ब्रिटेन की एक संस्था के सहयोग से चलाये गये कम्प्यूटर साक्षरता कार्यक्रम तारा अक्षर की मदद से बिहार तथा अन्य 6 राज्यों में 4 हफ्ते में 42000 महिलायें साक्षर हुई। इसमें आठ साल से पचास साल की आयु वर्ग की बच्चियों और महिलाओं ने भाग लिया जिसमें 98 प्रतिशत सफल हुए। यह एक अच्छा संकेत है जबकि विश्व बैंक विकास नीति समीक्षा 2003 की रिपोर्ट के अनुसार साठ साल की आयु के ऊपर के करीब एक तिहाई भारतीय निरक्षर है आज स्त्रियॉ शिक्षा के माध्यम से बड़ी सूझ-बुझ के साथ समाज की समस्याओं को सुलझाते हुए सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहीं है। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि शिक्षित स्त्रियॉ आज के जटिल समाज को काफी हद तक सुधारने, इसे सुखद, स्वस्थ एवं प्रगतिशील बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देकर उसे चार चॉद लगा सकती है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. डॉ. सुरेन्द्र सिंह नेगीः भारतीय दर्शन के विविध आयाम, पृष्ठ 164
2. वहीं
3. वहीं, पृष्ठ 165
4. अमर्त्य सेन, अनुवादक प्रदीप झा, लैंगिक समानता के अनेक पहलूः आधी जमीन, पृष्ठ 90
5. डॉ. किरण झॉ, जनरल फार शोशल रियल्टी इंस्टीट्यूट फार सोशल डेवलमेंट एण्ड रिसर्च गैरी हाटवार, रॉची -(झारखण्ड) पेज नं. 6 से 8

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

गोड़ जनजाति-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (शहडोल जिले के विशेष सन्दर्भ में)

* ओम प्रकाश वर्मा

सारांश- *शहडोल जिले के समस्त आदिवासियों के लगभग 50 प्रतिशत गोड़ जनजाति हैं। मध्यप्रदेश का ऐतिहासिक नाम भी गोड़वाना ही हैं। छत्तीसगढ, पांदा, बैतूल, जबलपुर जिले इन्ही के शासनान्तर्गत थे। आज भी गोड़ों मे से जो लोग राजघराने के हैं, वे राजगोड़ कहलाते हैं। तथा अन्य साधारण गोड़ जमीदार या किसान गोड़ कहलाते हैं। गोड़ो मे बहु विवाह प्रथा और मदिरा, पान आज भी राजसी विलासिता के अवशेष के रूप मे विद्यमान हैं शरीर रचना की दृष्टि से गोड़ मध्यम कद और काले रंग के होते हैं उनमें अपार सहन शक्ति होती हैं जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण मस्ती का होता है और वे आरामप्रद और झंझटों से मुक्त जीवन पसन्द करते हैं स्वभाव से ये कुछ लचीले, सुस्त किन्तु हृदय से सच्चे और विश्वसनीय होते हैं। धैर्य, उन्मुक्तता, हास्य और समत्व इनके जीवन के ऐसे गुण है जो इनको गरीबी के जीवन मे भी जीने योग्य बनाए हुए हैं। शहडोल जिले के आदिवासियों में गोड़ जाति सबसे अधिक प्रभावशाली हैं। ये लोग स्वाबलम्बी होते हैं। आवश्यकताए इनकी सीमित हैं।*

मुख्य शब्द– जनजाति, राजगौड़, अभयारण्य, विशेषाधिकार, कुटीर उद्योग, टोकरिया

प्राचीनकाल मे गोंडों का प्रमुख धन्धा शिकार करना और मछली मारना था लेकिन शिकार पर कानूनी बंदिश लग जाने के कारण तथा अधिकांश प्राणीयुक्त वनों को अभ्यारण्य घोषित कर दिये जाने के बाद से वन्य पशुओं का शिकार चोरी छिपें ही संभव हैं। गोड़ो की परंपरागत अर्थ-व्यवस्था में ढुलाई एवं मांस के लिये पशु पाले जाते थे किन्तु अब सुअर और मुर्गीपालन पर अधिक ध्यान दिया जाता हैं ऐसा माना जाता है कि षरत मुर्गी पालन गोंडों ने ही प्रारंभ किया था यद्यपि इन लोगों की कुटीर उद्योगों की प्रधानता नही थी किन्तु अब समय के साथ-साथ ये चलाने की कोशिश मे हैं। गोड़ स्त्रियां टोकरिया और रस्सियाँ बनाती हैं।

भारत में अनुसूचित जातियों की कुल संख्या 79995896 है तथा जनजातियों की जनसंख्या 38015162 है। जो मिलकर देश की जनसंख्या का लगभग 1/5 भाग है। मध्यप्रदेश और उड़ीसा में जनजातियों की बहुतायत है।[2] (जोशी 2008) मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या में जनजातियों की जनसंख्या का प्रतिशत 23.3 है। प्रदेश के लगभग 10 जिलों में जनजातियों का प्रतिशत राज्य के औसत प्रतिशत से अधिक है। इसी प्रकार शहडोल और खरगोन जिले में 40 प्रतिशत से अधिक जनजातीय जनसंख्या निवास करती है।[4] (शर्मा

* सीधी जिला (म.प्र.)

श्रीनाथ 2009) मैंडेलबॉम के अनुसार- संपूर्ण समाज में जनजातीय जीवन की कड़ियॉं बंधुता पर आधारित है। बंधुता सिर्फ सामाजिक संगठन का सिद्धांत ही नहीं है यह बल्कि उत्तराधिकार, श्रम विभाजन, सत्ता और विशेषाधिकारों के वितरण का सिद्धांत भी है। जनजातीय समाज आकार में छोटे होते हैं। संथाल गोंड़ और भील आदि कुछ जनजातियों की जनसंख्या बहुत है।[3] (शर्मा के0एल0 2006) स्वतंत्रता के पश्चात अनुसूचित जनजातियों तथा आदिवासी (जैसा उन्हें सामान्यतया पुकारा जाता है) का अभिप्राय ग्रहण करने की प्रथा चलती रही है। इस प्रकार का प्रमाणीकरण की संदिग्धता को पूर्णतया समाप्त नहीं कर पाया। निसंदेह समय बीतने के साथ जनजातीय अवधारण तथा परिभाषा संबंधी मतभेद कुछ हद तक निश्चित रूप से कम हो गये, किन्तु इस समस्या को उचित परिपेक्ष्य मे समझने के लिए सैद्धांतिक विचार विमर्श आवश्यक है।[1] (हसनैन 2004)

विधि तंत्र-

कुल 75 गोड़ परिवारों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि किया गया है। अध्ययन कर्ता ने अपने अध्ययन की प्रकृति के अनुसार साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया है इस हेतु इस विषय और क्षेत्र से सम्बन्धित अनुसूची का अध्ययन किया गया तथा कुछ गोड़ परिवारों से प्रारंम्भिक स्तर पर व्यक्तिगत भेंट कर उनकी प्रकृति के अनुसार साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया।

गोड़ जनजाति-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन के अर्न्तगत साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण करते समय यह विशेष रूप से ध्यान दिया गया कि सभी को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। प्रस्तुत शोध कार्य में असहभागिक अवलोकन का प्रयोग किया गया है।[6] (त्रिवेदी एवं शुक्ला 1998)

सामाजिक परिवेश एवं परम्परा-

धर्म एवं त्यौहार- सर्वेक्षित शहडोल जिले के शत्-प्रतिशत गोड़ जनजाति के परिवार हिन्दू धर्म को मानने वाले पाये गये।सभी त्यौहार जैसे दीपावली, दशहरा, होली, रक्षाबंधन आदि मनाते है। इस के अलावा भी गोड़ परिवार के लोगों द्वारा कुछ अन्य त्यौहार मनाये जाते है जैसे-बेदी की पूजा- यह पूजा वर्षा आरम्भ होने के पूर्व होती है। इस पूजा के लिये एक कटोरी में थोड़ा-थोड़ा धान, कोदो, कुटकी, तिल आदि की फसल बोने हेतु बीज लेकर ठाकूर जी की शरण में जाते है। ठाकूर जी को मुर्गे की बलि देने की प्रथा है, लेकिन अब मुर्गे की बलि देने की जगह नारियल सुपाड़ी ठाकूर जी को चढ़ाने लगे है। इस बीज को ठाकुर जी का प्रसाद मानकर खेत जोतते समय अपने बीज में मिला लेते है। कुछ बैगा परिवार के लोग मौनी ब्रत दीपावली के बाद परीबा के दिन मनाते हैं इसमें पूरे दिन मौन रहते है तथा अपने पशुओं को सजा कर जंगल ले जाते है शाम को पूजा कर व्रत व मौन तोड़ते है। हरियाली अमावस त्यौहार को सावन की अमावस्या को मनाया जाता है। इस त्यौहार को मनाने का उद्देश्य यह प्रार्थना करना है कि ईश्वर हमारे खेतों और पशुओं की रक्षा करो। खिचरहाई त्यौहार मकर-संक्रांति के दिन मनाया जाता है। इस त्यौहार के दिन लोग नदी में स्नान करते है और देवताओं को जल चढ़ाते हैं इस त्यैाहार में खिचड़ी खाने एंव दान करने का महत्व है। शहडोल जिले में इस त्यैाहार के दिन जगह-जगह पर मेले लगते है। शहडोल के बाणगंगा में तीन दिवसीय मेला लगता है, जो बहुत प्रसिद्ध है। गोड़ जनजाति के लोग जादूटोने पर भी बहुत ज्यादा विश्वास करते हैं। सर्वेक्षण के अनुसार जादू

-टोने पर विश्वास करने वाले गोड़ों का प्रतिशत 90 के लगभग है। इसके अलावा डीठ लगाना (नजर लगना) एवं जन्तर -मन्तर पर भी गोड़ लोग बहुत अधिक विश्वास करते हैं।

तालिका क्र0 01

शगुन-अप शगुन को मानने सम्बन्धी विवरण

क्र0	शगुन-अपशगुन	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
01	मानते हैं	67	89.33%
02	नहीं	8	10.66%
	योग	**75**	**100%**

गोड़ जनजाति द्वारा जो अपशगुन माने जाते है। वे इस प्रकार हैं-बिल्ली का रास्ता काटना, कुत्ते का रोना, प्रस्थान के समय छींकना, सियार का रास्ता काटना, कौवे की बीट ऊपर पड़ना, जानवरों का रोना, घर से निकलते वक्त खाली घड़ा देखना, पक्षियों के झुण्ड की हवा लगना आदि। गोड़ जनजाति के लोग दिशा शूल भी मानते हैं। जैसे -पूर्व दिशा में सोमवार व शनिवार तथा ज्येष्ठ नक्षत्र में नही जाते, पश्चिम में रविवार, शुक्रवार तथा रोहणी नक्षत्र में नही जाते, दक्षिण दिशा में गुरूवार को उत्तर दिशा में मंगल एवं बुधवार को नही जाते हैं। लेकिन रविवार को घी, सोमवार को दूध, मंगलवार को गुड़, बुध को तिल, गुरू को दही, शुक्र को जौ की वस्तु तथा शनिवार को उड़द दाल का सेवन करने से दिशा शूल के दोष से मुक्त मानते है।

लोक नृत्य एवं गीत-

गोड़ जनजति के प्रमुख लोक नृत्य एवं गीतों को दो भागों में बांटा जा सकता है- करमा, शैला, रीना, सुआ आदि गीतों के साथ नृत्य भी किया जाता है, अतः यह नृत्य गीत कहलाते है। इसके अलावा विवाह के गीत सोहर, लोरी, भगत, कथा गीत, स्वॉग गीत आदि बिना नृत्य के गाये जाते हैं। आज भी गोड़ परिवारों में कही-कही तबले के समान एक बाजे का उपयोग करते हैं जो मिट्टी का बना होता है इसे मादर करते है।

परिधान- गोड़ जनजाति के पुरूष हतोप्त (कमीज) एवं लंगोटी के अलावा धोती कुर्ता, पैन्ट शर्ट पहनते हैं। विशेष अवसर पर जैकेट एवं साफा भी पहनते हैं । महिलायें प्रायः धोती पहनती हैं। त्यौहारों एवं विशेष अवसर पर नये कपड़े बनवाने की भी प्रथा है, लेकिन यदि सामर्थ नही हैं तो पुराने कपड़ो को साफ करके पहनते हैं।

भोजन-

गोड़ जनजति के लोग सुबह के भोजन को 'बासी' दोपहर के भोजन को 'पेज' तथा रात (साय) के भोजन को 'बिहार' करते हैं। कोदव-कुटकी का भी उपयोग करते हैं त्यौहारों अथवा अवसर पर मुर्गा, भजिया, पूड़ी, खीर, आदि भी बनाते हैं। मेहमानों के आने पर बरा विशेष रूप से बनाते हैं एवं शराब भी पीते हैं।

तालिका क0 2

मांसाहार को मानने सम्बन्धी विवरण

क्र0	मांस सेवन	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
01	करते हैं	71	94.66%
02	नहीं करते हैं	4	5.33%
	योग	**75**	**100%**

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि सर्वेक्षित गोड़ परिवारों में 94.66 प्रतिशत परिवार मांस का सेवन करते हैं।

तालिका क्र0 03

मद्यसेवन करने सम्बन्धी विवरण

क्र0	शराब पीते हैं	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
01	हॉ	68	90.66%
02	नहीं	7	9.33%
	योग	75	100%

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि सर्वेक्षित गोड़ परिवारों में 90.66 प्रतिशत परिवार शराब का सेवन करते हैं। सर्वेक्षण के दौरान यह भी पाया गया कि कुल सर्वेक्षित परिवारों में से केवल 6.66 प्रतिशत परिवारों में महिलायें शराब नही पीती हैं। अन्यथा विशेष अवसरों अथवा त्यौहारों में महिलायें भी पुरूषों के साथ शराब का सेवन करती हैं।

गोड़ जनजाति के परिवारों के आर्थिक परिवेश की जानकारी-

तालिका क्र0 04

आय सम्बन्धी विवरण

क्र0	आय (रूपये में)	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	0–500 तक	25	20%
2	500–1000 तक	36	48%
3	1000–1500 तक	09	12%
4	1500–2000 त क	06	4%
5	2000 से अधिक	08	10.66%
6	निश्चित नहीं	01	1.33%
	योग	75	100%

सर्वेक्षित गोड़ परिवारों में 48% गोड़ परिवारों की आय 500-1000 रू0 के बीच, मासिक पाई गई। 20% गोड़ परिवार ऐसे मिले जिनकी आय 500 रूपये से कम मासिक पाई गई। उक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकांश गोड़ परिवार गरीब हैं।

मजदूरी- सर्वेक्षण के दौरान यह तथ्य सामने आया कि कुल 52% परिवार ऐसे थे जिनके द्वारा यह कहा गया कि उनका मुख्य व्यवसाय मजदूरी है। इन परिवारों में पुरूष एवं महिलायें दोनों मजदूरी करते हैं। केवल 9% परिवार ऐसे भी मिले जिसमें केवल महिलायें ही मजदूरी करती हैं।

तालिका क्र0 05

स्वयं की भूमि संबंधी विवरण

क्र0	स्वयं की भूमि	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	है	56	74.66%
2	नहीं	19	25.33%
3	योग	75	100%

गोड़ परिवारों का सर्वेक्षण करने पर पाया गया 74.66% प्रतिशत गोड़ परिवारों के पास भूमि है। 25.33% प्रतिशत परिवारों के पास भूमि नहीं है।

तालिका क्र0 06

पशुपालन सम्बन्धी विवरण

क्र0	पशुपालन करते हैं	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	हॉ	39	52%
2	नहीं	36	48%
	योग	**75**	**100%**

सर्वेक्षित परिवारों के 52% गोड़ परिवार पशुपालन करते हैं एवं 48% गोड़ परिवार पशु नहीं पालते हैं।

तालिका क्र0 07

वनोपज का संग्रह सम्बन्धी विवरण

क्र.	वनोपज संग्रह करते हैं	परिवारों की संख्या	प्रतिशत
1	हॉ	49	65.33 प्रतिशत
2	नहीं	26	34.6 प्रतिशत
	योग	**75**	

सर्वेक्षित परिवारों में से 62.66 प्रतिशत लोग वन उपज का संग्रह करते हैं 37.33 प्रतिशत लोग वन उपज का संग्रह नहीं करते हैं। गोड़ परिवारों द्वारा किया जाने वाला वन उपज संग्रह इस प्रकार है

निष्कर्ष–

1. आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर है, घर छोटे-छोटे हैं, रहन-सहन का स्तर काफी निम्न है।
2. शिक्षा का अभाव है, अशिक्षित है जिसके कारण जादू-टोना, झाड़-फूंक, तंत्रमंत्र आदि पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं।
3. आधुनिक मनोरंजन के कुप्रभाव के कारण अपने परम्परागत लोक नृत्य, गीत आदि भूलते जा रहे हैं।
4. शराब के आदी हैं एवं अन्य नशा भी करते हैं।
5. बाल विवाह जैसी कुप्रथा भी देखने को मिलती है।
6. रोजगार का मुख्य साधन मजदूरी अथवा, कृषि मजदूरी है। अतः आय निश्चित नहीं होती एवं बहुत कम है।
7. गोड़ों के पास कृषि योग्य भूमि नहीं है एवं जो है उसका आकार अत्यन्त छोटा एवं असिंचित होने के कारण उत्पादक नहीं है।अपने पशुओं का व्यवसायिक उपयोग नहीं करते एवं जिले में वनोपज की अपार संभावना होने के उपरान्त भी उसका उपयोग करने में सक्षम नहीं है।

सुझाव-

1. सर्व प्रथम गोड़ जनजाति के लोगों के आर्थिक स्तर सुधारने हेतु प्रयत्न करना चाहिये इस हेतु उनकों, उनकी छोटी-छोटी भूमि में अधिक उत्पादन देने वाली उद्यानिकी योजनाओं का ज्ञान करा कर उसका प्रशिक्षण देना चाहिये। भूमि एवं कृषि सुधार हेतु विभिन्न योजनायें चलाई जानी चाहिये। उनके पशुओं को उत्पादक बनाने हेतु कार्य करना चाहिये तथा वनोपज संग्रह कर उससे आय कैसे अर्जित की जाय इस

हेतु प्रशिक्षण व इस दिशा में रोजगार उपलब्ध कराना चाहिये। साथ ही अन्य आयोत्पादक योजनायें संचालित करना चाहिए।

2. जिले में गोड़ जनजाति के लोगों में शिक्षा का अत्यन्त अभाव है अतः इनको शिक्षित करने हेतु तथा इनके बच्चे नियमित स्कूल जायें एवं स्कूल में पूरे समय रहें इस हेतु प्रयत्न करना अनिवार्य है।
3. गोड़ जनजाति के लोगों को अस्वच्छता जनक बीमारियों से बचाव हेतु प्रशिक्षण देना चाहिये।
4. आवासहीन गोड़ परिवारों हेतु आवास उपलब्ध कराना चाहिए। साथ ही इसमें शौचालय बनवाया जाये एवं ऐसी आदत विकसित की जाये कि शौचालय का उपयोग करें।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. हसनैन नदीम (2004)- समकालीन भारतीय समाज,-एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य, भारत बुक सेन्टर 17, अशोक मार्ग लखनऊ। पृ.212, 215
2. जोशी ओम प्रकाश (2008)- भारत में सामाजिक परिवर्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स 89 त्रिपोलिया बाजार जयपुर। पृ.100
3. शर्मा के.एल. (2006)- 'भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर। पृ.84
4. शर्मा श्रीनाथ (2009)- जनजातीय समाजशास्त्र मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल। पृ.123
5. सिंह एम.एन. (2008)- आधुनिक समाजशास्त्रीय निबन्ध, विवेक प्रकाशन 7-यू.ए. जवाहर नगर दिल्ली। पृ.120
6. त्रिवेदी आर.एन. एवं शुक्ला डी.पी. (1998)- रिसर्च मैथ्डोलाजी, कालेज बुक डिपो जयपुर।

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

भारत में महिलाओं के मानवाधिकार की स्थिति

* रंगीला शाह

सारांश– *किसी भी देश के सभ्य और सुसंस्कृत होने की कसौटी अब यह नहीं रही कि वह कितना अमीर और बलशाली है, कसौटी यह है कि वहाँ मानव अधिकारों का कितना सम्मान होता है। यह बात जितनी सही है, उतनी ही शोचनीय है कि मानवाधिकारों की चर्चा तो बहुत हो रही है किन्तु मानवाधिकारों के हनन का परिदृश्य व्यापकतर होता जा रहा है। ऐसा मात्र इसलिए नहीं कि मानवाधिकारों की रक्षा करनेवाली संस्थाओं में इच्छा शक्ति का अभाव है बल्कि इसलिए कि मानव समाज की मूलभूत इकाई व्यक्ति में मानवाधिकारों की चेतना का वैसा संचार नहीं हो पाया है जैसा होना चाहिए था ख़ासकर महिलाओं के मानवाधिकार की स्थिति तो और भी ख़राब है। भारत में महिलाएँ सदियों तक शोषित, पीड़ित एवं वर्जनाओं का शिकार रही हैं। आजादी के बाद जो भारत का संविधान लागू हुआ उसमें महिला–पुरुष के बीच के भेदभाव को सैद्धांतिक एवं कानूनी रूप से समाप्त कर दिया।*

मुख्य शब्द– मानवाधिकार, इच्छा शक्ति, नीति निर्देशक सिद्धान्त, विधि का शासन, विशेषाधिकार

विदित हो कि भारतीय संविधान में वर्णित मानवाधिकार दो श्रेणियों में विभक्त हैं। पहली श्रेणी में मौलिक अधिकार आते हैं जो संविधान के खंड तीन में धारा 12-35 में वर्णित है। दूसरी श्रेणी में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत हैं। जहाँ मूलाधिकारों को लागू करने के लिए सरकार कानूनी तौर पर बाध्य है, वहीं नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है अर्थात् ये दिशा-निर्देशक राज्य की इच्छा पर निर्भर करते हैं। मूलाधिकारों के उल्लंघन होने पर कोई भी नागरिक उच्च या उच्चतम न्यायालय में समादेश याचिका दायर कर सकता है, मगर नीति निर्देशक सिद्धांतों के उल्लंघन होने पर ऐसी याचिका दायर नहीं की जा सकती। इसलिए संकुचित अर्थ में नीति निर्देशक सिद्धांतों को मानवाधिकार नहीं माना जा सकता।

सबसे पहले हम मूलाधिकारों की चर्चा करेंगे। भारतीय संविधान की धारा 14 में यह स्पष्ट प्रावधान है कि कानून के सामने सभी बराबर हैं तथा उन्हें कानून की समान रूप से सुरक्षा मिलती है। ब्रिटिश संविधान से हमने 'विधि के समक्ष समानता' का सिद्धांत ग्रहण fd ; k gSt gkabl s^fof/k d k ' kkl u*[1] **कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि सभी लोगों पर राष्ट्र-राज्य का कानून समान रूप से लागू होगा- इसमें किसी को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है जबकि पहले प्राचीन व मध्यकालीन सामंती व्यवस्था में वर्ण, जाति, रंग, धन, लिंग, स्थान, भाषा आदि के आधार पर या तो विशेषाधिकार प्राप्त थे या कुछ लोग उससे पूर्णतः**

=========================

* शोध-छात्र, राजनीति विज्ञान, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

वंचित थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि 'कानूनों की समान सुरक्षा''[2] अमेरिकी संविधान से ली गई सकारात्मक अवधारणा है जिसके अनुसार समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों को कानून की समान सुरक्षा मिलेगी। तीसरे, यह मूलाधिकार सभी भारतीय नागरिकों के अलावा भारत में रह रहे विदेशियों को भी मिला है अर्थात एक समान मामले में भारतीय नागरिकों और विदेशियों के बीच फर्क नहीं किया जाएगा। चौथे, वह सिद्धांत न सिर्फ दो व्यक्तियों के बीच बल्कि व्यक्ति और राज्य या निगम के बीच भी लागू होगा। पांचवें, इसी समता के अधिकार के तहत ही 'प्राकृतिक न्याय' भी आता है जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना सुनवाई के दंडित नहीं किया जाएगा अर्थात किसी आरोप के संबंध में उसे जबाव देने का मौका दिया जाएगा और तब दंड के बारे में निर्णय लिया जाएगा।[3] छठवें, मगर यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि स्वयं संविधान में कोई विभेद प्रावधानित हो, तो उसे समता के अधिकार का उल्लंघन नहीं माना जाएगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि महिलाओं को पुरूषों के समान देखा गया है। दूसरा महत्वपूर्ण मूलाधिकार है स्वतंत्रता का अधिकार जो संविधान की धारा 15 में वर्णित है। इसमें सबसे अहम बात यह है कि राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, लिंग, प्रजाति, जाति, जन्मस्थान, भाषा आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। दुकान, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन स्थल, कुंआ, तालाब, स्नान-घाट, सड़क, जनता के ठहरने के स्थान, जो पूर्णतः या अंशतः सरकारी राशि से संधारित हों या आम जनता के उपयोग के लिए घोषित हों, के बावत किसी नागरिक के धर्म, जाति, नस्ल, लिंग, जन्मस्थान, भाषा आदि के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा। किसी नागरिक को, स्त्री या पुरूष, भारत में कहीं भी बसने, आने-जाने, काम या व्यवसााय करने, अपनी राय अभिव्यक्त करने आदि की स्वतंत्रता है। तीसरे, राज्य को अधिकार है कि महिलाओं, बच्चों, अनुसूचित जाति /जनजाति तथा सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़ें वर्गों की प्रगति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। चौथे, यह सुस्पष्ट है कि संविधान की धारा 14 (समता का अधिकार) तथा धारा 15 (स्वतंत्रता का अधिकार) एक दूसरे की पूरक हैं, विरोधी नहीं। पांचवें, निजी संस्थाओं में धारा 15 लागू नहीं है। धारा 16 में वर्णित तीसरा महत्वपूर्ण अधिकार है - राज्य के अधीन किसी रोजगार या नियुक्ति के बावत सभी नागरिकों को अवसर की समानता मिलेगी। दूसरे, यह स्पष्टतः प्रावधानित है कि राज्य के अधीन किसी रोजगार या कार्यालय के बावत किसी नागरिक के साथ लिंग, जाति, नस्ल, वंश, जन्मस्थान, निवास आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। तीसरे, संविधान में यह विशेष रूप से वर्णित है कि राज्य किसी पिछड़े वर्ग के लिए नियुक्तियों या पदों का आरक्षण कर सकता है यदि उस वर्ग का प्रतिनिधित्व राज्य की सेवाओं में समुचित रूप से न हो। धारा 14 और धारा 16 परस्पर पूरक हैं - जहां एक ओर धारा 14 सामान्य प्रकृति की है, वहीं दूसरी ओर धारा 16 विशिष्ट प्रकृति की है।[4] धारा 23 में चौथा महत्त्वपूर्ण मूलाधिकार है - मानव व्यापार, बेगार या अन्य प्रकार की बंधुआ मजदूरी का निषेध किया गया है अर्थात इसका उल्लंघन करने वाले के विरूद्ध कानूनी कार्रवाई राज्य द्वारा की जाएगी। यहा उल्लेखनीय है कि मानव-व्यापार में महिलाओं का अनैतिक देह-व्यापार भी शामिल है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान महिलाओं को यह मानवाधिकार प्रदान करता है कि कोई पुरूष उनका दैहिक शोषण नहीं करे और न किसी स्त्री के लिए देह-व्यापार करने की स्थिति पैदा हो।[5]

पुरूषों की तरह महिलाओं को भी धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान है अर्थात वे किसी धर्म या प्रचार-प्रसार स्वेच्छा से कर सकती है। अल्पसंख्यक पुरूषों और महिलाओं को अपनी शैक्षणिक संस्थाएं खोलने का अधिकार भी भारतीय संविधान में वर्णित है।

नीति निर्देशक सिद्धांतों के तहत धारा 39 महत्वपूर्ण है जिसके अनुसार राज्य इस प्रकार की नीति बनाएगा कि सभी नागरिक (स्त्रियां और पुरूष दोनों) जीविका के समुचित माध्यम का अधिकार प्राप्त कर सकें। इसके अलावा यह भी प्रावधान किया गया है राज्य द्वारा समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण इस प्रकार वितरित किया जाए कि उससे साझा हित सर्वोतम तरीके से सध सके। अर्थात अर्थ-व्यवस्था के संचालन से साझे हित के विरूद्ध धन एवं उत्पादन के साधनों का केंद्रीकरण न हो। इतना ही नहीं, यहां यह भी प्रावधान किया गया है कि सभी महिला और पुरूष कामगारों को 'समान काम के लिए समान वेतन' मिले - इस प्रकार महिलाओं के साथ काम और पारिश्रमिक में भेदभाव नहीं किया जाए। इसके अलावा धारा 39 (इ) में यह भी प्रावधान किया गया है कि सभी कामगारों (पुरूषों एवं महिलाओं) के स्वास्थ्य एवं ताकत तथा बच्चों की नाजुक उम्र का दुरूपयोग न हो और आर्थिक जरूरत के कारण कोई नागरिक ऐसा व्यवसाय करने के लिए मजबूर न हो जो उसकी उम्र या ताकत के प्रतिकूल हो।

इसके अतिरिक्त धारा 42 में स्पष्ट प्रावधान है कि राज्य काम करने की न्यायपरक एवं मानवीय परिस्थितियां पैदा करेगा तथा मातृत्व लाभ देना सुनिश्चित करेगा। इस प्रकार गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली महिलाओं के हितों की रक्षा करने का प्रावधान है। इतना ही नहीं, संविधान में संशोधन करके नागरिकों के मूल कर्तव्य संविधान की धारा 51 ए के रूप में जोड़े गए हैं। यहां विशेष रूप से यह उल्लेखनीय है कि धारा 51 ए (इ) के अनुसार प्रत्येक नागरिक महिलाओं के सम्मान को ठेस पहुंचाने वाली रीतियों को त्याग दे।

इसके अलावा संविधान में 73वें संशोधन (1992) के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि पंचायतों में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हैं - बारी-बारी से पंचायत के विभिन्न वार्डों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार अनुसूचित जातियों /जनजातियों के लिए आरक्षित सीटों में से एक-तिहाई उसी श्रेणी की महिला के लिए आरक्षित की गई हैं। इसी प्रकार पंचायत के अध्यक्षों की कुल संख्या की एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगी। इसी प्रकार 74वें संशोधन (1992) के द्वारा नगर निकायों में भी एक-तिहाई आरक्षण की व्यवस्था महिलाओं के लिए की गई है। बिहार में तो पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत सीट महिलाओं हेतु आरक्षित है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में महिलाओं के मानवाधिकारों का बड़े पैमाने पर उल्लेख है।

कानूनों द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार- दंड प्रक्रिया संहिता (क्रिमिनल प्रोसीजर कोड) 1973 में महिलाओं को कई प्रकार के मानवाधिकार दिए गए हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं[6]:

1. धारा 47 (2) के अनुसार यदि पुलिस किसी घर की तलाशी किसी वारंट के आधार पर ले रही हो किंतु उस घर में कोई महिला रह रही हो जो पर्दानशीन हो और अभियुक्त नहीं हो, तो पुलिस ऐसे घर में प्रवेश करने के पूर्व उस महिला को समुचित सूचना देगी कि वह कहीं अन्यत्र हट जाए।

2. धारा 51 (2) के तहत किसी महिला अभियुक्त की तलाशी किसी महिला द्वारा ही ली जा सकती है। वह शिष्टता का पूरा ख्याल रखेगी। इस प्रकार ऐसी तलाशी के दौरान पुरूष मौजूद न हो।
3. धारा 53 (2) के अनुसार यदि किसी महिला अभियुक्त के शरीर की मेडिकल जांच की जरूरत हो, तो ऐसी जांच कोई महिला चिकित्सक ही करेगी अथवा महिला चिकित्सक के पर्यवेक्षण में जांच की जाएगी।
4. धारा 98 के अनुसार यदि अवैध उद्देश्य हेतु किसी महिला या 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की के अपरहण या अवैध नजरबंदी की शिकायत शपथपत्र के साथ प्राप्त हो, तो जिला मजिस्ट्रेट, या उप-क्षेत्रीय मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट उस महिला को तत्काल छोड़ने या उस लड़की के वैध प्रभारी को सौंपने का आदेश दे सकता है और इसके अनुपालन हेतु आवश्यक बल का प्रयोग कर सकता है।
5. धारा 125 के तहत पति के द्वारा पत्नी का भरण-पोषण किया जाना है अर्थात यदि कोई पति अपनी पत्नी को तलाक देता या छोड़ देता है, तो उसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा निर्धारित गुजारा भत्ता उसे देना होगा।
6. धारा 160 (1) के तहत किसी भी उम्र की महिला को उसके निवास के सिवाय थाना या अन्य स्थान पर कोई पुलिस अधिकारी साक्ष्य/बयान आदि के लिए नहीं बुला सकता।
7. धारा 416 के तहत यदि मृत्युदंड की सजायाफ्ता महिला गर्भवती हो, तो उच्च न्यायालय उस सजा को स्थगित कर सकता है अथवा उसे आजीवन कारावास की सजा में बदल सकता है।
8. धारा 327 (2) के तहत बलात्कार आदि के मामले में मुकदमे का विचारण (ट्रायल) खुले कोर्ट में न होकर एकांत में न्यायाधीश के कक्ष में होगा जिससे पीड़ित महिला पर अनावश्यक दबाव न पड़े तथा उसे लोक लज्जा का शिकार न बनना पड़े।
9. धारा 437 (1) के अनुसार न्यायालय गैर-जमानतीय अपराध के मामले में भी महिला (तथा 16 वर्ष से कम का नाबालिग या मरीज या अशक्त) को जमानत पर छोड़ने का आदेश दे सकता है।

इसके अलावा दूसरे महत्वपूर्ण कानून भारतीय दंड संहिता[7] 1860 के तहत भी महिलाओं को कई प्रकार के मानवाधिकार प्राप्त हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. धारा 100 के तहत यदि कोई पुरूष किसी स्त्री का बलात्कार करने के इरादे से उस पर हमला करे तो उस स्त्री को अपने बचाव में हमलावर को जान से मारने का अधिकार है।
2. धारा 294 के अनुसार यदि कोई पुरूष किसी स्त्री को तंग करने के लिए किसी सार्वजनिक स्थल पर कोई अश्लील हरकत करे, अश्लील गाना गाए, या अश्लील शब्द कहे, तो वह दंडनीय अपराध है- उसे तीन माह की कैद या जुर्माना या दोनों हो सकता है।
3. धारा 313 के तहत यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री की सहमति के बिना उसका गर्भपात करे, तो वह दंडनीय है। बच्चे के साथ मां के मरने पर आजीवन कारावास या दस वर्ष की कैद और जुर्माना की सजा दी जाएगी।

4. धारा 327 के तहत यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री या उसके संबंधी से धन वसूलने के लिए चोट पहुंचाए, अथवा उससे या उसके संबंधी से अवैध काम करवाए तो यह दंडनीय है - उसे दस वर्ष तक की सजा और जुर्माने की सजा दी जाएगी।
5. धारा 366 के तहत यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री का अपहरण उससे विवाह करने के लिए मजबूर करने हेतु करता है अथवा उसके साथ जबरन संभोग हेतु अपहरण करता है तो यह दंडनीय है - दस वर्ष की कैद और जुर्माने की सजा दी जाएगी।
6. धारा 372 के तहत यदि कोई व्यक्ति 18 वर्ष से कम उम्र की किसी लड़की को किसी वेश्यालय के हाथ बेचता है या किराए पर देता है, तो यह दंडनीय है - दस वर्ष की कैद और जुर्माने की सजा मिलेगी।
7. धारा 376 (1) के तहत किसी यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री के साथ बलात्कार करता है, तो उसे कम-से-कम 7 वर्ष की कैद और जुर्माना दोनों हो सकता है।
8. धारा 494 के तहत यदि किसी पुरूष की पत्नी जीवित हो (अथवा स्त्री का पति जीवित हो) और वह दूसरा विवाह करे, तो उसे सात वर्ष की कैद और जुर्माना की सजा दी जाएगी।
9. धारा 495 के तहत यदि कोई पुरूष (या स्त्री भी) पहली शादी की बात छिपाकर दूसरी शादी करे, तो उसे दस वर्ष की कैद या जुर्माना की सजा दी जाएगी।
10. धारा 509 के तहत यदि कोई पुरूष किसी महिला के शील का अपमान करने के इरादे से कोई शब्द बोले या हाव-भाव करे अथवा उसे कोई चीज दिखाए अथवा स्त्री की गोपनीयता में हस्तक्षेप करे, तो उसे एक वर्ष की कैद या जुर्माना या दोनों की सजा दी जाएगी।

इसके अलावा अन्य कई कानूनों के तहत महिलाओं को निम्नलिखित मानवाधिकार प्राप्त है:

1. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 के तहत एक ही कार्य या समान प्रकृति के कार्य के लिए महिला कामगारों को पुरूष कामगारों के बराबर मजदूरी मिलेगी।
2. कारखाना अधिनियम, 1948 के तहत महिला कामगारों के लिए अलग से शौचालय बनाया जाएगा। जहां 30 महिलाएं कार्यरत हों, वहां उनके 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए पालनाघर की सुविधा दी जानी है। इसके अलावा महिला कामगारों को सुरक्षा की दृष्टि से रात के सात बजे से सुबह छह बजे के पहले काम पर नहीं बुलाया जाना है।
3. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के तहत बीमित महिला कामगारों को मातृत्व लाभ देय है। उसे मातृत्व के लिए 12 सप्ताहों का पारिश्रमिक मिलेगा जिनमें छह सप्ताह प्रसूति के पूर्व का समय शामिल है।
4. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के तहत नियोजक महिला कामगार को उसके द्वारा बच्चा जन्मने या गर्भपात होने की तिथि से छह हफ्ते तक नियोजित नहीं करेगा। फिर पैदाइश के बाद छह सप्ताह तक महिला कर्मचारी काम पर आए बिना औसत दैनिक पारिश्रमिक की दर से मातृत्व लाभ पाने की हकदार है।
5. खान अधिनियम, 1952 के तहत कोई महिला जमीन के नीचे स्थित किसी खान में नियोजित नहीं की जाएगी क्योंकि इससे उसे असुरक्षा हो सकती है। इसके अलावा

जमीन के ऊपर स्थित खनन कार्य में उसे सुबह छह बजे से लेकर रात सात बजे तक ही नियोजित किया जा सकता है।

6. दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के तहत दहेज मांगना या देना दंडनीय है, इसमें कम-से-कम पांच वर्ष की कैद और कम-से-कम 15,000 रू. का जुर्माना या उक्त दहेज के मूल्य की राशि में जो अधिक हो, उसकी सजा दी जाएगी। दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 की धारा 10 के तहत भारतीय दंड विधान 1860 में संशोधन करके धारा 304 बी जोड़ दी गई है जिसके अनुसार यदि किसी महिला की मृत्यु उसकी शादी होने के सात वर्ष के भीतर जलने या शारीरिक चोट या असामान्य परिस्थिति में हो जाती है और उसकी मृत्यु के पूर्व उसके पति या ससुराल वालों की ओर से दहेज के लिए क्रूरता बरती गई हो, तो उसे दहेज-हत्या माना जाएगा। इस प्रकार महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए ऐसा कानून बनाया गया है। मगर एक ओर दहेज की मांग बढ़ती जा रही है और कानून का असर नहीं पड़ रहा है, वहीं दूसरी ओर कई लोग दहेज संबंधी झूठे मुकदमे भी दायर कर रहे हैं जबकि ससुराल में बहू से छोटे-मोटे झगड़े को तूल दे दिया जाता है और पति, सास-ससुर, ननद, देवर आदि को फंसा दिया जाता है।

7. महिलाओं की अशिष्ट प्रस्तुति (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 के तहत यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति ऐसा कोई विज्ञापन न प्रकाशित करेगा, न करवाएगा, न उसकी नुमाइश में भाग लेगा और न उसकी व्यवस्था करेगा जो किसी भी रूप में महिलाओं की अशिष्ट प्रस्तुति करता हो।

8. सती कार्य (प्रतिषेध) अधिनियम, 1987 के तहत सती होने की कोशिश करने वाली स्त्री को एक साल की कैद या जुर्माना या दोनों की सजा दी जाएगी किंतु उसके लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शह देने वाले को मृत्युदंड या आजीवन कारावास तथा जुर्माना की सजा दी जाएगी।

9. जन्मपूर्व परीक्षण तकनीक (दुरूपयोग का विनियमन तथा प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 के तहत कुछ मान्य असामान्यताओं की जांच (जैसे आनुवांशिक बीमारी, जन्मजात असंगति, असामान्य गुणसूत्र आदि) को छोड़कर गर्भस्थ भ्रूण के लिंग की जांच को दंडनीय बनाया गया है क्योंकि प्रायः ऐसा देखा गया है कि मादा भ्रूण की हत्या कराने की प्रवृत्ति भारत के अधिकतर हिस्सों में बढ़ती रही है जिसके कारण महिला-पुरूष जनसंख्या अनुपात कम होता जा रहा है। इसलिए तकनीकी जांच करने वाली प्रयोगशालाओं और क्लीनिकों आदि को निर्देश दिया गया है कि वे स्पष्ट रूप से होर्डिंग लगाएं कि उनके यहां जन्मपूर्व भ्रूण के लिए लिंग की जांच नहीं की जाती और ऐसा करना दंडनीय अपराध है।

10. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अनुसार हिंदू परिवारों में पुत्रों और पुत्रियों को पैतृक संपत्ति के बराबर-बराबर हिस्सा मिलेगा।

11. गर्भ की चिकित्सीय समाप्ति अधिनियम, 1971 के तहत किसी स्त्री को किसी निबंधित चिकित्सक से अपना गर्भपात कराने का अधिकार है। यदि वह गर्भ 12 सप्ताह से अधिक का नहीं है और एक चिकित्सक का मत पक्ष में हो अथवा 12 सप्ताह से अधिक मगर 20 सप्ताह से कम का है और दो चिकित्सकों का मत है कि

उक्त गर्भ से गर्भवती स्त्री की जिंदगी को खतरा हो या उसके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर खतरा हो अथवा ऐसी संभावना हो कि जन्म लेने पर बच्चे को शारीरिक या मानसिक विकलांगता का शिकार होना पड़ेगा। मगर 18 वर्ष से कम उम्र की महिला या पागल महिला का गर्भ उसके संरक्षक की लिखित सहमति के बिना नहीं गिराया जाएगा। पश्चिमी देशों में लंबे संघर्ष के बाद गर्भपात का अधिकार महिलाओं को मिला था जबकि रोमन कैथोलिक चर्च इसका विरोध इस आधार पर करता रहा है कि किसी को किसी जीव (भ्रूण) की हत्या का अधिकार नहीं है।

न्यायालयों द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार– समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों ने महिलाओं को शोषण से बचाने के लिए महत्वपूर्ण निर्णय दिए हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. 'महाराष्ट्र सरकार बनाम चंद्र प्रकाश जैन' के मामले में 1990 में सर्वोच्च न्यायालय ने महत्वपूर्ण निर्णय दिया। यहां मामला यह था कि एक पुलिस अधिकारी ने एक किशोरी के साथ बलात्कार किया था। उसके पहले उस पुलिस अधिकारी ने उसके पति को एक झूठे केस में फंसा दिया था और इसके फलस्वरूप दोनों को अलग कर दिया था। अब सवाल यह उठा कि पीड़ित महिला के बयान को कितनी महत्ता दी जाए। अतः इस मामले को आधार बनाकर सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कार से संबंधित कानूनी प्रावधानों की समीक्षा करके महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए चार प्रमुख सिद्धांत प्रतिपादित किए[9]:

* बलात्कार के मामले में अभियुक्त को सजा देने के लिए पीड़ित महिला का प्रमाणित कथनमात्र पर्याप्त है।
* इसमें सजा पीड़ित महिला के प्रमाणित कथन मात्र पर हो सकती है जब तक कि परिस्थितियां विचलित नहीं करें और न्यायालय उसके साक्ष्य पर अविश्वास न करे क्योंकि वह महिला उस अपराध की भुक्तभोगी है तथा उसे सह-अभियुक्त के बराबर नहीं माना जा सकता।
* बलात्कार की भुक्तभोगी महिला का साक्ष्य विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, यथा समाज में अभियुक्त की सामाजिक स्थिति, तय की जानी चाहिए।
* पीड़ित महिला द्वारा बलात्कार का किसी रूप में विरोध करने के अभाव को सहमति का सूचक मानने को भी विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में देखा जाना चाहिए।

यहां उल्लेखनीय है कि कुछ व्यक्तियों, संगठनों, गिरोहों द्वारा कभी-कभी कुछ सिरफिरी महिलाओं से बलात्कार के झूठे मुकदमे भी दर्ज कराए जाते हैं। बिहार के वैशाली जिले में (2006) एक ऐसा मामला प्रकाश में आया है जहां एक महिला कुछ वर्षों के दौरान लगभग एक दर्जन लोगों पर बलात्कार के झूठे मुकदमे न्यायालय में दायर कर चुकी है।

2. कार्यस्थल पर कामकाजी महिलाओं का यौन-शोषण न हो, इसके लिए 'विशाखा एवं अन्य बनाम राज्य राजस्थान सरकार एवं अन्य (1997)' में सर्वोच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना कि लैंगिक समानता के लिए महिलाओं के कार्यस्थल पर सुरक्षित माहौल हो क्योंकि संविधान में वर्णित जीने के अधिकार में 'सम्मान से जीना' शामिल हैं।

3. राम प्रसाद सेठ बनाम उत्तर प्रदेश शासन (1961) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि पुत्र-लाभ के लिए दूसरा विवाह करना जरूरी नहीं क्योंकि हिंदू धर्म में किसी लड़के को कोई व्यक्ति दत्तक पुत्र बना सकता है जो उसे उतना ही धार्मिक लाभ देगा जितना कोख से जन्मा पुत्र। इसके अलावा 'एक पति-पत्नी विवाह' समाज-सुधार के हित में है और सरकार संविधान में प्रदत्त मूलाधिकार पर समाज-सुधार के लिए प्रतिबंध लगा सकती है।

भारत में इतने मानवाधिकारों के बावजूद महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है। इसे कुछ सामाजिकार्थिक एवं राजनीतिक मानकों के आधर पर आसानी से समझा जा सकता है।

तालिका-1: कुछ देशों में प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या
(लिंग अनुपात)

1.	जापान	1041
2.	रूस	1040
3.	चीन	1029
4.	इंडोनेशिया	1025
5.	नाइजीरिया	1016
6.	अमेरिका	1004
7.	बांग्लादेश	953
8.	भारत	943

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि विश्व में सबसे अच्छा लिंग अनुपात जापान (1041) और रूस (1040) में है। वैसे केरल में लिंग अनुपात इससे भी बेहतर है (1058)। दूसरे चीन, इंडोनेशिया, नाईजिरीया जैसे विकाशील देशों में लिंग अनुपात विकसित देश या अमेरिका में लिंग अनुपात से काफी बेहतर है। तीसरे, पड़ोसी बंगलादेश (953) लिंग अनुपात भारत के राष्ट्रीय औसत (943) से बेहतर है। हाल के वर्षों में भ्रूण हत्या महिला मानवाधिकार के विरूद्ध सबसे बड़ा अपराध साबित हुआ है।

'द हिंदू (1 फरवरी, 2003) के अनुसार 1999-2000 के दौरान-यानी उदारीकरण के प्रथम दशक में - भारत में एक करोड़ चालीस लाख मादा भ्रूण की हत्या की गई। 2001 की जनगणना में एक नई प्रवृत्ति यह पाई गई कि बच्चियों (छह वर्ष से कम) का लिंग अनुपात घटा है जबकि पूरी जनंसख्या में लिंग अनुपात 1991-2000 के दौरान 927 से बढ़कर 933 हो गया। इसे अगली तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका-2 : भारत में 6 वर्ष तक की लड़कियों की संख्या
(प्रति हजार लड़कों पर)

वर्ष	बालिका लिंग अनुपात
1961	976
1971	964
1981	962
1991	945
2001	927

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1961-2000 के दौरान बालिकाओं का लिंग अनुपात 976 से घटकर 927 हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि पी.एन.सी.टी एक्ट 1994 में बनने के बावजूद मादा भ्रूणों की हत्या तेजी से हो रही है। अतः सिक्किम, मिजोरम, त्रिपुरा, लक्षद्वीप समूह और केरल को छोड़कर अन्य राज्यों/ संघ शासित क्षेत्रों में शिशु लिंग अनुपात में गिरावट आना चिंता का विषय है। इंडियन मेडिकल एसोसिएशन के अनुसार भारत में हर साल 30 लाख मादा भ्रूणों की हत्या होती है। कुछ विदेशी स्रोतों के अनुसार पिछले बीस वर्षों में भारत में एक करोड़ गर्भपात कराए गए किंतु भारतीय स्रोतों के अनुसार यह संख्या पचास लाख थी। फिर भी यह काफी है - इसमें भ्रूणों की हत्या के अलावा अवांछित गर्भों (परिवार नियोजन की दृष्टि से) को गिराना भी निश्चित रूप में शामिल है, इसलिए इसे अलग करके देखा जाना चाहिए। 2001 में छह वर्ष से कम उम्र की बच्चियों की संख्या (प्रति 1000 बच्चों पर) भारत में विभिन्न जिलों में भिन्न-भिन्न रही है जिसे तालिका 3 में दिखाया गया है :

तालिका-3 : भारत के जिलों में 6 वर्ष तक की बच्चियों का लिंग अनुपात (2001)

लिंग अनुपात (2001)

क्र. सं.	बच्चियों की संख्या	जिलों की संख्या	
	(प्रति हजार बच्चों पर)	2001	1991
1.	800 से कम	16	-
2.	800 - 849	32	1
3.	850 - 899	71	68
4.	900 - 949	208	181
5.	950 - 999	242	306
6.	1000-1049	8	21

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 2001 में एक हजार बच्चों पर 800 से कम बच्चियों वाले जिलों की संख्या 16 थी जबकि 1991 की जनगणना में इस श्रेणी में कोई जिला नहीं था, अर्थात 16 जिलों की स्थिति बच्चियों के लिंग अनुपात के मामले में पहले से नकारात्मक हुई। दूसरे प्रति हजार बच्चों पर 800 से 849 बच्चियों की संख्या वाले जिलों की संख्या 2001 में बढ़कर 32 हो गई जबकि 1991 में यह संख्या मात्र एक थी। तीसरे, प्रति हजार बच्चों पर 850 से 899 बच्चियों की संख्या वाले जिलों की संख्या 1991 में 68 थी जो 2001 में बढ़कर 71 हो गई। चौथे, प्रति हजार बच्चों पर 900 - 949 बच्चियों की संख्या वाले जिलों की संख्या 1991 में 181 थी जो 2001 में बढ़कर 208 हो गई। पांचवे, प्रति हजार बच्चों पर 950-999 बच्चियों की संख्या वाले जिलों की संख्या 1991 में 306 थी जो 2001 में घटकर 242 हो गई। अंत में, प्रति हजार बच्चों पर 1000-1049 बच्चियों की संख्या 1991 में 21 थी जो 2001 में घटकर 8 हो गई। इस प्रकार स्पष्ट है कि 1991-2001 में नकारात्मक बालिका लिंग अनुपात वाले जिलों की संख्या बढ़ी है जबकि सकारात्मक बालिका लिंग अनुपात वाले जिलों की संख्या घटी है।

इसके अलावा यदि हम महिला साक्षरता दर की स्थिति देखें, तो पाते हैं कि भारत में (2011 में) कुल साक्षरता दर 73 प्रतिशत है जिसमें पुरूषों की साक्षरता दर 84 प्रतिशत है जबकि महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 67.8 प्रतिशत है, लेकिन कई राज्यों में

(विशेषकर हिंदी क्षेत्र में) महिलाओं की स्थिति इससे भी बदतर है। उदाहणार्थ, बिहार में कुल साक्षरता दर 61.8 प्रतिशत है जिसमें महिलाओं की साक्षरता मात्र 51.5 प्रतिशत है जबकि पुरूषों की साक्षरता 71.2 प्रतिशत है। केरल में साक्षरता दर सबसे अधिक (94 प्रतिशत) है जिसमें 92 प्रतिशत महिलाएं तथा 96.2 प्रतिशत पुरूष साक्षर हैं। इस प्रकार एक ओर अधिकतर राज्यों में महिलाओं की साक्षरता दर कम है और दूसरी ओर पुरूष साक्षरता दर तथा स्त्री साक्षरता दर में काफी अंतर है। विश्व स्तर पर (2000 में) साक्षरता दर भारत के राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक (79.4 प्रतिशत) है जिसमें 73.6 प्रतिशत महिलाएं तथा 85.3 प्रतिशत पुरूष साक्षर हैं। इतना ही नहीं, भारत के ई जिलों की स्थिति बदतर है। उदारहणार्थ, बिहार के किशनगंज जिले में (2001 में) महिला साक्षरता दर मात्र 18.5 प्रतिशत है। अनुसूचित जातियों /जनजातियों की महिलाओं में साक्षरता दर काफी कम है। 1991 में भारत में अनुसूचित जाति की महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 23.76 प्रतिशत थी जबकि अनुसूचित जाति के पुरूषों की साक्षरता दर 49.91 प्रतिशत थी। इसी प्रकार उस समय अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं की साक्षरता दर 18.91 प्रतिशत थी। जबकि अनुसूचित जनजातियों के पुरूषों की साक्षरता दर 40.65 प्रतिशत थी। तब तीन राज्यों में अनुसूचित जातियों की महिलाओं की साक्षरता दर सबसे खराब थी- बिहार में मात्र 7.07 प्रतिशत (जबकि वहां पुरूषों की साक्षरता दर 42.38 प्रतिशत), राजस्थान में 8.31 प्रतिशत (जबकि वहां पुरूषों की साक्षरता दर 30.64 प्रतिशत) थी, उत्तर प्रदेश में मात्र 10.69 प्रतिशत (जबकि वहां पुरूषों की साक्षरता दर 40.80 प्रतिशत) थी। इसी प्रकार 1991 में अनूसूचित जनजाति की महिलाओं में साक्षरता दर 5 राज्यों में सबसे खराब थी - राजस्थान में 4.42 प्रतिशत (पुरूषों की 33.39 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश में 8.68 प्रतिशत (पुरूषों की 25.25 प्रतिशत), अरूणाचल प्रदेश में 8.68 प्रतिशत (पुरूषों की 25. 25 प्रतिशत), उड़ीसा में 10.21 प्रतिशत (पुरूषों की 34.44 प्रतिशत) तथा मध्य प्रदेश में 10.73 प्रतिशत (पुरूषों की 32.16 प्रतिशत) थी। राजस्थान के जालोर जिले में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 0.55 प्रतिशत है। इसी प्रकार बिहार में मुसहर नामक सबसे ज्यादा वंचित अनुसूचित जाति में साक्षरता दर मात्र 2 प्रतिशत पुरूषों में तथा 0.5 प्रतिशत महिलाओं में है। भारत के ग्रामीण क्षेत्र में मुस्लिम महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 42.1 प्रतिशत (1999-2000 एन एस एस) है जबकि पुरूषों की साक्षरता दर 61.4 प्रतिशत है। इस संबंध में सबसे खराब स्थिति हरियाणा की है जहां मुस्लिम महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 15.1 प्रतिशत है। निरक्षरता और गरीबी के कारण भारत में 57 प्रतिशत लड़कियों का विवाह अल्पायु (18 वर्ष के पहले) में हो जाता है (टाइम्स ऑफ इंडिया 12. 02.2006) और वे जल्दी ही मां भी बन जाती हैं जो स्वास्थ्य के लिए उचित नहीं होता।

प्रसिद्ध विद्वान प्रो. आशीष बोस ने एक अध्ययन मे पाया है कि परंपरा (महिलाओं को दोयम दर्जे का मानना, पराया धन मानना आदि) और तकनीक (भ्रूण के लिंग की जांच कर मादा भ्रूण की हत्या कराना) के अपवित्र गठबंधन से भारतीय समाज का काफी अहित हो रहा है जबकि सामान्यतः तकनीकी विकास से लोगों को ज्यादा आय, सुविधा, सुरक्षा तथा स्वतंत्रता मिलने की आशा की जाती है। लड़कियों की घटती संख्या तथा लड़कों की बढ़ती संख्या से अपराध और अव्यवस्था का बढ़ना स्वाभाविक है। यह अत्यंत चिंताजनक है कि लड़कियों की शादी में दहेज की मांग काफी तेजी से बढ़ रही है और विवाह के बाद

भी दहेज की मांग जारी रहती है जिसे न देने पर प्रायः बहुओं की हत्या कर दी जाती है और प्रचारित किया जाता है कि बहू ने आत्महत्या कर ली है। भारत में हर साल 6000 से 7000 दहेज-हत्याएं प्रतिवेदित नहीं होती है।

जहां तक महिलाओं के राजनैतिक प्रतिनिधित्व का सवाल है, भारत के लोकसभा में 10 प्रतिशत से अधिक महिलाएं सदस्य नहीं रही हैं। 1999 में 543 निर्वाचित सदस्यों में से मात्र 48 सदस्य महिलाएं थी। यहाँ उल्लेखनीय है कि उस साल कुल 277 महिला उम्मीदवारों में से 48 विजयी हुई थीं अर्थात् उनके विजयी होने का प्रतिशत 17 था जबकि दूसरी ओर पुरूषों में जीतने वालों का प्रतिशत 12.7 था। 1991 में राज्यसभा में 245 सदस्यों में से 38 सदस्य महिलाएं (15.5 प्रतिशत) थी। सन् 2005 में लोकसभा में मात्र 8.3 प्रतिशत (45) महिलाएं थी जबकि राज्यसभा में 11 प्रतिशत महिलाएं थीं। अधिकतर राज्यों की विधान सभाओं तथा विधान परिषदों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की स्थिति लगभग ऐसी ही है। लोकसभा तथा विधान सभाओं में महिलाओं के आरक्षण का विधेयक लंबे अरसे से लंबित है। इसका विरोध मुख्य रूप से डॉ. राममनोहर लोहिया की तथाकथित अनुयायी राजनैतिक पार्टिया कर रही हैं जो महिला के लिए होने वाले आरक्षणः में पुनः पिछड़े वर्ग की महिलाओं (कोटा के अंदर कोटा) का आरक्षण चाहती हैं। वास्तविकता यह है कि डॉ. राममनोहर लोहिया ने वंचना के आधार पर सभी जातियों की महिलाओं को दलित-शोषित माना था। मगर राजनीति के कुचक्र ने महिलाओं को समुचित राजनैतिक प्रतिनिधित्व के मानवाधिकार से वंचित कर रखा है। काँग्रेस सरकार ने 1992 के संविधान में 73वां एवं 74वां संशोधन करके क्रमशः पंचायती राज संस्थाओं तथा शहरी निकायों में महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया। इसके फलस्वरूप गांव, प्रखंड तथा जिला स्तरीय पंचायती राज संस्थाओं में भारी संख्या में महिलाएं चुनी गई है। उदाहरणार्थ, भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग के अनुसार 1995 में पूरे देश में करीब दस लाख महिलाएं पंचायती राज संस्थाओं की प्रतिनिधि चुनी गई थीं जिनमें से करीब 75000 महिलाएं अध्यक्ष के रूप में चुनी गई थीं। यहां यह उल्लेखनीय है कि पर्दा प्रथा, निरक्षरता, आर्थिक निर्भरता, कानूनी अज्ञानता तथा अनुभव की कमी के कारण शुरू में कई महिला प्रतिनिधियों को उनके पतियों / पुत्रों / ससुरों आदि ने मर्दवादी सामंती मानसिकता और ठसक के कारण 'रबर की मुहर' के रूप में इस्तेमाल किया मगर दूसरी बार चुने जाने के बाद उनमें काफी साहस, अनुभव, आत्मसम्मान एवं विश्वास का भाव तथा निर्णय लेने की क्षमता का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप अधिकतर महिला प्रतिनिधिगण अपने मानवाधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त कर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाने में सफल हुई हैं।

यह अत्यंत चिंताजनक है कि विश्व के प्राचीनतम व्यवसाय के रूप में मान्य वेश्यावृति विश्व के विभिन्न देशों में बढ़ रही है। दक्षिण एशिया तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में 16 वर्ष से कम उम्र की करीब दस लाख लड़किया वेश्यावृति करती हैं। 'इंडिया टुडे' (2016) के अनुसार भारत में करीब पांच लाख लड़किया (18 वर्ष से कम उम्र की) भगाकर देह व्यापार में लगाई गई हैं। भारत के राष्ट्रीय महिला आयोग के अनुमान के अनुसार मुंबई में 40 हजार लड़कियां (10 से 16 वर्ष की) अपने घरों पर देह-व्यापार कर रही हैं। भारत में कुल वेश्याओं की संख्या में काफी मतभेद है। एकदम सख्त (न्यूनतम) पैमाने के मुताबिक भारत में करीब 20 लाख वेश्याएं हैं जबकि लचीले (अधिकतम)

अनुमान (द पॉयनियर, 14 दिसंबर, 1999) के अनुसार भारत में नौ करोड़ वेश्याएं हैं जिनमें से 25 प्रतिशत 18 वर्ष से कम उम्र की हैं। उनमें से 90 प्रतिशत भारत की मूल निवासी हैं, 5 प्रतिशत बंगलादेश से और शेष 5 प्रतिशत नेपाल से भगाकर लाई गई हैं। इनमें से करीब 61 प्रतिशत वेश्याएं अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों से आती है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार (चेतांशी, जनवरी-मार्च, 2006) भारत में हर साल बीस हजार महिलाएं वेश्यावृति में झोंक दी जाती हैं। इनमें 61 प्रतिशत की उम्र 18 वर्ष से कम है। यह धंधा नशाखोरी और हथियारों के बाद सबसे ज्यादा संगठित है। बहुत सारी वेश्याएं एड्स / एचआईवी0 से ग्रस्त हैं - मुंबई में 52 प्रतिशत तथा मैसूर में 26 प्रतिशत वेश्याएं एचआईवी से ग्रस्त हैं। पूरे भारत में 50 लाख से अधिक लोग एड्स से पीड़ित हैं और 0.92 प्रतिशत वयस्क आबादी इससे संक्रमित है।

उच्चतर सेवाओं में महिलाओं के नियोजन की स्थिति और खराब है। उदाहरणार्थ, 2010 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में कुल 5047 व्यक्तियों में 4546 पुरूष थे और मात्र 501 महिलाएं थीं। उनमें 34 अनुसूचित जाति की और 23 अनुसूचित जनजाति की महिलाएं थी। भारतीय पुलिस सेवा में 2010 मूं कुल 2947 व्यक्तियों में मात्र 64 महिलाएं तथा 2833 पुरूष थे। इसी प्रकार भारतीय राजस्व सेवा में 2009 में कुल 2256 व्यक्तियों में से मात्र 276 महिलाएं तथा 1980 पुरूष थे। इसी प्रकार 1996 में कुल 526 जजों (उच्च न्यायालयों / उच्चतम न्यायालय) में मात्र 16 महिलाएं थीं और 510 पुरूष थे। 1998 में केन्द्रीय मंत्रिमंडल में 21 कैबिनेट मंत्री और 21 राज्य मंत्री थे जबकि इनमें मात्र एक महिला कैबिनेट मंत्री तथा 3 महिलाए ं राज्य मंत्री थी। मार्च 2018 में केन्द्र में 26 कैबिनेट मंत्रियों तथा 49 राज्य मंत्रियों में से मात्र 06 कैबिनेट मंत्री तथा 03 राज्य मंत्री महिलाएं थी। यू.एन.एफ.पी. की रिपोर्ट (2005) के अनुसार पूरी दुनिया में महिलाओं की संसदीय सीटों पर भागीदारी मात्र 16 प्रतिशत है। वैसे संयुक्त राष्ट्र ने 1995 में ही महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत सीटें हासिल करने का लक्ष्य रखा था मगर इस लक्ष्य को मात्र 19 देशों में पूरा किया है। दुर्भाग्यवश भारत उनमें से नहीं है।

युनिसेफ (2009) की रिपोर्ट के अनुसार स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में प्रतिवर्ष भारत में 78000 महिलाएं प्रसव के दौरान मर जाती हैं। यहां मातृ मृत्युदर 450 (प्रति लाख) प्रतिवर्ष है जबकि सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य के अनुसार इसे 2015 तक 109 तक घटाना है। उत्तर प्रदेश में मातृ मृत्युदर 514 है (सूडान में 550) तथा केरल में मात्र 110 है। उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, म. प्र., छत्तीसगढ़, राजस्थान और असम में पूरे भारत में होने वाली मातृ-मृत्यु की दो-तिहाई से अधिक मातृ-मृत्यु होती है। फिर पूरे विश्व में होने वाल मातृ-मृत्यु की एक तिहाई मृत्यु सिर्फ भारत और नाइजीरिया में होती है। भारत में करीब 65 प्रतिशत महिलाओं का प्रसव घर पर ही संपन्न होता है जिन्हें समुचित सुविधाएं एवं प्रशिक्षित चिकित्सक की सेवा प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार एक भारतीय महिला की मृत्यु, अमेरिकी या ब्रिटिश महिला की अपेक्षा प्रसव के दौरान 300 गुना ज्यादा होती है। मातृ-मृत्यु का सबसे बड़ा कारण प्रसव के दौरान रक्तस्त्राव (38 प्रतिशत) है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अधिकतर महिलाएं (गांवों में, गरीब और वंचित समुदाय) मानवाधिकारों से वंचित हैं।

स्पष्ट है कि भारत में स्त्री सशक्तीकरण के तमाम दावों के वावजूद महिला-मानवाधिकार

की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं आया है। महिलाओं के हक में तमाम तरह के कानून बनने के बावजूद उनका शोषण एवं उत्पीड़न जारी है। छेड़छाड़, बलात्कार, घरेलू हिंसा, दहेज हिंसा, ऑनर किलिंग जैसे अमानवीय कृत्य बदस्तूर जारी है। महिला आयोग और मानवाधिकार आयोग नखदंत विहीन संस्था बन कर रह गई है। इसलिए भारत में सरकार और सिविल सोसाइटी को महिला-मानवाधिकार के संरक्षण के लिए अभी भागीरथ प्रयास करने की दरकार है।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. विधि का शासन ब्रिटिश संविधान की खास विशेषता है। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग सेमुअल सदरफोर्ड ने किया जिसे बाद में डायसी ने लोकप्रिय बनाया।
2. कानून का समान संरक्षण अमेरिकी संविधान से भारतीय संविधान में आया है।
3. सुभाष कश्यप, भारत का संविधान, एन.बी.टी., दिल्ली, 2008, पृ. 48.
4. तथैव, पृ. 53.
5. जे. एम. पाण्डे, भारत का संविधान, लक्ष्मी नारायण, आगरा, 2009, पृ. 96.
6. सुभाष शर्मा, भारत में मानवाधिकार, एन.बी.टी., नई दिल्ली, 2013, पृ. 83.
7. वहीं, पृ. 84.
8. वहीं, पृ. 85.
9. जे. एन. पाण्डेय, वहीं, पृ. 475.
10. प्रतियोगिता दर्पण, जून 2012, पृ. 72.
11. दि हिन्दू, चैन्नै, 1 फरवरी 2003.
12. इंडिया टुडे (साप्ताहिक) 27 जून 2016, पृ. 48.

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

राजनीति के निर्धारक तत्वों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

* मृत्युंजय भारद्वाज

सारांश- *भारत की राज्यों की राजनीति के विभिन्न रूप रहे है। कभी यह राष्ट्रीय राजनीति की अनुगामिनी रही, तो कभी राष्ट्रीय राजनीति के निर्देशित करने की शक्ति। प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनीति को प्रभावित करने में कुछ महत्वपूर्ण तत्वों का योगदान होता है। राजनीतिक व्यवस्था के अभ्युदय तथा उसको प्रभावित करने में अनेक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में राज्यो की राजनीति को निर्धारित या राजनीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व है जैसे- भौगोलिक तत्व, ऐतिहासिक तत्व, सामाजिक तत्व, राजनीतिक तत्वो मे केन्द्रीय नेतृत्व, मुख्यमंत्री का व्यक्तित्व, राज्यो में दलीय व्यवस्था, सांस्कृतिक तत्व, आर्थिक तत्व इत्यादि। कुछ अन्य प्रमुख तत्व भी राज्यो की राजनीति को भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित करते है।*

मुख्य शब्द- अभ्युदय, राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्व

रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र की बहुत सी ऐसी परिस्थितियां है जो इस निर्वाचन क्षेत्र की राजनीति को प्रभावित करती है। कही न कही ऐसी परिस्थितियां प्रकट होती है जिससे पूरी राजनीति प्रभावित हो जाती है। शोध-कार्य हेतु प्रस्तुत इस अध्ययन में मैने रीवा विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की राजनीति को जिन प्रमुख तत्वों ने किसी न किसी सीमा तक काफी प्रभावित किया है, यह जानने का प्रयास किया है। रीवा विधानसभा क्षेत्र की राजनीति को जिन तत्वो ने प्रभावित किया है उनमे प्रमुख तत्व निम्नलिखित है -

1. **भौगोलिक तत्व**- यहाँ पर रीवा के भौगोलिक तत्व पर प्रकाश डाला गया है। रीवा जिला मध्यप्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला है जो पूर्व 'विन्ध्यप्रदेश' एवं रीवा राज्य की राजधानी था। रीवा महाराज बघेल जाति के सोलंकी क्षत्रीय हैं इसी से इस क्षेत्र का नाम 'बघेलखण्ड' पड़ गया। मध्यप्रदेश की रीवा, सतना, सीधी और शहडोल जिलों के सम्पूर्ण क्षेत्र को साधारण बोलचाल में ''बघेलखण्ड'' कहते है।[1] पूर्व से ही रीवा राजधानी होने के कारण बघेलखण्ड और विन्ध्य प्रदेश में अपना प्रमुख स्थान रखता है इसी कारण यह रीवा जिले की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रियाओं का केन्द्र रहा है।

भारत वर्ष के हृदय स्थल मध्यप्रदेश के उत्तर पूर्वी किनारे में $24^0 18$ से $25^0 12$ उत्तरी अक्षांश तथा $81^0 12$ पूर्वी देशान्तर के मध्य रीवा जिला स्थित है। रीवा जिले की वर्तमान जनसंख्या 19,72,333 है[2], रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाताओं की संख्या 1,36,482 है (रीवा विधानसभा निर्वाचन 2008 के अनुसार)।

========================

* अधिवक्ता, जिला एवं सत्र न्यायालय रीवा (म.प्र.)

रीवा जिले का नाम नर्मदा नदी के प्राचीन 'रेवा' पर आधारित है। नर्मदा नदी पूर्व रीवा राज्य के अमरकंटक पहाड़ (शहडोल) से निकलती है जिसका दूसरा नाम संस्कृति ग्रन्थों में 'रेवा' लिखा मिलता है। शायद इसी से अप्रभंश होकर अब रीवा हो गया है। रीवा जिले का क्षेत्रफल 6,315 वर्ग किलोमीटर है। इस की उत्तर से दक्षिण अधिकतम लम्बाई 105 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम अधिकतम चौड़ाई 125 किलोमीटर के लगभग है। रीवा जिले की उत्तरी सीमा उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद एवं बांदा जिले बनाते है दक्षिण की ओर मध्यप्रदेश का सीधी जिला तथा पूर्व की ओर उत्तर प्रदेश का मिर्जापुर जिला तथा पश्चिम की ओर मध्यप्रदेश का सतना जिला रीवा की सीमा निर्धारित करता है।

रीवा शहर राष्ट्रीय राजमार्ग 7 पर स्थित है, जो बनारस से कन्याकुमारी तक आती है। इस शहर से अन्य राष्ट्रीय राजमार्ग जैसे 75 रीवा-सतना के मध्य एवं राष्ट्रीय राजमार्ग 27 जो रीवा से इलाहाबाद के मध्य है। अन्य राज्य मार्ग भी रीवा से जुड़े हुए है। रीवा हमेशा से ही राष्ट्रीय राजमार्ग में स्थित रहा है, परन्तु यहाँ की सड़को की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। यह मुद्दा भी विधानसभा चुनाव के दौरान यहां की राजनीति को प्रभावित करता है।

रीवा जिले की भौगोलिक स्थिति के विषय मे यदि हम प्रकाश डाले तो रीवा जिले की उत्तरी सीमा उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद व पूर्व की सीमा उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले व दक्षिण मे सीधी जिला एवं पश्चिम में मध्यप्रदेश का सतना जिला स्थित है। रीवा की राजनीति को प्रभावित करने का एक महत्वपूर्ण कारण रीवा का उत्तर प्रदेश की सीमा से लगा होना भी है। उत्तर प्रदेश की राजनीतिक गतिविधियां रीवा जिले की राजनीति को हमेशा से प्रभावित करती रही है।

2. **आर्थिक तत्व**- किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में आर्थिक विकास की प्रवृत्तियाँ तथा इनका स्तर राजनीतिक प्रक्रिया को बहुत अधिक प्रभावित करता है। मध्य प्रदेश की अर्थ व्यवस्था मुख्यतः कृषि प्रधान है तथा रीवा क्षेत्र की 85 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है, जहाँ कृषि ही मुख्य व्यवसाय है। यहाँ पर कोई भी विशेष उद्योग-धंधे स्थापित नही है जिससे लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके। यहाँ उद्योग के नाम पर केवल जेपी सीमेंट फैक्ट्री स्थापित है जो कुछ हद तक स्थानीय लोगों को रोजगार उपलब्ध कराती है। रोजगार के नाम पर कृषि व मजदूरी है, योजनाएं आती है पर सही लाभ हितगृाहियों को प्राप्त नही हो पाता है।

रीवा की अर्थव्यवस्था पूर्णतः वर्षा पर ही निर्भर करती है। जब वारिश अच्छी होती है तो पैदावार भी अच्छी होती है, अन्यथा कृषकों को भारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। सरकारी योजनाएँ तो बहुत आती है परन्तु उनका कुशल क्रियान्वयन नही हो पाता। शासन की तरफ से नाम मात्र की सहायता प्राप्त हो पाती है। मध्यप्रदेश कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था वाला राज्य है। राज्य की 74.73 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। जिनमें से अधिकांश की आजीविका का आधार कृषि ही है। कुल मिलाकर मध्यप्रदेश की 85 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है।

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में आर्थिक विकास की प्रवृत्तियों, उनका स्तर राजनैतिक प्रक्रिया को बहुत अधिक प्रभावित करता है। प्रदेश की कुल कार्यशील जनसंख्या 42.47 प्रतिशत है अतः इनकी माली हालत से प्रदेश की राजनीति निश्चित रूप

से प्रभावित होती है। सामान्यतः यह माना जाता है कि यदि वर्षा तथा उत्पादन अच्छा होता है तो वह वर्ष सत्ता पक्ष के लिए बहुत अच्छा होता है। इसके विपरीत यदि हालात खराब हुए तो वह सारा क्रोध सत्ता पक्ष पर निकलता है।[3]

रीवा जिले में कुल कास्तकार 43.3 प्रतिशत है जिले में खेहिहर मजदूरों की संख्या 35 प्रतिशत है एवं परिवारिक उद्योग कर्मियों की संख्या 4.7 प्रतिशत है। (2001 के अनुसार)[4] जो कि यहां कि राजनीति को प्रभावित करने का एक प्रमुख कारण है।

3. **सामाजिक व सांस्कृतिक तत्व**– रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र का समाज बहुल जाति प्रधान समाज है। यहाँ पर कई जातियों के लोग निवास करते है। यहाँ पर ब्राम्हण, राजपूत, मुस्लिम, पटेल, सिंधी, ईसाई और अन्य पिछड़ा वर्ग तथा हरिजन जाति के लोग निवास करते है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि देश में धर्म एवं जाति निरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की गई है लेकिन देश के राजनीतिक सामाजिक जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नही है जो जातिवाद से प्रभावित न हो। वर्तमान परिवेश में राजनीति और समाज में घनिष्ट सम्बन्ध है। भारतीय संघ में लगभग सभी राज्यों में राजनीति में जातिगत तत्वों का प्रभाव है।[6]

भारतीय राजनीतिक तत्वों के निर्धारण में जातिगत समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है। रजनी कोठारी के अनुसार - भारतीय राजनीति का जातीयकरण और जाति का राजनीतिकरण हो गया है।[7]

भारत में जातियों के आधार पर राजनीतिक दलों का गठन भी होता है। स्वतंत्रता पूर्व मद्रास की जस्टिस पार्टी और बम्बई की इण्डिपेंडेण्ट पार्टी तथा स्वतंत्रता के पश्चात तामिलनाडु की टायलर्स पार्टी का गठन जाति के आधार पर ही हुआ है जो जाति व समाज के विशेष हितों की रक्षा के लिए प्रयासरत है।[8]

वर्तमान परिवेश में जातियों का एक अलग समाज होता है, अधिकांश व्यक्ति 'हमारे समाज' शब्द का प्रयोग करते है। वस्तुतः हमारा समाज तो कई जातियो के परिवारों से मिलकर बनता है। भारत में समाज तो कई जातियों के परिवारों से मिलकर बनता है। भारत में समाज संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर रहा है। सभी राजनीति दलों द्वारा चुनावों में अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि उस निर्वाचन क्षेत्र में उस उम्मीदवार की जाति के मतदाताओं की संख्या कितनी है। चुनाव के समय सभी राजनीतिक दलों के द्वारा जातिवाद या जाति समाज की भावना को उकसाया जाता है जिससे सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति समाज के मतदाताओं का पूर्ण रूप से समर्थन प्राप्त हो सके।

रीवा की राजनीति को प्रभावित करने में जाति समाज की भूमिका महत्वपूर्ण है। टिकट के वितरण से लेकर मंत्रिमण्डल के निर्माण तक में जाति एवं धर्म के प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखा जाता है। प्रायः जिस क्षेत्र में जिस जाति की संख्या ज्यादा रहती है उस क्षेत्र में उसी जाति के उम्मीदवार को पार्टियों द्वारा चुनावी मैदान में उतारा जाता है। हालांकि यह सही है कि प्रदेश की राजनीति को जाति उतना प्रभावित नहीं करती जितना कि अन्य राज्यों, जैसे- हरियाणा में जहाँ चुनाव के समय यह नारा दिया जाता है कि जाट की बेटी जाट को, जाट का वोट जाट को। उत्तरप्रदेश में भी जाति का प्रभाव वहाँ की राजनीति में स्पष्टरूप से प्रगट होता है। फिर भी कतिपय रूप से जाति यहाँ की राजनीति को

प्रभावित अवश्य करती है। पिछड़ो तथा दलितों के नाम पर वोट मांगना आम बात हो गई है। इसी प्रकार हर समाज की अपनी कुछ मांगें है व अपेक्षाएं है जो शासन से जुड़ी होती है। इसमें सांस्कृतिक प्रभाव भी देखने को मिलता है। संस्कृति में खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, लोक-कला एवं भाषा आदि शामिल होते है।

4. **धार्मिक तत्व**– भारतीय संविधान द्वारा भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है लेकिन इसके बावजूद देश में अभी तक धर्म - निरपेक्ष समाज की स्थापना नही हो पाई है। इसी प्रकार रीवा की राजनीति को प्रभावित करने में धर्म की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। यह उल्लेखनीय है कि प्रदेश के जन्म से लेकर अब तक सत्ता हिन्दु धर्म के समुदाय के हाथों में रही है। हालांकि यह भी सही है कि प्रदेश में हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रतिशत (91.10 प्रतिशत) है। वस्तुतः विभिन्न धार्मिक मुद्दों ने प्रदेश की जनता को भावनात्मक रूप से अवश्य ही प्रभावित किया है और इस प्रभाव से चुनाव परिणामों को भी बदला है। जैसे वर्ष 1990 के चुनाव के समय मन्दिर-मस्जिद विवाद, वर्ष 2003 के चुनाव के समय गोधरा-काण्ड तथा भोजशाला जैसे मुद्दे उठे थे, जिन्होने प्रदेश की राजनीति को ही नहीं, वरन् जनता के दिलों को भी झकझोर दिया था।

रीवा विधानसभा क्षेत्र में आरम्भ से ही धर्म का विशेष प्रभाव रहा है। रीवा क्षेत्र में विभिन्न धर्मो की मानने वाले लोग निवास करते है प्रारम्भ से ही यह सीट सामान्य होने के कारण सवर्णो के अधिपत्य मे रही है जिसके कारण सभी वर्गो के लोग इसमें रूचि लेते है। यह क्षेत्र ब्राह्मण, राजपूत (क्षत्रीय), एवं अन्य पिछड़ा वर्ग आदि का रहा है इस प्रकार यह सामान्य सीट होने के कारण लोगों में चुनाव के प्रति उत्साह दिखाई पड़ता है।

वर्तमान समय में क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दु परिषद, बजरंगदल, गायत्री परिवार आदि धार्मिक आयोजनों से क्षेत्र की हिन्दू बाहुल्य जनसंख्या में हिन्दुत्व की प्रबल भावना है, वहीं मुसलमानों में भी कट्टर धार्मिक भावनायें मौजूद है। विधानसभा निर्वाचनों के समय सभी अपने-अपने उम्मीदवारों के पक्ष में प्रचार-प्रसार करते है। तथापि कई बार यह देखने को मिलता है कि कोई समाज विशेष की धार्मिक भावनायें आहत भी होती है। इस क्षेत्र में अधिकांश ब्राम्हण, राजपूत (क्षत्रीय) एवं अन्य पिछड़ा वर्ग आरंभ से ही हिन्दूवादी विचारधारा, जनसंघ एवं वर्तमान समय में भारतीय जनता पार्टी समर्थित रहे है। वहीं इस क्षेत्र के मुस्लिम मतदाता प्रारंभ से ही कांग्रेसी विचाराधारा से संबंधित रहे है।

5. **राजनीतिक तत्व**– लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली की बुनियादी मान्यता शासन व्यवस्था में आम जनता की सहभागिता एवं जन-उत्तरदायित्व है। अपनी इस सहभागिता को सुनिश्चित करने व उत्तरदायित्व के निर्धारण के लिए इस जनता को ऐसे किसी माध्यम अथवा साधन की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा वह सरकार तक अपनी आवाज पहुंचा सके एवं उनके कार्यो का लेखा-जोखा रख सके। इस जनावश्यकता की पूर्ति का माध्यम ही राजनीतिक दल होते है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं में राजनीतिक दलों की भूमिका एक सेतू की भाँति होती है, जिसके माध्यम से सरकार जनाकांक्षाओं को ज्ञात कर इनकी पूर्ति हेतु प्रयास करती है, वही दूसरी ओर जनता भी अपनी संगठित आवाज सरकार तक पहुँचाती है।[9] संसदीय परम्परा के अनुरूप ही एक प्रतियोगी दलीय व्यवस्था स्वतंत्र भारत की राजनैतिक संस्थाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यद्यपि यह संवैधानिक संस्था नही है फिर भी संविधान के अन्तर्गत गारण्टीशुदा राजनीतिक स्वतंत्रता में संघ अथवा संस्था

निर्माण की स्वतंत्रता है। वीनर का कहना है- ''राजनैतिक दल यद्यपि अंग्रेजो द्वारा प्रारंभ की गई संस्थाओं जैसे - सेना, नौकरशाही, न्यायालय, विधि व्यवस्था और चुनाव आदि के द्वारा प्रभावित अवश्य हुए परंतु यह स्थानीय प्रक्रियाओं की ही उपज थे, ब्रिटिश प्रत्यारोपण की नही।''

अब भारतीय मतदाता काफी परिपक्व, जागरूक एवं सचेत हो गये है तथा समय के साथ उनकी सोच में भी परिवर्तन आया है। अब चुनाव के समय मतदाता राजनीतिक दलो के धर्म, जाति, भाषा एवं अन्य प्रलोभनों के बजाय बेहतर प्रशासन एवं सतत विकास को ही ध्यान में रखकर मतदान करने लगे हे। राजनीति मे तो सभी दल तथा सभी दलो के प्रत्याशी अपनी-अपनी रोटियाँ सेकते है परंतु गंभीरता का प्रतीक कही नही दिखाई पड़ता है। सभी दल यह प्रयास करते है कि जन बहुमत हमेशा उसकी तरफ ही रहे किंतु ऐसा नही होता है। आज का मतदाता अब काफी कुछ समझ चुका है और विकास कार्य को ही प्राथमिकता देने लगा है।

रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र की राजनीति को निर्धारित एवं प्रभावित करने में विकास कार्यो की प्रमुख भूमिका रही है। इस क्षेत्र में लोकसभा, विधानसभा एवं स्थानीय निकायों के चुनावों में मतदाता राजनीतिक दलों एवं उम्मीदवारों को इसी कसौटी से कसते है कि उनके द्वारा पिछले निर्वाचन में किये गये वायदे कहां तक पूरे किये गये है तथा भविष्य में कौन सा दल अथवा उम्मीदवार क्षेत्र का विकास कर पाएगा। इस आधार पर क्षेत्र के मतदाता चुनावों में उम्मीदवारों की हार-जीत का निर्णय करते है। इस क्षेत्र में विधानसभा एवं स्थानीय निकायों जैसे - नगर निगम, नगर पंचायत एवं ग्राम पंचायत के चुनावों मे जो मतदाता धर्म एवं जाति के आधार पर मतदान करते है, वे भी विकास कार्यो के आधार पर ही चुनाव में अपने धर्म व अपनी जाति के उम्मीदवार का समर्थन करते है।

क) **उम्मीदवारों की व्यक्तिगत छवि**- किसी भी निर्वाचन क्षेत्र की राजनीति केवल एक तत्व से ही प्रभावित नही होती, वरन् उसके पीछे कई कारण जुड़े होते है। उस प्रत्याशी का व्यक्तित्व, वाक्पटुता, मिलनसारिता, व्यवहारिकता, शिक्षा, समाज मे उसकी स्थिति आदि प्रभावशाली तत्वो की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। नेता वही व्यक्ति हो सकता है जो अपने व्यक्तित्व से लोगो को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। इस विधानसभा क्षेत्र में पार्टियों के द्वारा उन्ही व्यक्तियों को अपना प्रत्याशी बनाया गया जिनकी छवि एवं लोकप्रियता जनता के बीच अधिक थी।

ख) **चुनाव प्रचार**- विधानसभा निर्वाचन में क्षेत्र की राजनीति को प्रभावित करने में चुनाव प्रचार की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। दल एवं प्रत्याशियों के पक्ष एवं विपक्ष में निर्वाचन के माध्यम से जनसाधारण का मनोविज्ञान काफी प्रभावित होता है। इस क्षेत्र विशेष में अधिकांश लोग गरीब एवं अशिक्षित है। गाँव के लोग सीधे सादे है इसलिए चुनाव में संचार माध्यमों की उतनी भूमिका नही होती जितनी प्रत्याशियों द्वारा सीधे जनसंपर्क करने में है। इससे मतदाता काफी प्रभावित होते है और उनके पक्ष में ही मतदाता करते है।

रीवा विधानसभा एवं लोकसभा चुनावों में प्रारंभ से ही चुनाव-प्रचार ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। क्षेत्र में जगह-जगह रैलियां, जुलूस व संगोष्ठियां आयोजित की जाती है। चुनाव-प्रचार करने के लिए लाउड स्पीकरों के माध्यम से गाने भी गाए जाते

है। इस पूरे क्षेत्र में पोस्टर, आकर्षक बैनर, झण्डे आदि लगाकर मतदाताओं को अपने-अपने पक्ष में करने का प्रयास किया जाता है। कई बार तो यहां तक देखा जाता है कि एक दल द्वारा दूसरे दल के बैनर व पोस्टर रातोरात फाड़ दिये जाते है।

बाक्रर के अनुसार - ''दल के नारे, नाम, प्रतीक, ध्वजाएँ तथा गाने निर्वाचक की संदेश ग्राहयता के लिए छोड़ दिये जाते है।''

ग) **जनप्रतिनिधियों द्वारा किये गये विकास कार्य**- वर्तमान समय में मतदाता धर्म जाति एवं सम्प्रदाय जैसे - थोथे भड़काऊ मुद्दो के प्रलोभनो में न आकर बेहतर प्रशासन एवं सतत विकास को दृष्टिगत रखकर चुनावों में मतदान करते है। इसका मुख्य कारण यह है कि जनता अब काफी शिक्षित व जागरूक हो गई है। समय के साथ-साथ उनकी (जनता) सोच में भी परिवर्तन आया है। राजनीतिक दलों को भी अब यह बात समझ में आ गई है कि अगर सत्ता में बने रहना है तो बेहतर प्रशासन एवं विकास को ही चुनाव के प्रमुख मुद्दें बनाना होंगे क्योंकि तथाकथित साम्प्रदायिकता एवं जातिवाद जैसे मुद्दों को अब मतदाता नकार देंगे। इस कारण चुनाव के समय जो वायदे किये जाते है, उन पर कितना अमल होता है और कार्य किया जाता है - यह सब जनता ध्यान रखती है व मतदान विकास कार्य के आधार पर करती है।

घ) **मुख्यमंत्री का व्यक्तित्व**- राज्य की राजनीति में मुख्यमंत्री के व्यक्तित्व की बहुत बड़ी भूमिका रहती है। प्रभावी मुख्यमंत्री के नेतृत्व में राज्य की राजनीति में सृदढ़ता रहती है जो राज्य को स्थिरता और विकास की ओर ले जाती है अन्यथा कम प्रभावशाली मुख्यमंत्री विभिन्न दबावों से ऊबर नही पाते और अस्थिर राजनीति का कारण बनतें है।

ड. **केन्द्र और राज्य में दलीय स्थिति**- राज्यों की राजनीति को एक दलीय प्रभुत्व बहुत प्रभावित करता है। केन्द्र और राज्य में समान दल की सरकार होने से केन्द्र-राज्य में एकरूपता रहती है और राज्य राजनीति केन्द्र की अनुगामिनी होती है लेकिन भिन्न दलों की सरकार होने से केन्द्र राज्य मतभेद खुलकर सामने आते है।

च) **दल-बदल**- 1967 के आम चुनावों के बाद दल बदल ने राज्य राजनीति को सर्वाधिक प्रभावित किया। इसके कारण राज्यों में अस्थिरता का दौर प्रारम्भ हुआ था। कुछ विधायकों ने एक नही अनेक बार (चार-पाँच बार) दल-बदल किया और बार-बार सरकारों का विघटन करवा कर अवसरवादिता को प्रोत्साहित किया। अब दल-बदल विरोधी कानून का निर्माण होने से इसका प्रभाव खत्म हो गया है।

छ) **राजनीतिक विचारधारा**- यद्यपि राजनीतिक विचारधारा का सभी राज्यों पर प्रभाव नहीं है किन्तु कुछ राज्यों की राजनीति इससे प्रभावित हुई जैसे केरल और पश्चिम बंगाल। मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव शिक्षित वर्ग पर अधिक पड़ता है उनमें राजनीतिक जागरूकता और आक्रोश बढता है और वामपन्थी दलों की ओर उनका झुकाव बढ़ता है।

ज) **क्षेत्रीय दल**- राज्यों की राजनीति को क्षेत्रीय दलों के विकास ने बहुत प्रभावित किया है। इन क्षेत्रीय दलों का प्रभाव मुख्य रूप से तामिलनाडु, जम्मू-कश्मीर, आन्ध्रप्रदेश, असम, झारखण्ड आदि की राजनीति पर दिखाई देता है जहाँ इन्होंने राष्ट्रीय दलों का विरोध कर राज्यों में सत्ता प्राप्त की और अपनी सरकारें बनाई। राष्ट्रीय राजनीति में ये क्षेत्रीय दल प्रभावशाली हुए है और केन्द्र में भी सत्ता के भागीदार बने है। रीवा की राजनीति में

क्षेत्रीय दलों का कोई विशेष प्रभाव नही रहा है, यहां विन्ध्य संग्राम परिषद, सवर्ण समाज पार्टी, समानता दल, आदि का कुछ हद तक प्रभाव रहा है।[10]

झ) **स्थानीय मुद्दों का प्रभाव**– रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र की राजनीति को राष्ट्रीय एवं प्रदेश स्तरीय मुद्दें भी काफी हद तक प्रभावित करते है। इस क्षेत्र मे कई बार इन मुद्दों के कारण ही कई दल चुनाव में सफल रहे तो कोई दल असफल रहा। कई बार तो यहाँ तक देखने को मिला है कि राजनीतिक दलों एवं जनता द्वारा भी चक्का जाम, धरना प्रदर्शन, रैलियाँ, हड़ताल, पुतला दहन, गिरफ्तारियाँ देना आदि कार्य भी किये जाते है। इसकें अतिरिक्त वर्तमान समय मे भी जो प्रदेश स्तर पर मुद्दे छाये रहते है एवं घटनाएँ घटित होती है, उसका प्रभाव विशेष रूप से इस क्षेत्र की राजनीति पर दिखाई पड़ता है।[11]

कई बार स्थानीय मुद्दे भी इतना जोर पकड़ते है कि उनको हल करना आवश्यक हो जाता है। आज क्षेत्र के लोग काफी जागरूक हो रहे है और जब इन मुद्दों को लेकर कोई समस्या खड़ी होती है तो क्षेत्र के लोग एक साथ इसके लिए आवाज उठाते है। रीवा क्षेत्र में बिजली सड़क तथा पानी की समस्या सबसे ज्यादा है। गर्मियों के समय में पानी का आभाव हो जाता है। हैण्ड-पम्प टूट जाते है। कुएँ सूख जाते है, नल कम आते है। 24 घंटे में से मात्र 11 घंटे बिजली दी जाती है जिससे लोगों मे काफी आक्रोश रहता है। वे अपनी शिकायतें जन प्रतिनिधियों से व्यापक रूप में करते है। यदि सफलता नही मिलती है तो पूरे समाज के लोगों द्वारा जन आन्दोलन किया जाता है। वर्ष 2007-08 के दौरान बिजली की काफी किल्लत थी जिसके चलते ग्रामीणों ने विद्युत मण्डल के कार्यालय जाकर बिजली कर्मचारियों को बंधक बना लिया था तथा उनकी पिटाई भी की थी- ऐसी घटनाएँ सामने आती रहती है। इस प्रकार स्थानीय मुद्दे भी राजनीति को काफी हद तक प्रभावित करते है।

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी इस क्षेत्र की राजनीति प्रभावित होती है जिसमें क्षेत्र के अन्दर दल के संगठन की स्थिति मतदाताओं की विचारधारा, दल के अन्य राजनीतिक एवं राजनीतिक संगठनों से सम्बद्धता, शिक्षा का स्तर किसान एवं व्यापारी, समूह, मजदूरों एवं गरीब वर्ग के हितों के लिए किये गये संघर्ष प्रत्याशी-चयन की राजनीति आदि के कारण भी प्रमुख रहे है। इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर आज तक जाति, धर्म, क्षेत्रीयता, सामाजिकता, प्रत्याशी का व्यक्तित्व एवं उनके द्वारा क्षेत्र में चलाए गये चुनाव-अभियान एवं क्षेत्र में प्रत्याशी के द्वारा किये गये विकास-कार्य राष्ट्रीय प्रादेशिक एवं स्थानीय राजनीति गुटबंदी स्थानीय मुद्दे विशिष्ट लोगों के प्रभाव एवं प्रत्याशी का निवास प्रत्याशी द्वारा जनहित में किये गये कार्य एवं धार्मिक कारणों से रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र की राजनीति प्रभावित होती रहती है।

निष्कर्ष– निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि रीवा की राजनीति को प्रभावित करने वाले तत्वों में भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक तत्व प्रमुख है। वर्तमान परिवेश में शिक्षा तथा संचार के साधनों के कारण व्याप्त पुरानी मान्यताएँ या प्रभावक तत्व क्षीण होते जा रहे है तथा नये तत्व उभर रहे है, जो न केवल वरन् यहाँ के प्रशासन को भी प्रभावित कर रहे है। रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र के व्यक्तियों में जागरूकता आई है और वे अन्य जिलों की तुलना में अपने आपकों मापने लगे है।

रीवा विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र एक पिछड़ा (अविकसित) क्षेत्र रहा है। यहाँ पर शिक्षा का ज्यादा प्रचार-प्रसार नही है, विशेषकर कि महिलाएं ज्यादा शिक्षित नही है। यहाँ पर कोई विशेष उद्योग-धन्धे भी नही है, बेरोजगारी काफी है। लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। इस क्षेत्र में निर्वाचन आयोग द्वारा विधानसभा चुनावों को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए मतदान केन्द्रो का निर्धारण किया जाता है क्योंकि चुनावों में इन मतदान केन्द्रो की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। मतदाता उन्ही मतदान केन्द्रो में जाकर अपना मत देते है, जिन्हे इन मतदान केन्द्रों तक जाने में कोई असुविधा न हो। वे अपनी सुविधा से मतदान कर सकें, इस कारण निर्वाचन आयोग द्वारा मतदान केन्द्रो का निर्धारण किया जाता है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. शुक्ल ब्रजगोपाल एवं अखिलेश, 'समाजवादी आन्दोलन' (2003), गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा (म.प्र.) पृष्ठ 01६
2. भारत कि जनगणना 2001 रीवा जिला।
3. वही
4. वही
5. कश्यप, सुभाष- दल बदल और राज्यों की राजनीति पृ0 210.
6. जोंस, मारिस- इण्डियन गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स पृ0
7. रजनी कोठारी, 'भारत में राजनीति'
8. नारायण इकबाल, स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृष्ठ 754
9. भगवानदास- विश्व में दलीय प्रणाली का उद्‌भव एवं विकास, पृ0 48.
10. डॉ0 श्रीवास्तव रश्मि, मध्यप्रदेश शासन एवं राजनीति, विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
11. व्यक्तिगत सर्वेक्षण।

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन : गढ़वाल जनपद के विशेष सन्दर्भ में

* हरिमोहन भण्डारी
अनिता रूडोला, * के.सी. पुरोहित

सारांश– *व्यवसाय जीविका की प्राप्ति तथा एक निश्चित सामाजिक स्तर को बनाये रखने के उद्देश्य से व्यक्ति द्वारा अपनायी गयी सतत् क्रिया होती है। व्यवसाय वह विशिष्ट आर्थिक क्रिया है जिससे कोई व्यक्ति अपनी जीविका प्राप्त करता है। अतः सभी आर्थिक क्रियायें व्यवसाय का अंग हैं। किसी क्षेत्र की व्यावसायिक संरचना का अध्ययन करने से उस क्षेत्र के सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर की जानकारी प्राप्त होती है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य जनपद में महिलाओं तथा पुरूषों का विभिन्न व्यवसायों में भागीदारी का अध्ययन करना है। गढ़वाल जनपद की कुल जनसंख्या (6,87,271) में से 5,74,568 ग्रामीण जनसंख्या है। ग्रामीण जनसंख्या की कुल जनसंख्या में से 23.46 प्रतिशत जनसंख्या मुख्य कार्यशील जनसंख्या तथा 18.45 प्रतिशत सीमान्त कार्यशील जनसंख्या है। शेष 58.09 प्रतिशत अकार्यशील जनसंख्या का है। लिंगानुपात के आधार पर जनपद के 28.69 प्रतिशत पुरूषों तथा 18.89 प्रतिशत महिलायें मुख्य कार्यशील जनसंख्या को प्रदर्शित करते है। सीमान्त कार्यशील जनसंख्या में पुरूषों तथा महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः 15.98 व 20.60 है। सीमान्त कार्यशील जनसंख्या में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं का प्रतिशत अधिक है और यही प्रवृति विकासखण्डों में भी देखने को मिलती है।*

मुख्य शब्द– व्यवसाय, आर्थिक क्रियायें, सामाजिक–आर्थिक विकास, मुख्य कार्यशील, सीमान्त कार्यशील, अकार्यशील।

प्रस्तावना– व्यवसाय की संरचना एक गत्यात्मक विचार है, जो देश काल के अनुसार परिवर्तित होती है। आधुनिक समाज में श्रम विभाजन, कार्यात्मक विशिष्टीकरण, परिवर्तन की नवीन विधाओं तथा प्रचलित विचारधाराओं के प्रभाव से युक्त अधिकांश जनों का अपनी जीविका की प्राप्ति तथा एक निश्चित सामाजिक स्तर को कायम रखने हेतु एक विशिष्ट और अपेक्षाकृत अविराम क्रिया में संलग्न होना व्यवसाय के प्रमुख लक्षण हैं, इसके आर्थिक व सामाजिक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण होते हैं (आर. सी. चन्दाना, 1980)[1]।

आर. एन. सिंह एवं एस. डी मौर्य ने 'भौगोलिक पारिभाषिक शब्दकोश' (2004) व्यवसाय जीविका की प्राप्ति तथा एक निश्चित सामाजिक स्तर को बनाये रखने के उद्देश्य

* भूगोल विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, परिसर पौड़ी, उत्तराखण्ड
** सह प्राध्यापक, भूगोल विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, परिसर पौड़ी, उत्तराखण्ड
*** विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, परिसर पौड़ी, उतराखण्ड

से व्यक्ति द्वारा अपनायी गयी सतत क्रिया होती है। व्यवसाय वह विशिष्ट आर्थिक क्रिया है जिससे कोई व्यक्ति अपनी जीविका प्राप्त करता है। अतः सभी आर्थिक क्रियायें व्यवसाय का अंग हैं। आखेट, पशुचारण, मत्स्यपालन, वनोद्योग, कृषि, खनन, उद्योग, परिवहन सेवायें आदि प्रमुख मानव व्यवसाय हैं। इस प्रकार व्यवसाय व्यक्ति के आर्थिक आय का सामान्यतः स्थायी स्रोत होता है और उसके द्वारा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण होता है।'' जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना का तात्पर्य कुल कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न व्यवसायों या व्यावसायिक वर्गों में वितरण से है। यहाँ व्यवसाय का अर्थ उन आर्थिक क्रियाओं से है, जिनसे व्यक्ति को आय प्राप्त होती है। सम्पूर्ण व्यवसायों (आर्थिक क्रियाओं) को प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक आदि वर्गों में विभक्त किया जाता है (आर सी चान्दाना 1980)[2]।

अध्ययन क्षेत्र–

उत्तराखण्ड राज्य भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में $18^0 7'$ N अक्षांश से $31^0 4'$ N अक्षांश तथा $77^0 7'$ E देशान्तर से $81^0 1'$N के मध्य में विस्तृत है, उत्तराखण्ड का कुल क्षेत्रफल 53,483 वर्ग कि.मी. है, जो देश के कुल क्षेत्रफल (3287263 वर्ग कि.मी) का 1.69 प्रतिशत है।

चित्रः 1

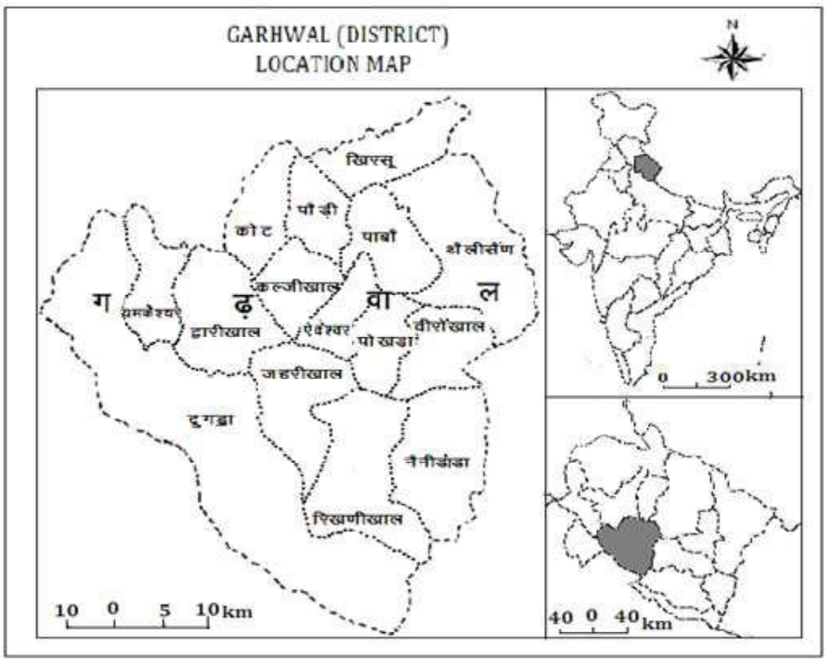

उत्तराखण्ड राज्य का गढ़वाल जनपद $29^0 20'$N अक्षांश से $30^0 15'$N अक्षांश तथा $78^0 10'$E से $79^0 10'$E देशान्तर के मध्य 5,329 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैला है। पौड़ी को स्वतंत्रता के बाद 1969 में गढवाल मण्डल का मुख्यालय बनाया गया, पौड़ी समुद्र तल से 1750 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। गढ़वाल जनपद में 9 तहसीलें तथा 15 विकासखण्ड हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या 6,87,271 है जिसमें से पुरूषों की जनसंख्या 3,26,829 और महिलाओं की जनसंख्या 3,60,442 है। महिलाओं

तथा पुरूषों की जनसंख्या से यह ज्ञात होता है कि गढ़वाल जनपद में लिंगानुपात अधिक (1103) है।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. गढ़वाल जनपद की व्यावसायिक संरचना में दशकीय परिवर्तन का विश्लेषण करना।
2. गढ़वाल जनपद में लिंगानुपात के आधार पर व्यावसायिक संरचना का विभिन्न विकासखण्डों के सन्दर्भ में अध्ययन करना।

अध्ययन विधि–

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य गढ़वाल जनपद की व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन का विश्लेषण करना है। प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक विधि पर आधारित है। जिसमें मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक आँकड़ें गढ़वाल जनपद के सांख्यिकीय विभाग तथा www.uknic.pauri की website से लिये गये हैं। प्रस्तुत अध्ययन में सारणी के आधार पर आँकड़ों का विश्लेषण औसत माध्य द्वारा किया गया है। विभिन्न दशकों की कार्यशील तथा अकार्यशील जनसंख्या को पाई आरेख द्वारा तथा 2011 की जनगणना के आधार पर विभिन्न विकासखण्डों की कार्यशील तथा अकार्यशील जनसंख्या को दण्ड़ारेख द्वारा प्रर्दशित किया गया है।

जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण–

भारत में जनसंख्या को आर्थिक रूप से क्रियाशील व अक्रियाशील इन दो वर्गों में विभक्त करने की अपेक्षा कुल जनसंख्या को श्रमिक तथा अश्रमिक इन दो वर्गो में बाँटा गया है (आई. पी. देसाई, 1971)[3]। भारत में श्रमिक की परिभाषा सर्वप्रथम 1961 में दी गयी थी। भारत की जनगणना 1971 के अनुसार ''जब कोई भी व्यक्ति आर्थिक रूप से उत्पादक कार्य में अपनी शारीरिक या मानसिक शक्ति से संलग्न होता है तो उसे श्रमिक कहा जाता है''। इस प्रकार श्रम में केवल वास्तविक श्रम ही नहीं अपितु पर्यवेक्षण व निर्देशन भी सम्मिलित है। भारत में 1961 की जनगणना में जब श्रमिक शब्द का निरूपण हुआ तब से ही श्रमिक की परिभाषा एक जनगणना वर्ष से दूसरी जनगणना वर्ष में बदलती ही जा रही है। वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार यदि किसी व्यक्ति ने एक सप्ताह के सन्दर्भ काल में, गणना के दिन से पहले, किसी भी एक दिन कार्य किया हो तो उसे श्रमिक कहा गया था। इसमें यह भी कहा गया था कि वह व्यक्ति आर्थिक रूप से उत्पादन कार्यो में लगा होना चाहिये। इस प्रकार वे व्यक्ति जो घरों के कार्यो में लगे हैं जैसे- गृहणियाँ, पेंशनर, छात्र, किराया, चोर, भिखारी, कैदी, इत्यादि को अश्रमिक माना गया है।

वर्ष 1981 की जनगणना में मुख्य श्रमिक व सीमान्त श्रमिकों में भेद किया गया। मुख्य श्रमिक वे थे जिन्होंनें 6 महीने या उससे अधिक समय तक (दोनों कृषि ऋतुओं में) आर्थिक रूप से जनगणना से पहले के वर्ष से अधिकांश भाग में कार्य किया हो। सीमान्त श्रमिक वे थे जिन्होंने जनगणना से पहले के वर्ष में किसी समय कार्य तो किया हो पर अधिकांश समय नहीं किया हो। अश्रमिक उन्हें माना गया जिन्होने बिल्कुल भी कार्य नहीं किया। वर्ष 1991 की जनगणना में कोई भी व्यक्ति जिसने सन्दर्भ काल में औसतन एक घण्टा प्रतिदिन के हिसाब से कार्य किया हो तो उसे श्रमिक कहा गया है।

तेजी से बढ़ती बाल जनसंख्या वाले क्षेत्रों में श्रम शक्ति कम होती है, इसके विपरित जहाँ जनसंख्या वृद्धि धीरे-धीरे होती है, तथा वयस्क जनसंख्या अधिक होती है निर्भरता

अनुपात निम्न तथा क्रियाशील जनसंख्या अधिक होती है (आर. सी. चन्दाना, 1980)[4]। शिक्षा व साक्षरता के स्तर और श्रम शक्ति में ऋणात्मक सहसम्बन्ध है वे समाज जहाँ साक्षरता दर उच्च है वहाँ श्रम शक्ति का अनुपात कम मिलता है क्योंकि साक्षरता की प्राप्ति में लगा समय लोगों की श्रम शक्ति में गिनती देरी से करवाती है, जबकि अशिक्षित समाज जहाँ कार्य के लिये निपुणता आवश्यक नहीं है, उनमें श्रम शक्ति का अनुपात तुलनात्मक रूप से अधिक पाया जाता है।

गढ़वाल जनपद की क्रियाशील (कार्यरत) एवं अक्रियाशील (कार्येत्तर) जनसंख्या– आर्थिक स्तर की दृष्टि से भारत की जनसंख्या को तीन वर्गों में बाँटा गया है। ये तीन वर्ग मुख्यतः मुख्य कार्यशील, सीमान्त कार्यशील, अकार्यशील हैं। कार्यशील जनसंख्या का अधिक होना प्रत्येक प्रदेश के लिये लाभकारी होता है जबकि अकार्यशील जनसंख्या प्रदेश में निर्भरता सूचकांक को बढ़ा देती है। जिससे कार्यशील जनसंख्या पर अधिक भार पड़ जाता है तथा अर्थव्यवस्था का विकास नहीं हो पाता है। श्रमजीवी जनसंख्या को प्रतिभागिता द्वारा व्यक्त किया जाता है। कुल जनसंख्या में, कार्यरत जनसंख्या (मुख्य श्रमिक + सीमान्त श्रमिक) के प्रतिशत को प्रतिभागिता कहते हैं। प्रतिभागिता अनुपात पुरूषों तथा स्त्रियों के लिये अलग-अलग होते हैं। गढ़वाल जनपद की कार्यशील तथा अकार्यशील जनसंख्या का उल्लेख तालिका 1 तथा विभिन्न दशकों में कार्यशील व अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत चित्र 1 में उल्लेखित किया गया है।

तालिका 1 : कार्यशील व अकार्यशील जनसंख्या का कुल जनसंख्या से प्रतिशत

वर्ष	मुख्य कार्यशील	सीमान्त कार्यशील	कुल कार्यशील	अकार्यशील
1981	36.23	7.24	43.47	56.53
1991	31.66	7.53	39.19	60.81
2001	24.2	14.09	38.71	61.29
2011	23.93	15.96	39.89	60.11

स्रोत : सांख्यिकी पत्रिका 2001 एवं 2011 (पौड़ी गढ़वाल)

चित्र 1 : व्यावसायिक संरचना (1981-2011)

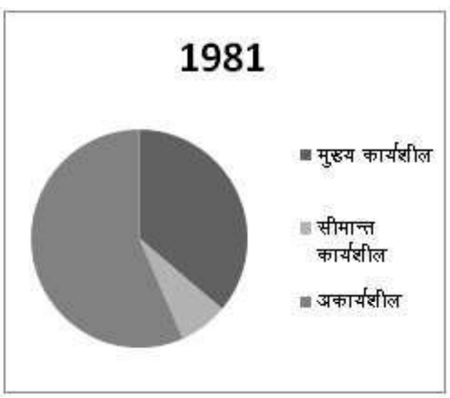

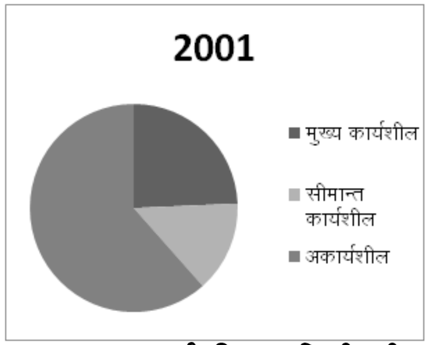

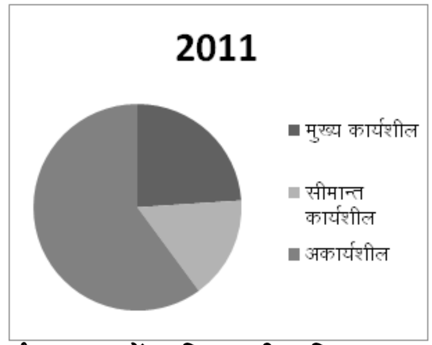

1. **मुख्य कार्यशील**– किसी भी अर्थव्यवस्था में श्रमिक की परिभाषा उसकी आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग हो सकती है। 2001 की जनगणना के अनुसार वे श्रमिक जिन्होंनें संदर्भ समयावधि अर्थात 6 माह, या अधिक के अधिकांश भाग में कार्य किया हो मुख्य श्रमिक कहलाते हैं। गढ़वाल जनपद में मुख्य कार्यशील जनसंख्या 1881 में 36.23 प्रतिशत थी, जो 1991 में घट कर 31.66 प्रतिशत हो गयी। 2001 तथा 2011 में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 24.2 तथा 23.93 है।

2. **सीमान्त कार्यशील**– जो श्रमिक 183 से कम दिनों तक रोजगार पाते हैं, उन्हें सीमान्त श्रमिक कहते हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार वे कामगार जिन्होंनें संदर्भ समयावधि अर्थात 6 माह से कम कार्य किया हो सीमान्त श्रमिक कहलाते हैं। गढ़वाल जनपद में सीमान्त कार्यशील जनसंख्या 1981 में 7.24 प्रतिशत थी जो 1991 में बढ़कर 7. 53 प्रतिशत व 2001 में 14.09 हो गयी। 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या में से सीमान्त कार्यशील जनसंख्या 15.96 प्रतिशत है।

3. **अकार्यशील जनसंख्या**– अश्रमिक वह व्यक्ति है जो वर्ष भर अपनी आजीविका के लिये कोई कार्य नहीं करता है। गढ़वाल जनपद की कुल जनसंख्या में अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत बहुत अधिक है, जो यहाँ की अर्थव्यवस्था के विकास के लिये अच्छा सूचक नहीं है। 1981 में गढ़वाल जनपद में अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत 56.53 था जो 1991 में 4.28 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 60.81 प्रतिशत हो गया। 2001 में अकार्यशील जनसंख्या 61.29 प्रतिशत हो गयी थी जो 2011 में -1.18 प्रतिशत घटकर 60. 11 प्रतिशत रह गयी।

तालिका 2 : कार्यशील व अकार्यशील जनसंख्या में परिवर्तन

कार्यशील	1981—1991	1991—2001	2001—2011
मुख्य	−4.57	− 7.04	− 0.69
सीमान्त	0.29	6.56	1.87
कुल	−4.28	− 0.48	1.18
अकार्यशील	4.28	0.48	− 1.18

स्रोत : सांख्यिकी पत्रिका 2001 एवं 2011 (पौड़ी गढ़वाल)

तालिका 2 के अध्ययन से यह ज्ञात होता है,कि 1981-1991 के दशक में मुख्य कार्यशील जनसंख्या में परिवर्तन -4.57 प्रतिशत था। ऋणात्मक परिवर्तन यह दर्शाता है कि 4.57 प्रतिशत में से 0.29 प्रतिशत लोग सीमान्त कार्यशील तथा 4.28 अकार्यशील

जनसंख्या में स्थानान्तरित हो गये। 1991-2001 के दशक में मुख्य कार्यशील जनसंख्या में ऋणात्मक परिवर्तन का अन्तर पहले के दशकों की तुलना में काफी अधिक था। 1991-2011 के दशक में मुख्य कार्यशील जनसंख्या में परिवर्तन -7.04 प्रतिशत था, जिसमें से 6.56 प्रतिशत जनसंख्या सीमान्त कार्यशील तथा 0.48 प्रतिशत जनसंख्या अकार्यशील जनसंख्या में स्थानान्तरित हो गयी। 2001-2011 के दशक में कार्यशील जनसंख्या में परिवर्तन 1991-2001 की तुलना में बहुत कम रहा। 2001-2011 के दशकीय परिवर्तन से यह ज्ञात होता है कि अकार्यशील जनासंख्या-1.18 प्रतिशत तथा मुख्य कार्यशील जनसंख्या का -0.69 प्रतिशत, सीमान्त कार्यशील जनसंख्या में स्थानान्तरित हो गया।

इस प्रकार कह सकते है कि गढ़वाल जनपद में आश्रितों की संख्या अधिक है जो यहाँ की पिछड़ी अर्थव्यवस्था का सूचक है। इसका कारण रोजगार के अवसरों की कमी का होना है।

गढ़वाल जनपद में विकास खण्डवार ग्रामीण जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण-2011- गढ़वाल जनपद में 15 विकासखण्ड हैं तालिका 3 में गढ़वाल जनपद के विकासखण्डों के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण किया गया है। यह वर्गीकरण 2011 की जनगणना पर आधारित है। निम्नलिखित तालिका में कार्यशील तथा अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत विकासखण्डों की कुल जनसंख्या से ज्ञात किया गया है। गढ़वाल जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में कुल कार्यशील जनसंख्या 41.91 प्रतिशत है। जिसमें से मुख्य कार्यशील जनसंख्या 23.46 प्रतिशत तथा सीमान्त कार्यशील जनसंख्या 18.45 प्रतिशत है। अतः जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में 58.09 प्रतिशत आश्रित जनसंख्या है।

तालिका 3 : गढ़वाल जनपद में विकास खण्डवार ग्रामीण जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण -2011

क्र0 सं0	विकासखण्ड	मुख्य कार्यशील जनसंख्या	सीमान्त कार्यशील जनसंख्या	अकार्यशील जनसंख्या
1	खिरसू	23.05	13.26	63.69
2	कोट	26.56	19.29	54.15
3	पौड़ी	20.22	29.32	50.46
4	कल्जीखाल	18.10	28.15	53.75
5	पाबौ	31.54	14.33	54.12
6	थैलीसैण	31.50	15.09	53.41
7	वीरोंखाल	30.58	19.85	49.57
8	नैनीडांडा	18.91	24.56	56.52
9	द्वारीखाल	17.35	22.31	60.34
10	दुगड्डा	18.44	11.21	70.35
11	जहरीखाल	17.04	20.91	62.05
12	ऐकेश्वर	23.69	21.25	55.06
13	पोखडा	17.39	29.70	52.91
14	रिखणीखाल	28.51	19.66	51.83
15	यमकेश्वर	26.43	17.74	55.83
16	वन क्षेत्र	30.87	4.29	64.84
गढ़वाल (ग्रामीण) योग		**23.46**	**18.45**	**58.09**

स्रोत : सांख्यिकी पत्रिका 2001 एवं 2011 (पौड़ी गढ़वाल)

चित्र 3 : गढ़वाल जनपद में विकास खण्डवार ग्रामीण जनसंख्या का आर्थिक वर्गीकरण-2011

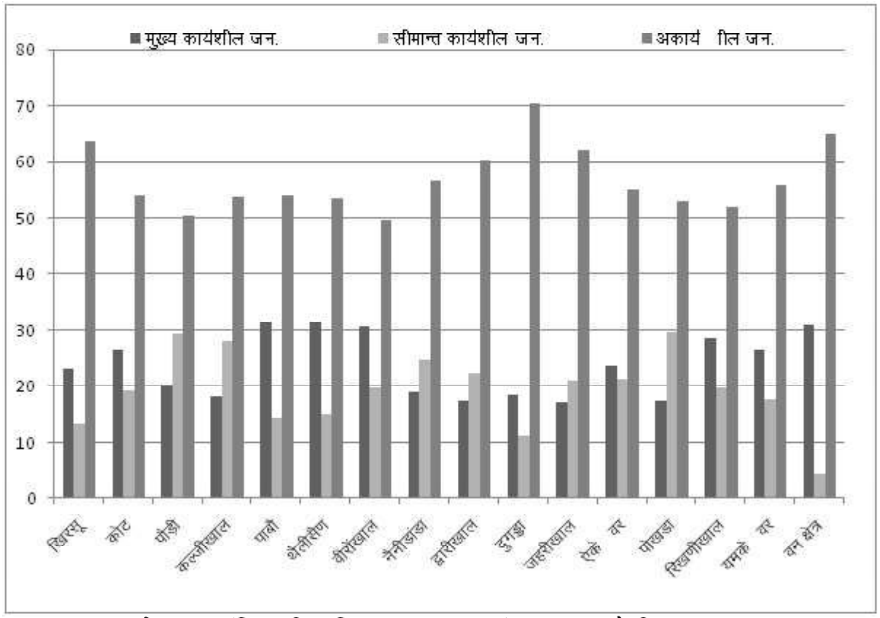

स्रोत : सांख्यिकी पत्रिका 2001 एवं 2011 (पौड़ी गढ़वाल)

तालिका 3 से यह निष्कर्ष निकलता है कि गढ़वाल जनपद के सभी विकासखण्डों में आश्रित जनसंख्या अधिक है। दुगड्डा में अकार्यशील जनसंख्या 70.35 प्रतिशत सर्वाधिक है। खिरसू तथा जहरीखाल में क्रमशः 63.69 प्रतिशत, 62.05 प्रतिशत है। सभी विकासखण्डों में से वीरोंखाल में अकार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत (49.57) सबसे कम है। सभी विकासखण्डों में मुख्य कार्यशील जनसंख्या 17 से 31 प्रतिशत के मध्य है।

लिंगानुपात के आधार पर गढ़वाल जनपद के विकासखण्डों की ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक संरचना– गढ़वाल जनपद के सभी विकासखण्डों की ग्रामीण क्षेत्रों की कार्यशील तथा अकार्यशील जनसंख्या का लिंगानुपात के आधार पर वर्गीकरण तथा मूल्यांकन तालिका 4 में किया गया है।

तालिका 4 : लिंगानुपात के आधार पर गढ़वाल जनपद के सामुदायिक विकासखण्डों में व्यवसायिक संरचना-2011

क्र0सं0	विकासखण्ड	कुल जनसंख्या / पुरूष/महिला	कुल जनसंख्या	मुख्य कार्यशील जनसंख्या (% में)	सीमान्त कार्यशील जनसंख्या (% में)	कुल कार्यशील जनसंख्या (% में)	अकार्यशील जनसंख्या (% में)
1	खिरसू	कुल	26731	23.05	13.26	36.31	63.69
		पुरूष	13092	33.60	11.61	45.21	54.79
		महिला	13639	12.92	14.84	27.76	72.24
2	कोट	कुल	23754	26.56	19.29	45.85	54.15
		पुरूष	11242	27.95	17.39	45.34	54.66
		महिला	12512	25.31	21.00	46.31	53.69
3	पौड़ी	कुल	28694	20.22	29.32	49ू54	50.46
		पुरूष	13476	25.21	24.30	49.51	50.49
		महिला	15218	15.81	33.76	49.57	50.43

4	कल्जीखाल	कुल	29287	18.10	28.15	46.25	53.75
		पुरूष	13253	23.07	22.90	45.97	54.03
		महिला	16034	14.00	32.48	46.48	53.52
5	पाबौ	कुल	34645	31.54	14.33	45.88	54.12
		पुरूष	15462	31.55	10.85	42.41	57.59
		महिला	19183	31.53	17.14	48.67	51.33
6	थैलीसैण	कुल	59804	31.50	15.09	46.59	53.41
		पुरूष	27435	32.69	10.71	43.40	56.60
		महिला	32371	30.50	18.80	49.29	50.71
7	वीरोंखाल	कुल	40915	30.58	19.85	50.43	49.57
		पुरूष	18094	31.55	16.34	47.89	52.11
		महिला	22821	29.80	22.64	52.44	47.56
8	नैनीडांडा	कुल	32937	18.91	24.56	43.48	56.52
		पुरूष	14880	24.24	19.50	43.78	56.22
		महिला	18057	14.49	28.73	43.22	56.78
9	द्वारीखाल	कुल	38106	17.35	22.31	39.66	60.34
		पुरूष	17720	24.52	19.64	44.16	55.84
		महिला	20386	11.12	24.63	35.75	64.25
10	दुगड्डा	कुल	106267	18.44	11.21	29.65	70.35
		पुरूष	51685	28.99	12.85	41.85	58.15
		महिला	54582	8.45	9.66	18.11	81.89
11	जहरीखाल	कुल	26493	17.04	20.91	37.95	62.05
		पुरूष	12338	20.29	22.42	42.71	57.29
		महिला	14155	14.21	19.60	33.81	66.19
12	ऐकेश्वर	कुल	28035	23.69	21.25	44.94	55.06
		पुरूष	12815	28.16	17.25	45.42	54.58
		महिला	15220	19.93	24.61	44.54	55.46
13	पोखडा	कुल	21199	17.39	29.70	47.09	52.91
		पुरूष	9372	21.59	22.13	43.72	56.28
		महिला	11827	14.06	35.70	49.76	50.24
14	रिखणीखाल	कुल	29466	28.51	19.66	48.17	51.83
		पुरूष	13437	29.79	16.13	45.93	54.07
		महिला	16029	27.44	22.61	50.05	49.95
15	यमकेश्वर	कुल	36665	26.43	17.74	44.17	55.83
		पुरूष	17493	30.92	16.44	47.36	52.64
		महिला	19172	22.34	18.93	41.27	58.73
16	वन क्षेत्र	कुल	11568	30.87	4.29	35.16	64.84
		पुरूष	6235	45.77	5.82	51.60	48.40
		महिला	5333	13.44	2.49	15.94	84.06
गढ़वाल जनपद (ग्रामीण) योग		**कुल**	**574568**	**23.46**	**18.45**	**41.91**	**58.09**
		पुरूष	**268029**	**28.69**	**15.98**	**44.67**	**55.33**
		महिला	**306539**	**18.89**	**20.60**	**39.49**	**60.51**

स्रोत : जिला जनगणना हस्त-पुस्तिका (गढ़वाल), 2001 एवं 2011 series - 06

तलिका 4 से यह निष्कर्ष निकलता है कि गढ़वाल जनपद की कुल जनसंख्या में से 5,74,568 ग्रामीण जनसंख्या है। ग्रामीण जनसंख्या की कुल जनसंख्या में से 23.46 प्रतिशत जनसंख्या मुख्य कार्यशील तथा 18.45 प्रतिशत सीमान्त कार्यशील जनसंख्या है, शेष 58.09 प्रतिशत अकार्यशील जनसंख्या का है। लिंगानुपात के आधार पर जनपद के 28.69 प्रतिशत पुरूषों तथा 18.89 प्रतिशत महिलायें मुख्य कार्यशील जनसंख्या को प्रदर्शित करते हैं। सीमान्त कार्यशील जनसंख्या में पुरूषों तथा महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः 15.98 व 20.60 है। सीमान्त कार्यशील जनसंख्या में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं

का प्रतिशत अधिक है और यही प्रवृति विकासखण्डों में भी देखने को मिलती है।

जनपद की कुल ग्रामीण जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या 41.91 प्रतिशत है। वीरोंखाल में कुल जनसंख्या का 50.43 प्रतिशत कुल कार्यशील जनसंख्या का है जो विकासखण्ड स्तर पर सर्वाधिक है। वीरोंखाल के अलावा पौड़ी 49.54 प्रतिशत, रिखणीखाल 48.17 प्रतिशत, पोखणा 47.09 प्रतिशत, थैलीसैंण 46.59 प्रतिशत, और कल्जीखाल 46. 25 प्रतिशत, में भी कुल कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत अधिक है।

निष्कर्ष एवं सुझाव–

जनसंख्या के आर्थिक संघटनों से वहाँ के विभिन्न प्रकार के आर्थिक, जनांकिकी तथा सांस्कृतिक तत्वों का पता चलता है तथा ये तत्व ही उस प्रदेश की सामाजिक व आर्थिक उन्नति का आधार हैं। आर्थिक संघटन के द्वारा ही मानव शक्ति का पता चलता है, मानव शक्ति केवल उन व्यक्तियों से बनती है जो पदार्थों के उत्पादन, सेवाओं के लिये सक्षम हैं तथा वे जो आर्थिक रूप से लाभकारी क्रियाओं में भाग लेने के अभिलाषी हैं। जनसंख्या के आर्थिक संघटन के द्वारा ही किसी क्षेत्र के रहन-सहन के स्तर, आर्थिक सफलता एवं असफलता, आदि का ज्ञान होता है। जनसंख्या की आर्थिक विशेषतायें श्रम बल, क्रियाशीलता, निर्भरता, भार, व्यावसायिक संरचना, आय संरचना, रोजगार एवं बेरोजगारी, श्रम उपयोग, दक्षता, आय विवरण इत्यादि के रूप में परिलक्षित होते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गढ़वाल जनपद में अधिकांश जनसंख्या आश्रित है। आश्रित जनसंख्या के अन्तर्गत यहाँ छात्र, बुजुर्ग लोग, बेरोजगार युवा, पेनशनधारी, आदि लोंगों को सम्मिलित किया गया है, क्योंकि ये लोग आर्थिक रूप से उत्पादन की क्रिया में भाग नहीं लेते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिंकाश लोग प्राथमिक क्रियाओं में संलग्न हैं। जनपद की अधिकांश जनसंख्या एक से अधिक व्यवसायों में कार्यरत है, इसका उदाहरण इस बात से विदित होता है कि यहाँ पर नौकरी करने वाले लोग कृषि तथा पशुपालन का कार्य भी करते हैं। यहाँ पर कृषि जीविकोपार्जन का साधन मात्र है क्योंकि गढ़वाल जनपद के अधिकांश भागों में कृषि पारम्परिक ढंग से की जाती है जिससे उत्पादन कम तथा निम्न गुणवत्ता का होता है, जिस कारण यहाँ के कृषक कृषि उत्पादों का विपणन नहीं करते हैं। इसलिये खेतों से प्राप्त होने वाला उत्पादन इन लोंगों तक ही सीमित रहता है।

गढ़वाल जनपद में कृषि कार्यों में महिलाओं की भूमिका पुरूषों की तुलना में अधिक है, क्योंकि पुरूष वर्ग खेंतों में हल लगाने तक ही सीमित है जबकि खेतों में निराई, गुडाई, फसल की कटाई, बीज निकालना आदि कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जातें हैं।

समस्यायें– जनपद में व्यावसायिक संरचना से सम्बन्धित निम्नलिखित समस्यायें है।

1. जनपद में बेरोजगारी एक मुख्य समस्या है।
2. शिक्षित युवाओं का पलायन करना।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि का पारम्परिक रूप, कम उत्पादन तथा फसलों का जंगली जानवरों द्वारा नुकसान।
4. धीरे -धीरे लोग कृषि व्यवसाय का त्याग कर रहे हैं।
5. कुटीर उद्योगों का अभाव।

सुझाव–

1. रोजगार के अवसरों को उपलब्ध कराने के लिये सरकार को स्थानीय लोगों के साथ मिलकर प्रयास करने चाहिये।
2. यहाँ पर फलों तथा फूलों की खेती की अपार सम्भावनायें हैं। लोगों को इस दिशा में सोचना चाहिये तथा सरकार को बाजार की व्यवस्था करनी चाहिये।
3. पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ-साथ यहाँ के लोगों को पर्यटन गाइड के रूप में प्रशिक्षित किया जाना चाहिये, जिससे लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Chandana, R. C. (1980): ' An Introduction to Population Geography" Kalyani Publisher, New Delhi.
2. Chandana, R. C. (1980): ' A Geography Population, Kalyani Publisher, New Delhi.
3. Desai, I. P. (1971): Understanding Occupational Change in India. Economic and Political Weekly, 1094-1098.
4. Census Of India (2001, 11): District Census Handbook of Pauri Garhwal, Uttarakhand Series.
5. Sankhiki Patrika (2001): District Pauri Garhwal.
6. Sankhiki Patrika (2011): District Pauri Garhwal.
7. Websites : www.pauri.nic, www.uknicpuri.com

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का प्रभाव एवं मूल्यांकन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

* मनीष शुक्ला
** अभिषेक कुमार मालवीय

सारांश– *भारत सरकार द्वारा ''महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 पारित किया गया है। जम्मू एवं कश्मीर राज्य के अतिरिक्त यह संपूर्ण भारत में लागू है। यह अधिनियम भारत सरकार द्वारा निर्धारित किए गए दिनांक से लागू है। विभिन्न राज्यों अथवा राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अधिनियम के लागू होने के दिनांक भिन्न हो सकते हैं। यह भी उपबंधित है कि अधिनियम वर्तमान में अधिसूचित जिलों तक ही सीमित रहेगा। इसे संपूर्ण क्षेत्र में अधिनियमित दिनांक से पॉच वर्ष की अवधि में लागू किया जाएगा। प्रारंभ में अधिनियम के प्रावधानों को दो फरवरी, 2006 से विभिन्न राज्यों के 200 जिलो में लागू किया गया है। इसे अप्रैल 2008 से देश के सभी 614 जिलो में लागू किया गया है।*

मुख्य शब्द– मनरेगा, ग्रामीण विकास, रोजगार योजनाएँ।

प्रस्तावना– भारत सरकार द्वारा अब तक बहुत सारी जन कल्याणकारी योजनाओं को लागू किया गया और उनका क्रियान्वयन भी हो रहा है, लेकिन महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम एक ऐसी योजना है, जिसके आने से गरीब लोगों या गांव के लोगो में काम का अधिकार, आत्म सम्मान और स्वावलम्बन की भावना का विकास हुआ। इसके अलावा इस योजना से गांवों के विकास और सौन्दर्यीकरण का अच्छा अवसर मिला है। ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम'' (मनरेगा) भारत सरकार की अब तक की सबसे बड़ी रोजगारपरक महत्वाकांक्षी योजना है। जिसमें सम्पूर्ण भारत के गांवों की तस्वीर बदल देने की झमता विद्यमान है। आजादी के बाद से ही सरकार के समक्ष ग्रांमीण क्षेत्रो का एकीकृत विकास एक महत्वपूर्ण चुनौती रहा है और इसलिए तदनुरूप ग्रामीण विकास योजनायें भी बनती रही है। अभी तक दस पंचवर्षीय योजनायें पूर्ण हो गयी है। और वर्तमान में बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) अस्तित्व में है, जिसमे ग्रामीण विकास की व्यापक रूपरेखा खीचीं गयी है।

नब्बे के दशक में प्रारम्भ उदारीकरण के दौर ने ग्रामीण विकास के समक्ष नई चुनौतियों प्रस्तुत की है। भारत के समग्र विकास मे क्षेत्रीय असन्तुलन भी एक बडा रोग

* प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी, वाणिज्य, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

बना है। केन्द्र सरकार के राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम एवं देश के समग्र विकास में गांवों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए इनके प्रति अपनी वचनबद्वता व्यक्त की गयी है और अपने अग्रभागी कार्यक्रमों में - शिक्षा तथा स्वास्थ्य के दो कार्यक्रमों के साथ शेष चार कार्यक्रमों में राष्ट्रीय रोजगार गारन्टी अधिनियम, जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण योजना, राजीव गांधी पेयजल मिशन और पूर्ण स्वच्छता अभियान शामिल है। गांव के विकास की मुख्य उपादेयता ग्रामीण विकास मंत्रालय के पास है। जो ग्रामीण भारत की तस्वीर के गरीबी और भूख से मुक्त कराने हेतु प्रयासरत है। इसलिए हाल के वर्षो में ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक तथा आधार युक्त संरचना के सृजन हेतु कई महत्वपूर्ण पहलकदमियॉ भी की गयी है जिससे शहरी और ग्रामीण के बीच अन्तर मिट सके। इसी दिशा में ''महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम'' (मनरेगा) जैसी महत्वाकांक्षी परियोजना शुरू की गयी है। मनरेगा को आरम्भ मे देश भर के 200 जिलो में 2 फरवरी 2006 को लागू किया गया और अप्रैल 2008 से देश के सभी 614 जिलो मे यह योजना लागू हो गयी। इस योजना के मद मे केन्द्र और राज्य सरकारों को योगदान क्रमशः 90 प्रतिशत व 10 प्रतिशत है। इस योजना में सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना और काम के बदले अनाज योजना को समाहित कर लिया है। 2012-13 के बजट मे मनरेगा के लिए 40000 करोड़ रूपये आवंटित किये गये है, जो पिछले बजट 2009-10 की तुलना में 144 प्रतिशत अधिक है। एक लम्बे जनसंघर्ष के बाद इस विधेयक का संसद में पारित होना जन मत की एक बड़ी जीत दर्शाता है, क्योंकि काम का अधिकार भारतीय संविधान के अनु0 21 में दिये गये ''गरिमा'' के साथ जीने के अधिकार की पूर्व शर्ते है। संविधान के अनु0 45 में देश के प्रत्येक नागरिक को काम के अधिकार की बात की गयी है, जो यह साबित करती है कि यह हमारा मौलिक अधिकार है। यह सशक्त लोकतन्त्र के लिए बुनियादी बाते है, कि हर हाथ मे काम दो वरना काम का दाम दो। आज वैश्वीकरण एवं निजीकरण के दौर में मजदूर-हित और इनकी गरिमा समाप्त होती जा रही थी। इस प्रकार मनरेगा सामाजिक न्याय की एक ऐसी अवधारणा है जिसके माध्यम से गरीबी मिटाने, भोजन करने का अधिकार देने, शिक्षा का अधिकार देने जैसी योजनाओं का सन्तुलन बनाने में मदद मिल रही है। सरकार 2014 तक गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य रखकर मनरेगा से भी आगे की राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन योजना लाने की तैयारी में है।

ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम एक अभिनव प्रयोग है जो कि जमीनी स्तर पर गरीब लोगों की मदद कर रहा है यह योजना इतनी कारगर हो रही है जिसके प्रमाण के रूप में अब रोजगार के दिनों की संख्या को 100 दिन से बढ़ाकर 200 दिन करने की मांग की जा रही है। 100 दिन के न्यूनतम रोजगार की गारंटी और इसमें भ्रष्टाचार का न होना पिछली सरकार की कामयाबी ही कही जा सकती है। सरकार की इस योजना से गांव के बेरोजगार को सीधे लाभ पहुँचा कर इस योजना की कामयाबी साबित हो चुकी है।

इन्डियन-डेवलपमेन्ट फाउन्डेशन की स्टडी से पता चला है कि जिन जिलो में रोजगार गारंटी योजना लामू की गयी है, वहां खाने के सामान की महंगाई उन जिलों से अधिक थी जहां योजना लागू नही की गयी थी। इससे साबित होता है कि इस योजना ने ग्रामीणों की खर्च करने की ताकत दी है। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्यों से दिल्ली और मुम्बई जाने वालों मजदूरों की संख्या में निरन्तर कमी इस योजना के कारगर होने के परिणाम है।

पिछले तीन सालों में 4.47 करोड़ परिवारों को रोजगार मिला है।

सरकार की महत्वाकांक्षी योजना 'मनरेगा' भारतीय डाकघर के पुराने गौरव को लौटने में मदद कर रही है। इस योजना के तहत कारोबारी साल 2008-2009 में डाकघरों में 3.12 करोड़ नये बचत खाते खोले गये।

जिला तथा खण्ड स्तर पर देश भर में 63 हजार कर्मियों को भी मनरेगा में रोजगार मिला है। देश की जनसंख्या के 40.22 करोड़ व्यक्ति मजदूर वर्ग से सम्बन्धित है, जो प्रमुखतः असंठित क्षेत्र में कार्यरत है इस वर्ग को 'मनरेगा' ने ही सहारा दिया है।

शोध का उद्देश्य - प्रस्तुत शोध पत्र ''महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का प्रभाव एवं मूल्यांकन'' पर आधारित है। इस योजना को भारत सरकार द्वारा 2005, माह-सितम्बर में पारित किया गया था। तब से लगातार इस योजना के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है। इस योजना को लागू करने का मुख्य उद्देश्य सरकार द्वारा संबंधित ग्रामीण क्षेत्र का विकास करना है। अतः शोधपत्र की रचना करते समय मेरे मस्तिष्क में इसके मूल्यांकन का विचार आया। इसकी आर्थिक पृष्ठभूमि को देखते हुए शोध हेतु ''रीवा जिले में ''महात्मा गाँधी राष्ट्रीय गामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम (मनरेगा) का प्रभाव एवं मूल्यांकन'' 2012-17 तक का आर्थिक अध्ययन करना ही इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

शोध पत्र की रचना निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गई है।

* रोजगार गारंटी योजना के लागू होने से ग्रामीणों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
* मनरेगा के माध्यम से रोजगार प्राप्त परिवारों के जीवन स्तर में सुधार का अध्ययन करना।
* मनरेगा के लागू होने के बाद ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत आपूर्ति, शांति सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का अध्ययन करना।

उपकल्पना-

1. रोजगार गारंटी योजना के लागू होने से ग्रामीण क्षेत्रों के लोगो के सामान्य जीवन-स्तर एवं आय में सुधार हो रहा है।
2. रोजगार गारंटी योजना के लागू होने से कई लोगो में सामाजिक तथा आर्थिक बदलाव हो रहा है।
3. मनरेगा के कारण ग्रामीणो के पलायन मे कमी आयी है तथा स्थानीय महौल मे काम मिल रहा है।
4. मनरेगा के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र के निवास करने वाले प्रत्येक परिवार के वयस्क सदस्य को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध हो रहा है।
5. मनरेगा ने गरीबो का जीवन स्तर बदल दिया है। अब वह साफ-सुथरे वातावरण में रह रहे है।

अध्ययन का क्षेत्र एवं शोध प्रारूप-

मध्यप्रदेश प्रांत के प्रमुख शहरों के मध्य रीवा नगर प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र है। यह जिला 8 विकासखण्डों से घिरा है। रीवा जिले की कुल जनसंख्या 2365106 है। अध्ययन के उद्देश्य हेतु रीवा जिले का चयन किया जिसमें बी.पी.एल. 6544 तथा ए.पी.एल. 5170

परिवार निवासरत है। अध्ययन के समय विभिन्न मोहल्लों के मध्य आर्थिक असमानता जैसा अंतर भी ज्ञात हुआ, कुछ मोहल्ले आर्थिक रूप से संपन्न तो कुछ विपन्न और कुछ मिश्रित है। इसी क्रम में कुछ मोहल्ले विशेष जाति, वर्ग एवं समुदाय की विशेषता वाले है। विभिन्नताओं को भी प्रस्तुत अध्ययन में यथोचित स्थान दिया गया है। अतः चयनित रीवा जिले से 50 परिवारों का दैवनिदर्शन विधि से चयन कर साक्षात्कार, अनुसूची के माध्यम से तथ्य संकलित किये गये।

शोध की आवश्यकता एवं महत्त्व–

प्रस्तावित शोध अध्ययन के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि ''मनरेगा'' जो कि एक महत्वूपर्ण अधिनियम एवं ग्रामीण पुनर्निर्माण कार्यक्रम है उसे कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है जिससे वह निर्धारित उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल हो सके। प्रस्तुत अध्ययन शोध क्षेत्र में इस बात की योगदान करेगा कि यह राष्ट्रीय कार्यक्रम किस प्रकार से प्रभावी बनाया जा सकता है।

शोध प्रविधि– प्रस्तावित शोध अध्ययन के व्यवस्थित पूर्ण करने हेतु समकालिक, मौलिक स्त्रोतो, स्थल सर्वेक्षणों और सहायक ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए शोध को दोनों (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष) ही पद्धतियों का सहयोग लिया गया है। इसके साथ ही व्यक्तिगत निरीक्षण प्रश्नावली साक्षात्कार एवं अनुसूचियों का भी प्रयोग किया गया है।

समंको का संकलन एवं प्रयुक्त विधियॉ–

समंक किसी भी अध्ययन के निकाले गये निष्कर्षो के लिये आधार प्रदान करता है। समंको के मुख्यतः दो स्त्रोत है। पहला प्राथमिक स्त्रोत और दूसरा द्वितीयक स्त्रोत है। प्राथमिक स्त्रोत के अंतर्गत मुख्यतः निरीक्षण या अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची व प्रश्नावली के माध्यम से सूचनाएँ एकत्र की गयी है। अपने शोध प्रवंध में प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य सामग्री का प्रयोग किया गया है, जो कि पत्र-पत्रिकाओं, वार्षिक प्रतिवेदन अखबारों, शोध रिपोर्ट आदि से एकत्र किया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र रोजगार गारंटी योजना (रीवा) की आर्थिक स्थिति एवं आय-व्यय पर आधारित है। अतः तथ्यात्मक विश्लेषण के लिये इस अध्ययन में द्वितीयक समंको का प्रयोग किया गया है। समंको का मुख्य स्रोत जिला पंचायत द्वारा प्रकाशित वार्षिक प्रतिवेदन के आय-व्यय पत्रक 2006-2017 तक के ऑकड़े, जिला पंचायत कार्यालय, एवं अन्य सूचनात्मक पत्रिकाएँ है। ये वार्षिक विवरण तथा अन्य प्रकाशित सामग्री जिला पंचायत रीवा के कार्यालयों से व्यक्तिगत सम्पर्क करके एकत्रित की गई है।

तथ्यों के विश्लेषण द्वारा आवश्यक निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं एवं निष्कर्षो के आधार पर आवश्यक सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं।

तालिका न0 1, आयु के आधार पर वर्गीकरण

क0सं0	आयु	संख्या	प्रतिशत
1.	20 से 30	20	40
2.	30 से 40	25	50
3.	40 से अधिक	5	10
योग		50	100

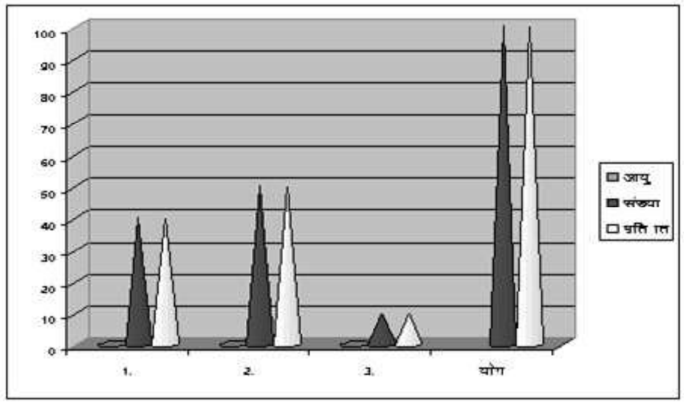

उपरोक्त तालिका के अनुसार सर्वाधिक 50 प्रतिशत 30 से 40 वर्ष आयु वर्ग के उत्तरदाता है तथा न्यूनतम 10 प्रतिशत 40 से अधिक आयु वर्ग के हैं। 40 प्रतिशत उत्तरदाता 20 से 30 आयु वर्ग के हैं। अतः स्पष्ट है कि 30 से 40 आयु वर्ग के उत्तरदाता होनें का प्रमुख कारण पारिवारिक जिम्मेदारियों का होना, इसके आधार पर कहा जा सकता है ज्यादातर ये उत्तरदाता परिवार के मुख्य सदस्य हैं।

तालिका न0 2

लिंग के आधार पर वर्गीकरण

क.सं.	**लिंग**	**संख्या**	**प्रतिशत**
1	महिला	10	20
2	पुरूष	40	80
योग		50	100

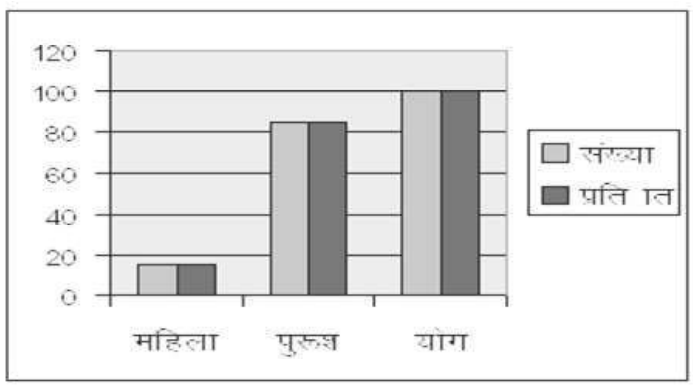

उपर्युक्त तालिका में सर्वाधिक रीवा जिले में कार्य करने वाले पुरूष 85 प्रतिशत है। एवं महिलाएं मात्र 15 प्रतिशत है।

स्पष्ट है कि आज भी महिलाएं कार्य प्राप्त करने में पीछे है।

तालिका न0 3

जाति के आधार पर वर्गीकरण

स.क्र.	जाति	संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	00	00
2.	अनुसूचित जाति	76	76
3.	अनुसूचित जनजाति	14	14
4.	पिछड़ा	10	10
योग		100	100

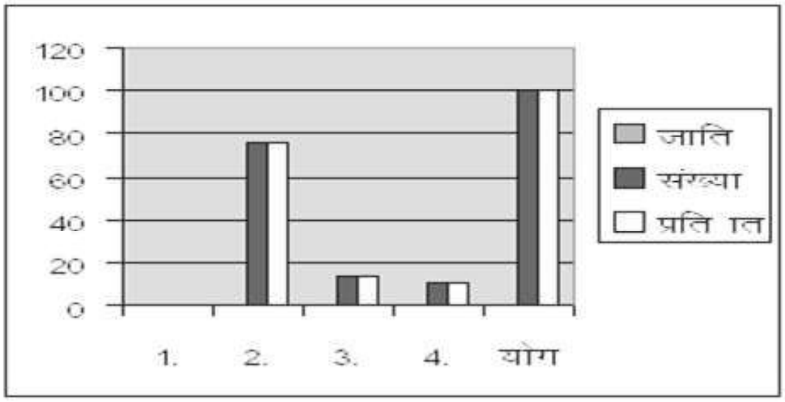

उपर्युक्त तालिका में जाति के आधार पर वर्गीकरण दिखाया गया है। जिसमें अनुसूचित जाति के सबसे अधिक 76 प्रतिशत एवं सबसे कम पिछड़ी जाति 10 प्रतिशत है तथा सामान्य व्यक्तियों का प्रतिशत शून्य है।

रीवा जिले में अनुसूचति जाति के सर्वाधिक लोग कार्य करते पाये गये हैं।

तालिका न0 4

शिक्षा के आधार पर वर्गीकरण

क.सं.	शिक्षा का स्तर	संख्या	प्रतिशत
1-	प्राथमिक	10	10
2-	माध्यमिक	8	8
3-	हाईस्कूल	2	2
4-	निरक्षर	80	80
योग		100	100

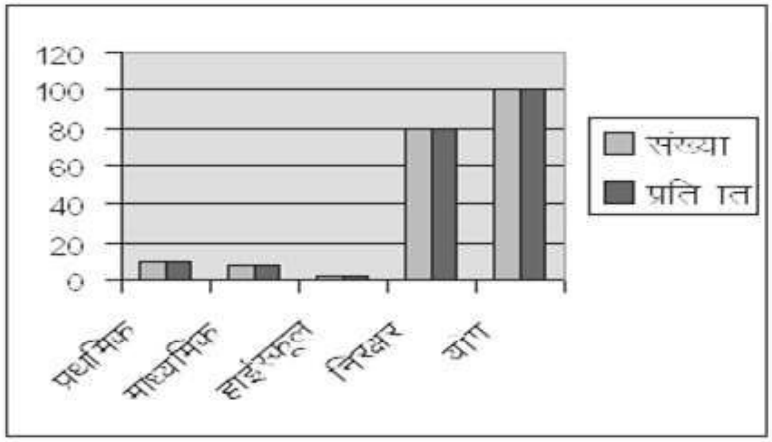

उपर्युक्त तालिका में उत्तरदाताओं की शिक्षा का वर्णन है। जिसमें 10 प्रतिशत प्राथमिक, 8 प्रतिशत माध्यमिक, 2 प्रतिशत हाईस्कूल तथा शेष 80 प्रतिशत अशिक्षित हैं।

उत्तरदाताओं में शिक्षा जागरूकता का अभाव पाया गया है क्योंकि अधिकांश उत्तरदाता निरक्षर हैं। कुछ तो केवल साक्षर मात्र हैं।

तालिका नं0 5

आवास के आधार पर वर्गीकरण

क.सं.	आवास का प्रकार	संख्या	प्रतिशत
1-	कच्चा	70	70
2-	पक्का	00	00
3-	मिश्रित	30	30
योग		100	100

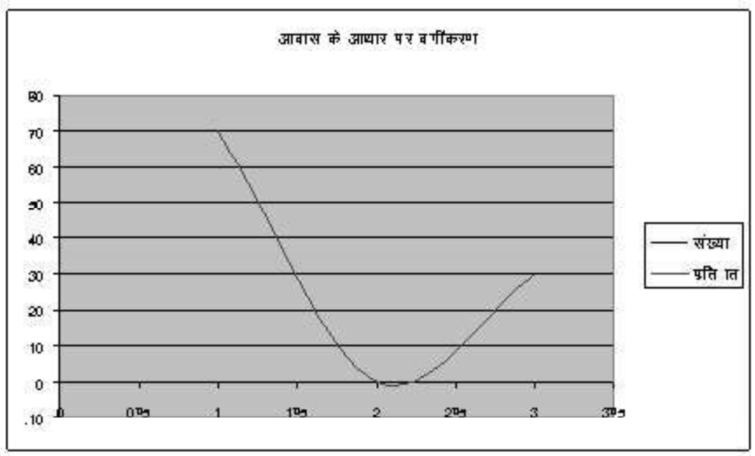

उपर्युक्त तालिका में आवास के प्रकार का वर्गीकरण दिखाया गया है जिसमें कच्चे आवास 70 प्रतिशत, पक्के मकानो का प्रतिशत शून्य है और मिश्रित मकानों का प्रतिशत 30 है।

उत्तरदाताओं में मकानों का सबसे ज्यादा प्रतिशत कच्चे मकानों का है क्योंकि सभी उत्तरदाताओं का मुख्य व्यवसाय मजदूरी है और वे इतनी बचत नहीं कर पाते जिससे वे व्यवस्थित मकान बना सके। जिन उत्तरदाताअें के मकान मिश्रित हैं उन्हें इन्दिरा आवास योजना के लाभ के तहत बनें है।

तालिका नं0-6

आय के श्रोत के आधार पर

क.सं.	आय के श्रोत	संख्या	प्रतिशत
1-	कृषि	20	20
2-	मजदूरी	70	70
3-	दोनों	10	10
4-	अन्य	00	00
योग		100	100

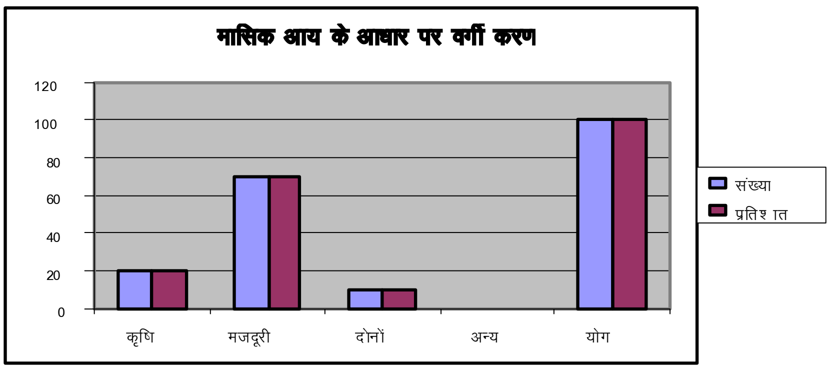

उपर्युक्त तालिका में आवास के श्रोतों का विवरण दिया गया है। जिसमें कृषि 20 प्रतिशत, मजदूरी 70 प्रतिशत, एवं दोनों तहत प्राप्त आय 10 प्रतिशत हैं। उत्तरदाताओं के मुख्य आय का साधन मजदूरी है क्योंकि इन उत्तरदाताओं के पास जोतों का अभाव है उत्तरदाताओं के पास अधिक से अधिक 2 बीघा जमीन ही है।

निष्कर्ष–

- रीवा जिले में सर्वाधिक कार्य पुरूषों ने प्राप्त किया।
- रीवा जिले में सर्वाधिक पिछडी जाति के लोगों ने काम प्राप्त किया।
- योजना में कार्यरत उत्तरदाताओं में शिक्षा का अभाव पाया गया।
- रीवा जिले में कार्यरत अधिकांश लोगों की आय 1500 से 2000 के बीच है।
- योजना में कोरी जाति के सर्वाधिक लोग कार्यरत है।
- योजना में कार्यरत उत्तरदाता सामान्यतः सामान्य भोजन करते है।
- योजना में सामान्य आर्थिक स्थिति के लोग कार्यरत है।
- रीवा जिले में कार्य करने से आपसी एकता में वृद्धि हुई है।

* रीवा जिले में कार्य मिलने से आर्थिक बोझ कम हुआ है।
* योजना के क्रियान्वयन से गांव की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ।
* रीवा जिले में कार्यरत 64 प्रतिशत लोगों को 100 दिन का रोजगार प्राप्त हुआ।
* योजना के क्रियान्वयन से पलायन में कमी आयी है।
* रीवा जिले से पारिवारिक ग्रामीण सम्बन्धों में सुधार हुआ है।

सुझाव–

* रोजगार गारण्टी योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए इसमें और अधिक व्यावहारिकता की आवश्यकता है।
* रीवा जिले में समय से मजदूरी के भुगतान की आवश्यकता है।
* राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना में महिलाओं को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।
* इस योजना के उचित अंकेक्षण एवं मूल्यांकन को दृष्टिगत रखते हुए ग्रामीण सहभागिता की आवश्यकता है।
* बेरोजगारी भत्ता के समय से भुगतान की आवश्यकता है।
* स्थानीय स्तर में योजना में पारदर्शिता का अभाव है योजना की कार्य प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।
* योजना की भाषा न समझ पाने वाले के लिए मुख्य धाराओंका प्रकाशन सरल एवं स्थानीय भाषा में हो।
* कार्य करने से पहले इस योजना की पर्याप्त जानकारी की आवश्यकता है, पंचायत स्तर पर इसका अभाव है।
* इस योजना में और अधिक सुधार की जरूरत है। इसके क्रियान्वयन, जॉबकार्ड, प्रविष्टियां इत्यादि स्पष्ट हो।
* रीवा जिले में प्राप्त कार्य दिवसों में वृद्धि की आवश्यकता है।
* ऐसे प्रयास शासकीय स्तर पर किया जाये जिसके अन्तर्गत प्रावधानों की मानीटरिंग और मूल्यांकन मतदाताओं द्वारा समय-समय पर किया जाये इस निरंकुशता की प्रवृति से बचा जा सकता है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. मुखर्जी रवीन्द्रनाथ, (2014) सामाजिक शोध व सांख्यिकीय विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली
2. शास्त्री राजाराम, (2012) समाज कार्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ
3. हरमैन काइनर, दि युनाइटेड नेशन इकानामिक्स एण्ड सोशल काउसिंल, वर्ल्ड पीस फाउडेशन न्यूयार्क, 1961
4. सेन्ट्रल सोशल वेलफेयर बोर्ड रिपोर्ट ऑफ दि एडवाइजरी कमेटी आन आउटर केयर प्रोग्राफ नई दिल्ली, 1955
5. प्लानिंग कमीशन सोशल वेलफेयर इन इण्डिया, गवर्नमेंट पब्लिकेशन, दिल्ली-6-1955
6. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली 2008-2013
7. मनरेगा-वार्षिक प्रतिवेदन 2008-2015, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली
8. जिला सांख्यिकी पुस्तिका जिला -रीवा, 2012, 2013

ब. पत्रिकाएँ
1. आर्थिक जगत, कलकत्ता प्रकाशन कार्यालय
2. इण्डिया टुडे, दिल्ली
3. आउट लुक, दिल्ली
4. दैनिक भास्कर
5. दैनिक जागरण
6. कुरूक्षेत्र, सतना

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

टिहरी जनपद में आर्थिक विकास, कृषि एवं सम्बद्ध क्रियायें

* विजय कुमार मुयाल
** राजेश भट्ट

सारांश– *समस्त पर्यावरणीय संसाधनों में भूमि, मानव जाति के उत्पादन साधनों में आधारभूत संसाधन है, यह पृथ्वी के दूसरे जैव–भौतिक संसाधनों में आधारभूत भौगोलिक तत्व है। मानव की आवश्यकताएं प्रत्यक्षया अप्रत्यक्ष रूप से भूमि के द्वारा ही पूरी की जाती है। इसलिए भूमि संसाधनों का प्रकारात्मक व गुणात्मक अध्ययन, उनका उपयोग व भविष्य की विकास सम्भावनाओं का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि यह क्षेत्र के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।*

मुख्य शब्द– पर्यावरण, संसाधन, आर्थिक विकास, कृषि, भूमि।

टिहरी जनपद में कृषि भूमि उपयोग मानवीय अर्थव्यवस्था का एक मूलभूत विशेष तत्व है। जीविकोपार्जन की प्रक्रिया में पशुपालन व कृषि कार्य करना वन्य संसाधनों पर दीर्घ काल तक निर्भरता के उपरान्त मनुष्य धीरे-धीरे कृषि विधियों को अपनाने लगा है और प्राचीन समय से ही मनुष्य कृषि से ही जीविकोपार्जन करते आ रहे हैं। इसी से आज मानव के भरण पोषण में कृषि का प्रमुख योगदान है। इसी पर आधारित अन्य व्यवसाय भी मानवीय क्रियाओं से जुड़कर उसकी आधुनिक सभ्यता के प्रतीक बन गये हैं। कृषि के प्रचलन ने मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति की कृषि कार्य के लिए उसके जीवन में स्थायित्व आया, उसे गृह निर्माण करना पड़ा तथा कृषि में पशु शक्ति का सहारा लेना पड़ा, इस प्रकार से धीमी-धीमी गति से सभ्यता का विकास हुआ, मानव ने पशुचारण युग से वर्तमान अन्तरिक्ष युग में प्रवेश किया। कृषि का श्रीगणेश मानव सभ्यता की भांति ही अति प्राचीन काल से प्रतीत होता है। जबकि यह कहना कठिन है कि कृषि का सुव्यवस्थित कार्य कब प्रारम्भ हुआ होगा। किन्तु इतना तो सम्भव है कि आखेट वन क्रियात्मक एवं पशुपालन के उपरान्त ही कृषि कार्य प्रारम्भ हुआ होगा। पहले अव्यवस्थित रूप में तत्पश्चात् धीरे-धीरे सुव्यवस्थित रूप में टिहरी क्षेत्र में भूमि का उपयोग पर्वतीय अन्य भागों का अनुरूप परम्परागत रूप में होता चला आ रहा है। टिहरी जनपद में परिवर्तन मात्र उन स्थानों पर देखने को मिलता है, जहां पर मोटर मार्गो का निर्माण तथा सरकार द्वारा कृषि विभागों की स्थापना की गई है। भौगोलिक दृष्टि से जनपद में यह देखने को मिलता है कि नदी से ऊँचाई की ओर बढ़ने पर निम्न ढाल वाली भूमि को अधिकांश कृषि के उपयोग में लिया गया है। इसके साथ ही साथ 95 प्रतिशत से अधिक गांवों में कृषि भूमि एक स्थान पर न

* प्रवक्ता भूगोल, रा.इ.का. कठूली, पौड़ी गढ़वाल
** भूगोल विभाग हे.न.ब.ग. विश्वविद्यालय श्रीनगर गढवाल

होकर गांवों में अनेक भागों में बिखरी हुई है। एक गांव के अन्तर्गत कृषि भूमि में अनेक बिखरे भागों में प्रत्येक परिवार की हिस्सेदारी है।

टिहरी जनपद के अन्तर्गत ग्रामीण जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना कृषि के महत्व को स्पष्ट करती है। यहां पर कर्मकारों की आधे से अधिक जनसंख्या का प्रतिशत कृषि कार्य में लगा हुआ है। कृषि में कर्मकारों के इस क्षेत्र के इस उच्च औसत प्रतिशत का मुख्य योगदान महिलाओं का है, जो कि पूर्णरूप से कृषि कार्य में ही कार्यरत् रहती हैं। इस क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि प्रारम्भिक जीवन निर्वाह खाद्यान प्रधान कृषि है, जिसका उत्पादकता बहुत कम है। कृषि कार्य में अधिक जनसंख्या का लगे रहने का मुख्य कारण क्षेत्र स्तर पर यह भी है कि वैकल्पिक रोजगार के साधनों की कमी दिखाई देती है। जनपद के अन्तर्गत ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विकास का प्रमुख क्षेत्र कृषि ही है, क्योंकि जनपद में ग्रामीण श्रमशक्ति का प्रमुख भाग 66.67 प्रतिशत कृषि कार्य हेतु कार्यरत् है। वहीं दूसरी ओर कृषि व्यवसाय यहां के जनता का प्रमुख व्यवसाय है। इस भू-भाग के अन्तर्गत बाग-बगीचे उद्यानों में लगी भूमि व कर्मकारों का कार्य भी कृषि के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया जाता है, जबकि क्षेत्र के अन्तर्गत यह देखने को मिलता है कि समतल मैदान भू-भाग की अपेक्षा यह कृषि किस पिछड़ी अवस्था में दिखाई देता है। कृषि कार्य में लगे श्रमिकों को अपने श्रम का एक चौथाई लाभ भी बहुत जटिलता से मिलता है। जिससे क्षेत्रीय जनता का कृषि के प्रति कम रूझान व आकर्षण होता जा रहा है। कृषि उत्पादकता का पूरा-पूरा लाभ न मिलने से भी क्षेत्र पर लोगों के रहने व जीवनयापन के माध्यम से भूमि पर कृषि कार्य किया जा रहा है। जिस कारण से क्षेत्रीय कृषि भूमि में मौसमानुसार फसलों का उत्पादन किया जाता है तथा क्षेत्रीय जनता के आवासीय जीवन-यापन के माध्यम से प्रकृतिगत मुख्य प्रक्रिया बनी हुई है। टिहरी जनपद के प्रत्येक गांव में कृषि क्षेत्र का औसत 55.11 हैक्टेयर भूमि है और प्रति व्यक्ति औसत 0.24 हैक्टेयर भूमि आंकी गयी है। भूमि उपयोग के अन्तर्गत कृषि भूमि का क्षेत्र कम होने का मुख्य कारण धरातल का ढाल तथा उसको जल स्रोतों के सापेक्ष में स्थित औसतन तीव्र ढाल 300 से अधिक वाले भू-भाग पर सीढ़ीदार खेत स्वनिर्मित दिखलाई देती है जो कृषि उत्पादन में गिरावट दर्शाता है तथा उच्च भू-भाग में सिंचाई के साधनों की अपूर्णता अधिकांशतः गांवों में कृषकों को कृषि भूमि वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे इन क्षेत्रों में उत्पादन पूर्णतः मौसम व वर्षा के साथ-साथ घटता रहता है।

टिहरी जनपद के अन्तर्गत कृषि भूमि का उपयोग पर्वतीय अन्य भागों के अनुरूप ही पारम्परिक दृष्टि से होता चला आ रहा है, लेकिन परिवर्तन केवल उन्हीं स्थानों पर देखने को मिलता है, जहां सरकारी योजनाओं के माध्यम से मोटर रोड़ का निर्माण किया जा रहा है तथा कृषि विभागों की स्थापना व नहरों का विकास नियोजन देखने को मिलता है। नदी तल से ऊँचाई की ओर बढ़ने पर निम्न ढाल वाली भूमि को अधिकांशतः कृषि कार्य हेतु उपयोग में मिलाया गया है, जिससे इस कृषि कार्य हेतु लगभग साथ ही साथ 95 प्रतिशत से अधिक गांवों में कृषि भूमि एक स्थान पर न होकर गांवों के भिन्न-भिन्न भागों में बिखरी हुई है। प्रत्येक गांव के अन्तर्गत पृथक-पृथक भागों में बिखरी भूमि पर भी प्रत्येक परिवार व व्यक्ति की हिस्सेदारी होती है। इस हिस्सेदारी के साथ भी कृषि भूमि पर जनसंख्या के बढ़ते दौर में कृषि भूमि के अनेक हिस्से देखने को मिलते हैं। हिस्सेदारी का

विभाजन प्रक्रिया से प्रत्येक परिवार में खेतों की संख्या घटती जा रही है।

फसल प्रतिरूप– जनपद में फसल प्रतिरूप फसल उत्पादन कृषि कार्य में विभिन्न क्रियाकलापों के परिणाम स्वरूप फसलों को पारम्परिक प्रतिरूप उत्पादन एवं प्रकार में व्यापक अन्तर पाया जाता है। वर्तमान परिदृश्य में जनसंख्या वृद्धि के साथ कृषि प्रादेशीकरण को ही नहीं अपितु समस्त संसाधनों से सम्बन्धित कृषि उपयोग को वैज्ञानिक आधार पर प्रदान करता है। जनपद के अध्ययन क्षेत्र पर गांवों में कृषि का परम्परागत प्रतिरूप विद्यमान है। जिससे साथ-साथ कृषि में हुए तकनीकीय सुधार व नये-नये आयाम व जोतों के आकार को लिया जाता है। फसल को मौसमानुसार समय-समय पर अदल-बदल करके बोया जाता है। उनमें सिंचाई व्यवस्था निराई, गुड़ाई की व्यवस्था को सुनिश्चित किया जाता है और फसलीकरण में नये-नये सुझाव व आयाम अपनाये जा रहे हैं।

फसलों के प्रतिरूपों व फसलीकरण के समस्त क्रियाकलापों का परिणाम यह है कि कृषि में विभिन्न क्रियाकलापों के परिणाम स्वरूप की परम्परागत ढंग से उत्पादित व महंगाई और आवश्यकता के साथ-साथ फसल प्रतिरूप में बदलाव करना भी अत्यन्त आवश्यक है, जिससे उत्पादन शक्ति में जलवायु और मौसम के साथ-साथ बढ़ावा भी मिलता रहता है। जनपद में उच्च उत्पादन देने वाली फसलों पर वैज्ञानिक दृष्टि से ध्यान नहीं दिया जा रहा है, जिसका परिणाम जनपद क्षेत्र के फसल उत्पादन में विशेष अन्तर नहीं दिखाई दे रहा है। क्षेत्रीय ग्रामीण कृषक उत्तम उत्पादन न होने से सामान्य फसलों को ही बोते आ रहे हैं। पांच सामान्य फसलों को ही बोते आ रहे हैं। जिन फसलों का कुल बोया गया क्षेत्र लगभग 80 प्रतिशत से अधिक है। जनपद के अन्तर्गत पांच मुख्य फसलों में धान, गेहूं, मण्डुआ, झंगोरा और आलू आते हैं। अन्य फसलों के अन्तर्गत मोटे अनाज दालें, सोयाबीन, रेंश, उड़द, काले भट्टे, मारक्षा, चूवा, मसूर, सब्जियां, टमाटर, लौंकी, राई, मूली, मेथी, धनियां, लहसुन, उगल, फाफर, रामदाना, मिर्च, अन्य मसाले, तम्बाकू, इत्यादि इन जनपद के फसल प्रतिरूप में सम्मिलित हैं, जिससे फसल प्रतिरूप को जनपद स्तर पर बढ़ावा मिल रहा है।

जोतों के आकार- टिहरी जनपद में जोतों का आकार को 6 श्रेणियों में रखा गया है, जिनकी कुल सं0 18079 है तथा कुल क्षेत्रफल 5956.87 वर्ग हैक्ट0 है। निम्न तालिका में टिहरी जनपद के विभिन्न विकासखण्डों में क्रियान्वयन जोतों का आकार दिया गया है। जनपद के विभिन्न विकासखण्डों में क्रियान्वयन जातों के आकार वर्गानुसार क्षेत्रफल गणना वर्ष 2001 के अनुसार के 0.5 हैक्ट0 कम जोतों के आकारों की संख्या विकासखण्ड भिलंगना में 6935 वर्ग हैक्ट0 क्षेत्र है। प्रतापनगर में 2454, जाखणीधार में 5910, थौलधार में 2002, चम्बा में 2708, नरेन्द्रनगर में 3417 देवप्रयाग में 3815 कीर्तिनगर में 4887 हैक्ट0 क्षेत्र है। 0.5 हैक्ट0 से कम क्षेत्रफल से सबसे अधिक प्रतापनगर विकाखण्ड में 53160 है तथा क्षेत्रफल से सबसे कम जौनपुर में 500 हैक्ट0, भिलंगना में 1297, जाखणीधार में 1103, थौलधार में 823, चम्बा में 670, नरेन्द्रनगर में 902, देवप्रयाग में 891, कीर्तिनगर में 1018 क्षेत्रफल 0.5 से कम का है। जनपद में 0.5 से 1.0 हैक्ट0 तक की संख्या प्रतापनगर विकासखण्ड में सबसे कम 1481 है तथा सबसे अधिक जोतों की संख्या विकासखण्ड जाखणीधान में 3444 है। भिलंगना में जोतों की संख्या 2537 है। जौनपुर में जोतों की संख्या 2109, थौलधार में जोतों की संख्या 1564, चम्बा में जोतों

की संख्या 2609, नरेन्द्रनगर में जोतों की संख्या 2985, कीर्तिनगर में जोतों की संख्या 2363 है। जनपद में जोतों के अनुसार क्षेत्रफल अलग-अलग है। सबसे अधिक क्षेत्रफल विकासखण्ड प्रतापनगर में 90037 है तथा सबसे कम विकासखण्ड थौलधार में 1174 क्षेत्रफल है। भिलंगना में 0.5 से 1.0 हैक्ट0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 21698 है। जाखणीधान में 0.5 हैक्ट0 तक जोतों का क्षेत्रफल 2451 है। देवप्रयाग में जोतों का क्षेत्रफल 2096, कीर्तिनगर में 0.5 से 1.0 हैक्ट0 जोतों का क्षेत्रफल 1834 है। विकासखण्ड चम्बा में 1.0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 2104 है। जनपद में 1.0 हैक्ट0 में 2.0 हैक्ट0 तक के जोतों की संख्या सबसे अधिक देवप्रयाग विकासखण्ड में 2911 है तथा सबसे कम 1.0 से 2.0 हैक्ट0 तक प्रतापनगर विकासखण्ड में 832 है। भिलंगना में जोतों की संख्या 1.0 से 2.0 हैक्ट0 1593 है। जाखणीधार में 2.0 हैक्ट0 जोतों की संख्या 2280 है। जौनपुर में जोतों की संख्या 1.0 से 2.0 हैक्ट0 2323 है। कीर्तिनगर में जोतों की संख्या 1.0 से 2.0 हैक्ट0 1194 है। नरेन्द्रनगर में जोतों की संख्या 1.0 से 2.0 हैक्ट0 2290 है। सबसे अधिक विकासखण्ड देवप्रयाग में 4148 क्षेत्रफल है तथा सबसे कम 1.0 से 2.0 हैक्ट0 तक विकासखण्ड प्रतापनगर में 1302 क्षेत्रफल है। भिलंगना में 1.0 से 2.0 हैक्ट0 से कम क्षेत्रफल 2408 है। जाखणीधार में 1.0 से 2.0 हैक्ट0 से कम क्षेत्रफल 3347 है। जौनपुर में 1.0 से 2.0 हैक्ट0 से कम क्षेत्रफल 3238 है। थौलधार में 1.0 से 2.0 हैक्ट0 से कम क्षेत्रफल 2048 है। कीर्तिनगर में 1.0 से 2.0 हैक्ट0 से कम क्षेत्रफल 1616 है। जनपद में 2.0 हैक्ट0 से 4.0 हैक्ट0 तक के जोतों की संख्या सबसे अधिक विकासखण्ड देवप्रयाग में 916 है तथा सबसे कम जोतों की संख्या विकासखण्ड प्रतापनगर में 180 है। भिलंगना विकासखण्ड में 2.0 से 4.0 हैक्ट0 तक के जोतों की संख्या 266 है। जौनपुर में 2.0 से 4.0 हैक्ट0 तक के जोतों की संख्या 902 है। कीर्तिनगर में 2.0 से 4.0 हैक्ट0 तक के जोतों की संख्या 200 है। क्षेत्रफल के अनुसार 2.0 से 4.0 है0 तक सबसे अधिक क्षेत्रफल विकास खण्ड देवप्रयाग में 3128 है तथा सबसे कम 2.0 से 4.0 है0 तक विकासखण्ड प्रतापनगर में 499 क्षेत्रफल है। भिलंगना विकासखण्ड में 4.0 है0 तक क्षेत्रफल 743 है। जाखणीधार विकासखण्ड में 4.0 है0 तक क्षेत्रफल 1814 है। जौनपुर विकासखण्ड में 4.0 है0 तक क्षेत्रफल 3014 है। देवप्रयाग विकासखण्ड में 4.0 है0 तक क्षेत्रफल 3188 है। कीर्तिनगर विकासखण्ड में 4.0 है0 तक क्षेत्रफल 537 है। जनपद में 4.0 से 10.0 है0 तक जोतों की संख्या सबसे अधिक विकासखण्ड देवप्रयाग में 215 है। तथा सबसे कम 4.0 से 10.0 है0 तक जोतों की संख्या कीर्तिनगर विकासखण्ड में 03 है। प्रतापनगर में 10.0 है0 तक जोतों की संख्या 18 है। भिलंगना में 10.0 है0 तक जोतों की संख्या 16 है। जाखणीधार में 10.0 है0 तक जोतों की संख्या 80 है। जौनपुर में 10.0 है0 तक जोतों की संख्या 185 है। थौलधार में 10.0 है0 तक जोतों की संख्या 149 है। चम्बा में 10.0 है0 तक जोतों की संख्या 71 है। जनपद में 10 है0 तक जोतों के क्षेत्रफल सबसे अधिक विकासखण्ड कीर्तिनगर में 18 है प्रतापनगर में 10 है0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 91 है0 है। भिलंगना में 10 है0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 81 है0 है। जौनपुर में 10 है0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 1036 है0 है। थौलधार में 10 है0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 778 है0 है। चम्बा में 10 है0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 328 है0 है। नरेन्द्रनगर में 10 है0 तक के जोतों का क्षेत्रफल 734 है0 है।

जनपद में 10 है0 से अधिक जोतों की संख्या विकासखण्ड चम्बा में 15 है। भिलंगना विकासखण्ड में 10 है0 से अधिक जोतों की संख्या 3 है। जनपद में कुल जोतों की संख्या विकासखण्ड जाखणीधार सबसे अधिक 12122 है तथा सबसे कम कुल जोतों की संख्या विकासखण्ड प्रतापनगर में 6236 है। भिलंगना विकासखण्ड में कुल जोतों की संख्या 10914 है। चम्बा में कुल जोतों की संख्या 8654 है। थौलधार में कुल जोतों की संख्या 6316 है। नरेन्द्रनगर में कुल जोतों की संख्या 9577 है। देवप्रयाग में कुल जोतों की संख्या 10957 है। कीर्तिनगर में कुल जोतों की संख्या 8680 है। जनपद में कुल जोतों का क्षेत्रफल सबसे अधिक विकासखण्ड देवप्रयाग में 11392 है। तथा सबसे कम जोतों का क्षेत्रफल विकासखण्ड प्रतापनगर में 3411 है। भिलंगना में जोतां का क्षेत्रफल 6092, जाखणीधार में 9134, जौनपुर में 6989, कीर्तिनगर में 5323, नरेन्द्रनगर में 8471 एवं चम्बा विकासखण्ड में कुल जोतों का क्षेत्रफल 8755 है।

सिंचाई सुविधायें- जनपद में विषम भौतिक धरातलीय बनावट के कारण सम्पूर्ण भू-भाग पर सिंचाई नहीं की जाती है। अधिकांश सिंचाई नदी घाटियों में की जाती है। शेष भू-भाग उसर खेती की जाती है। जनपद की कृषि भूमि में केवल 18.83 भू-भाग पर ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। टिहरी जनपद में अधिकांश विकासखण्डों में कृषि भूमि नदियों के किनारे नदी के दशाओं पर स्थित है। जहाँ आस-पास के छोटी नदियों से कूले निकाल कर सिंचाई की जाती है। जिन क्षेत्रों की ऊँचाई अधिक है वहाँ पर सिंचाई की सुविधा कम तथा सिंचित क्षेत्र कम पाये जाते हैं।

कृषि के लिए सिंचाई बीज व खाद से भी अधिक महत्वपूर्ण है। बिना सिंचाई से कृषि उत्पादन नहीं किया जा सकता है। साथ ही यदि सिंचाई पर्याप्त मात्रा में होती है। तो दुहरी व तिहरी फसलें की जा सकती है। तथा नवीन भूमि को भी कृषि काम में लाया जा सकता है। और इस प्रकार कृषि उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। सर चार्ल्स त्रिवेलियन के अनुसार जनपद में सिंचाई ही सब कुछ है और पानी, भूमि से भी अधिक महत्वपूर्ण है। "इसके महत्व बताते हुए एक बार राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने एक लेख में लिखा है कि सभी गाँवों में सिंचाई सुविधायें प्रदान करने से अधिक आवश्यक कोई कार्य नहीं हो सकता है क्योंकि सिंचाई ही वह आधार है, जिस पर खेती की प्रगति निर्भर करती है।"

भूमि उपयोग परिवर्तन तथा प्रभावित करने वाले कारक- भूमि उपयोग को प्रभावित करने में कुछ प्राकृतिक व कुछ मानवीय कारक विद्यमान रहते हैं। जिनका प्रभाव कृषि भूमि पर पड़ने से मानव की दैनिक आर्थिक प्रणाली पर स्वाभाविक प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता दिखाई देता है। पर्यावरण का प्रत्येक तत्व जो जीव एवं वनस्पति जगत के भूमि उपयोग तथा कृषि कार्य में बाधक बनाता है, वह प्राकृतिक कारक कहलाता है। तथा मानव बुद्धि के द्वारा भूमि पर स्वेच्छा से किये जाने वाले कार्यो से जो बाधायें उत्पन्न होती हैं। वह मानवीय कारक के रूप में देखने को मिलती है। इस प्रकार टिहरी जनपद में भी प्राकृतिक व मानवीय कारकों की भरमार दिखायी देती आ रही है, जिससे भूमि उपयोग की प्रक्रिया में बाधायें आती रहती है। उन्हीं बाधाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि कार्य में भी आता रहता है। भूमि उपयोग में बाधा सर्वप्रथम यह दिखाई देती है कि भूमि के सम्बन्ध में निष्पक्ष न्याय का नहीं होना, व भूमि में मानवीय बाधा मुख्य रूप से दिखाई देती है और दूसरी प्राकृतिक तौर पर यह प्रमुख बाधा है कि भूमि का तीव्र ढाल पर होना जिससे पूरे वर्ष भर

की गई मेहनत का तेज बारिश होने से ऊपरी सतह का खाली हो जाना, अर्थात् मिट्टी का बह जाना, जो कि प्राकृतिक कारक सम्मिलित माना जाता है।

भूमि उपयोग तथा कृषि भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों को दर्शाया गया है। जिनमें मुख्य रूप से प्राकृतिक व मानवीय कारक विद्यमान हैं। जिनमें सर्वप्रथम कारकों के अन्तर्गत, भूमि की स्थलीय माप व ऊँचाई, ढाल, ढाल की दिशा, सूर्य के प्रकाश का कोण व इत्यादि सामान्य बातें देखने को मिलती है। मानव भूमि उपयोग को करने से पहले ही इस भू-भाग पर ही नहीं, बल्कि भूमि के प्रत्येक हिस्से में ये सामान्य भूमिगत प्राकृतिक समस्याएं सर्वप्रथम दिखायी देती हैं, जिससे भूमि को उपयोग में लाने से पहले ही उपयोग में लाने वाले व्यक्तियों में निराशा आ जाती है। तथा भूमि की तैसी अवस्था में पड़ी रहती है और उपयोग में लाने से वंचित रह जाती है। इसी प्रकार से समस्याएं एक के बाद दूसरी, तीसरी आती रहती है। समस्याओं का समाधान एक सीमा से आगे बढ़ जाता है तो उसका समाधान स्वतः ही एक समस्या बन जाती है। इसी के साथ-साथ भौगोलिक वातावरण में अनेकानेक भूमिगत समस्याएं आती रहती है, जिससे भूमि उपयोग में अनेक अवरोध उत्पन्न होते रहते हैं।

(अ) **प्राकृतिक कारक**– टिहरी जनपद ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्र पर प्राकृतिक कारक भूमि की बनाबट पर भूमि उपयोग को प्रभावित करने में बाधक बने रहते हैं। इसमें सर्वप्रथम भूमि की बनावट पर भूमि उपयोग व कृषि कार्य की उत्पादन शक्ति निर्भर करती है कि भूमि की बनावट में यदि विषमता दिखाई देती है। उबड़-खाबड़ खेतों का धरातल दिखायी देता है तो उसमें कृषि कार्य व साग-सब्जी, उत्पादन व भवन निर्माण, मार्गो का निर्माण व सार्वजनिक खेल के मैदान व भवनों का निर्माण आसानी से नहीं हो पाता है। ये सर्वप्रथम समस्या दिखाई पड़ती है।

इस जनपद में भी धरातल की बनावट में विषमता देखने को मिलती है। जिससे समस्या एक के आगे दूसरी दिखायी देती है। किन्हीं स्थानों पर अधिक ऊँचाई व किन्हीं स्थानों पर छोटे उबड़-खाबड़ खेत व कहीं पथरीली जमीन, कहीं उखड़ी भूमि में अनुपजाउपन का होना पाया जाता है। जिससे भूमि को भली-भाँति उपयोग में नहीं लाया जाता है। ये भूमिगत समस्याएं प्रकृतिदत्त भौगोलिक परिस्थितियों के अन्तर्गत सम्मिलित मानी जाती है। इसमें सर्वप्रथम भूमि स्थलीय कारक विद्यमान है। जिससे भूमि उपयोग व कृषि भूमि उपयोग में बाधाएं आती रहती है।

(1) **स्थलीय कारक**– प्राकृतिक कारकों के अन्तर्गत सम्मिलित भूमि की बनावट व स्थलीय मानदेय के रूप में समस्याएं उभर कर आती है, जिनमें भूमि की ऊँचाई, ढाल व ढाल की दिशा तथा सूर्य के प्रकाश का कोणीय वेग का तीव्र प्रभाव स्थलीय कारकों में सम्मिलित माना जाता है, जिससे भूमि उपयोग व कृषि भूमि उपयोग में बाधायें आती रहती है, जिससे मानव जीवन पर आर्थिक प्रभाव दिखाई पड़ता है जो आर्थिक प्रभाव समाज की आधारभूत जड़ मानी जाती है। जब भूमि का विकास होगा तो उत्पादन व मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति दिखायी देगी, व सामाजिक भौगोलिक चेतना का विकास देखने को मिलेगा।

(2) **ऊँचाई**– जनपद के सभी एक समान ऊँचाई नहीं दिखाई देती है। व धरातल भी एक समान सपाट, समतल नहीं है। कहीं-कहीं उबड़-खाबड़ भाग कहीं-कहीं अधिक

पर्वतीय व कहीं समतल सीढ़ीदार खेती भी दिखायी देती है। जिससे भूमि पर अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में इस प्रकार की प्राकृतिक स्थलीय समस्या उभर कर देखने को मिलती है। जिसका सीधा सा प्रभाव कृषि भूमि उपयोग व उसकी उत्पादन क्षमता पर दिखाई देता है, जिससे उत्पादन में कमी व निराशाजनक परिणाम दिखाई पड़ते हैं। इस भू-भाग के अन्तर्गत ऊँचाई वाले स्थान ही अधिक दिखलाई पड़ते हैं। क्षेत्र पर अधिक ऊँचाई होने से आने-जाने में बहुत समस्या व कठिनाई दिखाई देती है। जिसका सीधा सा प्रभाव कृषक की आर्थिक स्थिति पर दिखाई देता है। फसलों की समय-समय पर निराई-गुड़ाई, खाद, बीज, जुताई आदि कार्य से वंचित रहना पड़ता है। ऊँचाई वाले क्षेत्रों पर आलू, राजमा, उगल, फाफर, हल्की मात्रा में धान, गेहूँ, दालों को उत्पादन के रूप में बोया जाता है। क्षेत्र पर अधिक ऊँचाई वाले भाग पर वर्ष के अधिकांश समय पर वर्षा होती रहती है। जिसमें मिट्टी में अधिक नमी होने से फसलों का उत्तम उत्पादन नहीं हो पाता है। कभी-कभी तो फसलों का उगना ही अत्यधिक जटिल प्रक्रिया बन जाती है। जिस कारण क्षेत्र के अन्तर्गत अधिक ऊँचाई वाले स्थान भी स्थलीय प्राकृतिक कारक के रूप में सम्मिलित माने जाते हैं। इस प्रकार के फसलों को भारी नुकसान व कृषकों को क्षति पहुँचती है। जिसका सीधा सा भौगोलिक प्रभाव समाज की अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष विधि से देखने को मिलता है। ढाल की मात्रा जनपद की भूमि में ढाल की मात्रा अधिक दिखाई देती है। जिससे भूमि में उत्पादन की क्षमता कम होती है। उत्पादन शक्ति का कम होना फसलों के वार्षिक बजट पर भारी मात्रा में भौगोलिक वातावरण के साथ-साथ भारी मात्रा में कमी का आना माना जाता है। जिस कारण इस जनपद में भूमि की ऊपरी सतह अधिक वर्षा होने से साफ छन जैसी जाती है। जिसमें मिट्टी के मोटे कण व पत्थर ही दिखाई देते हैं। यह वर्षा तीव्रता भी इस अध्ययन क्षेत्र की भूमि के उपयोग व कृषि विकास के लिए एक प्राकृतिक स्थलीय कारक के रूप में सम्मिलित है। ढाल की दिशा जनपद के अन्तर्गत ढाल की दिशा नदी घाटियों के बहाव की ओर देखने को मिलती है। जिस दिशा में पर्वतों का कोणीय भाग व हवाओं का तीव्र चलना तथा मुहानों के अधिक लक्षण दिखाई देते हैं। ढाल की दिशा उसी ओर अधिक दिखाई देती है। लेकिन ढाल लगभग उसी ओर को भूमि में बने रहते हैं। जैसे वर्षा को वेग दिखाई दें कभी-कभी तो पश्चिम की ओर से हवायें चलती हैं। उसका वेग चक्रवात, प्रतिचक्रवात के रूप में दिखाई देता है। दिशा परिवर्तन बहुत अधिक प्राकृतिक प्रकोप से ही होता है। जनपद के अध्ययन क्षेत्र में भूमि के उपयोग व कृषि के विकास में ढाल की दिशा भी प्राकृतिक स्थलीय कारक में सम्मिलित मानी जाती है। जिससे क्षेत्र पर प्राकृतिक कारकों की बहुतायता दिखाई देती है।

सूर्य के प्रकाश का कोण– जनपद की भूमि उपयोग कृषि भूमि विकास में सूर्य के प्रकाश का तेज कोणीय प्रभाव की प्राकृतिक स्थलीय कारक के रूप में सम्मिलित माना जाता है। सूर्य का प्रकाश का तेज, व हल्का पड़ना भी प्रकृतिदत्त कारक में ही सम्मिलित है। भूमि की बनावट के आधार पर ही सूर्योन्मुखी ढाल वाले पर्वतों पर खेती के उपयोग व विकास में जो भी बहुतायत दिखाई देती है। उससे फसलों के उत्पादन पर भारी प्रभाव दिखाई देता है। उसका सामान्यतः प्रत्यक्ष प्रभाव कृषक व कृषकों की आजीविका पर दिखाई पड़ता है, जिससे आर्थिक व्यवस्था का डगमगाई दिखाई देना होता है जिस भू-भाग समयानुसार सूर्य का प्रकाश धीरे-धीरे दिखाई देता है वहाँ नमी की मात्रा होती है। तो फसल

अच्छी उत्पादकता वर्षभर में देती है। यह सूर्य के प्रकाश के कोणीय भाग भी प्राकृतिक स्थलीय कारकों में सम्मिलित है।

जलवायु सम्बन्धी कारक– जनपद के अन्तर्गत भौगोलिक वातावरण के साथ-साथ जलवायु सम्बन्धी तत्वों की भी भूमि उपयोग व कृषि विकास में बहुतायत में दिखाई देती है। मौसमानुसार जलवायु के बदलने पर भी भूमि उपयोग में लाने हेतु कई प्रकार के समस्याग्रस्त कारक उभर कर आते हैं, जिनमें सर्व प्रथम वर्षा, सूर्य का तेज प्रकाश तापक्रम, ओंस, आद्रता, पाला सम्मिलित होते हैं।

(1) **वर्षा**– जनपद के अन्तर्गत भूमि का उपयोग में लाने हेतु कृषि के विकास में प्रभाव डालने वाले कारकों में वर्षा भी एक मुख्य कारक है जो कि प्राकृतिक दैवीय प्रतिदत्त कारक में सम्मिलित है। यदि अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत वर्ष भर ऊँचाई वाले स्थानों पर वर्षा लगी रहती है तो उसका भी उत्तम प्रभाव नहीं दिखाई देता है। अधिक वर्षा से फसलों का खराब हो जाना, मिट्टी में उर्वरा शक्ति का नष्ट हो जाना कृषि विकास के लिए हानिकारक सिद्ध माना जाता है। यदि वर्षा कभी-कभी मौसम के अनुसार फसलों को मिलता रहे तो लाभकारी सिद्ध होती है। इसलिए भूमि उपयोग और भूमि उपयोग के प्रतिरूप हेतु प्राकृतिक स्थलीय कारक एक सिक्के के दो पहलू के रूप में आते हैं। वर्षा भी अपने आप में कभी-कभी लाभदायक व कभी-कभी हानिकारक सिद्ध होती है।

(2) **जैवीय कारक**– जैवीय कारक भी पिण्डर बेसिन स्तर पर मुख्य रूप से भौगोलिक वातावरण व भूमि के उपयोग कार्यो हेतु उत्पादन में अपना मुख्य स्थान रखते हैं, जिससे जैवीय कारकों के अन्तर्गत जीवधारियों के माध्यम से कृषि भूमि पर प्राकृतिक प्रकोप देखने को मिलता है। जिस प्रकोप का मुख्य प्रभाव क्षेत्रीय कृषि उत्पादकता पर पड़ता है। उदाहरणार्थ, अचानक किसी के द्वारा अग्नि का लग जाना तथा अचानक भूमि में कृषि फसलों पर चूहों, कीड़ों, मकोड़ों का लग जाना तथा पशुओं का आ जाना, ये समस्त प्रक्रियाएं जैवीय कारक के अन्तर्गत सम्मिलित मानी जाती है जो जैवीय कारक प्राकृतिक कारकों में सम्मिलित माना गया है और इसका कभी-कभी समयानुसार भौगोलिक वातावरण में लाभकारी प्रभाव भी देखने को मिलता है।

(ब) **मानवीय कारक**– जनपदीय भूमि उपयोग व भूमि प्रयोग में कृषि के विकास के प्रभाव के साथ-साथ एक और प्राकृतिक कारक दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर मानवीय कारक भी दिखाई देते हैं। जहां प्रकृति अपने संसाधनों हेतु भूमि उपयोग के सन्तुष्ट है, वहां भूमि में पूर्णतः संसाधन नहीं दिखाई देते हैं। इसी प्रकार के मानवीय संसाधन कभी-कभी भौगोलिक परिस्थितियों के साथ-साथ लाभदायक व हानिकारक भी दिखाई देते हैं। टिहरी जनपद के उपरी भाग में भूमि में उत्पादन क्षमता कम दिखाई देती है। क्योंकि इस भाग में वर्षभर नमी व बर्फ जमी रहती है। नमी वर्षभर रहने से फसलों में उत्पादन क्षमता नहीं बनी रहती है। उत्पादन मात्रा बनने के लिए धूप, वर्षा का समान होना अत्यन्त आवश्यक है जिस कारण से फसल उत्पादन हेतु क्षमता का बने रहना लाभदायक माना जाता है जो फसलों के उत्पादन में बढ़ावा देता है।

बंजर तथा वन पर्यावरणीय सम्बन्ध– टिहरी जनपद पर्वतीय क्षेत्र होने के साथ-साथ बंजर भूमि व कृषि योग्य बंजर भूमि में वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि में कुछ प्राकृतिक व कुछ मानवीय कारकों का प्रतिफल है जो कि कृषि के योग्य भूमि होने के

साथ-साथ बंजर भूमि को बढ़ावा मिल रहा है। पर्वतीय पहाड़ी भू-भाग जहां पर सीमित कृषि क्षेत्र है, उस भूमि में 4.60 प्रतिशत भाग का बंजर पाया जाना इस बात का द्योतक है कि क्षेत्र में कृषि कार्य तेजी से घटता जा रहा है। वास्तविक रूप से देखने पर पाया गया है कि ग्रामीण कृषि भूमि में लगे खेतों में अधिक बिखराव मिलता है। आवासों व खेतों के मध्य अधिक दूरी होने के कारण खेतों में खाद, हल, बैल ले जाना व उत्पादन को घर तक लाने में बहुत परिश्रम व कठिनाई होती है। इस प्रकार से दूरस्थ खेतों की फसल को जंगली जानवर नष्ट कर देते हैं। वर्तमान समय में नौकरी, व्यवसाय व धन्धे, पैसे में लगे लोगों की अच्छी कमाई से लोगों में कृषि करने से छुटकारा दे दिया है।

अतः इन्हीं तमाम कारकों से कृषि योग्य बंजर भूमि के प्रतिशत में वृद्धि हुई है व होती रहेगी। जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे लोगों में कृषि कार्य को न करने की हड़कम्प नहीं है और कृषि कार्य कम होते हुए जा रहा है। कुछ प्राकृतिक व कुछ मानवीय कारक भी इस प्रकार कृषि कार्य के प्रति उदासीनता दिखा रहे हैं, जिसमें कृषि भूमि की बढ़त जोने से वह घटती हुई जा रही है अर्थात् कृषि कार्य में उदासीनता देखी जा रही है।

टिहरी जनपद में कृषि भूमि को पिछड़ने व बंजर होने में कई कारक विद्यमान है जो कि कृषि भूमि उपयोग को बंजर बनाने में सम्मिलित होते हैं, जिनसे कि कृषि कार्य में पिछड़ापन आया है। सर्वप्रथम जैसे-कृषक को उत्पादन लेने से पूर्व भूमि सम्बन्धी निर्णय लेना पड़ता है, तो वह निर्णय कार्य सीधे अवबोध से शुरु होता है, पूर्व फसल का निर्णय सीधे सम्भावित मूल्यों के आधार पर निश्चित करना पड़ता है कि कहाँ किस फसल का उत्पादन किया जाए अर्थत् भूमि का श्रेष्ठतम रूप से कौन सी फसल उगाने में उपयोग किया जा सकता है। इसका निर्णय करना पड़ता है। विशेषकर मौसम की अनिश्चितता तो हमेशा बनी रहती है। अतः यह सब निर्णय भौतिक युग एवं निर्णयकर्ता की सक्रियता अनुभव, आयु, शैक्षिणक स्तर, आर्थिक व सामाजिक स्तर, पूर्व के लिए गये निर्णयों का प्रभाव, नये स्थान के बारे में जानकारी जोखिम उठाने का साहस उद्देश्य आदि कई बातों पर निर्भर करता है। कृषक का निर्णय भौतिक एवं आर्थिक दोनों ही दशाओं पर निर्भर करता है कि यदि ऊँचाई वाले क्षेत्रों में राजमा, आलू का उत्पादन अधिक हुआ है तो निचले क्षेत्रों में झंगोरा व धान का उत्पादन अच्छा होगा, जिससे कि वस्तु अनाज में क्षेत्र के अन्दर ही आदान-प्रदान किया जाता है। कृषक इस विषय पर आत्म निर्भर रहता है कि यहाँ पर कैसी भूमि है और कैसा अनाज सर्वाधिक उत्पादित होगा। भूमि उपयोग का स्परूप मानव सभ्यता के विकास और मानव की आवश्यकतानुसार परिमार्जित होता रहता है। यह परिवर्तन ही कृषि विकास व कृषि की अवस्थाओं के रूप में लक्षित हुआ है।

पशुपालन, उद्यानिकी एवं कृषि वानिकी– पशुपालन कृषि के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण कारक व अनिवार्य प्रक्रिया है जो कि कृषि में एक अनिवार्य अंग के रूप में देखने को मिलती है। स्थानीय पशुपालन व कृषि एक दूसरे के पूरक आवश्यकता है जहाँ पशुपालन किया जाता है, उन स्थानों में कृषि आराम से की जाती है। जहाँ कृषि किया जाता है। वहाँ पशुपालन आसानी से किया जाता है। जनपद में भारवाहक पशु रखने तथा उनके उपयोग पर सड़क यातायात सुविधा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। घाटी में लगभग घोड़े-खच्चर, पालन भी बराबर किया जाता है, जिससे इस घाटी के ऊपरी

गाँवों में पैदल सामान ढोने, लाने ले जाने की समस्या को आसानी से सुलझाया जा सकता है। कोई भी स्थान यदि विकसित अवस्था में कृषि प्रधान है तो उसका मूल पशु ही होंगे क्योंकि एक दूसरे के अर्थ में लाभकारी महत्व देखने को मिलता है। विकसित व विकासशील राष्ट्रों में यदि कोई राष्ट्र कृषि प्रधान है तो उस की कृषि का आधार प्रमुख रूप से पशु ही होगें। कृषि व पशुपालन दोनों विकासशील राष्टों, राज्यों, मण्डलों व जनपदों के स्तर से क्षेत्र स्तर पर देखने को मिलती है। मानव द्वारा सभ्यता के विकास की शुरुआत प्राकृतिक वनस्पति अर्थात् वनों पर विजय से पूर्व पशुओं को पालतू बनाकर पशुपालन का कार्य प्रारम्भ किया है। बूंज महोदय का कहना है कि "विश्व के सभी कृषि प्रधान क्षेत्रों में मानव ने पहले पशुओं को पालतू बनाना ही प्रारम्भ किया।" आखेट कालीन एकत्रीकरण के बाद पशुपालन ही प्राचीन काल की मानव सभ्यता का विकास व प्रमुख व्यवसाय का केन्द्र रहा है। प्राचीनतम काल से पशुपालन प्रक्रिया के प्रारम्भ से ही पशु योगदान देखने को मिलता है। कुछ पशुओं का खेती के लिए तथा कुछ पशुओं से मांस उपयोग भी किया जाता है। इस जनपद स्तर भी अन्य स्थानों के आधार पर ही पशु व कृषि का समस्त सम्बन्ध रखा जाता है। पशुपालन वह प्रक्रिया है जो कि एक व्यावसायिक मिश्रित कृषि के रूप में क्षेत्रीय कृषकों में देखने को मिलती है। वह अपनी कृषि भूमि के अनुसार भूमिगत उपज को बढ़ाने के लिए कृषि में पशुओं का पालन किया जाता है तथा क्षेत्रीय पशुपालन को बढ़ावा मिलता रहता है।

क्षेत्र के ऊपरी भाग में पशुपालन की पद्धति अन्य पर्वतीय क्षेत्रों के आधार पर ही देखने को जैसे-जैसे मिलती है। उसी प्रकार इस जनपद स्तर पर भी देखने को मिलती है। कृषि के साथ-साथ सदैव पशुओं का सामंजस्य बना रहता है। लेकिन आय व सामाजिक पहलुओं के आभास से यह देखने को मिलता है कि इस जनपद स्तर पर पशुपालन कार्य निरर्थक है। क्योंकि यहाँ पर पशुपालन अधिक संख्या के अन्तर्गत किया जाता है और उन पशुओं की संख्या में अधिक पशु केवल नाममात्र के पालने में ही सम्मिलित हैं, जिससे कि क्षेत्र में पशुपालन सम्बन्धी एक मात्र भरारी-सैंण, पशु प्रजनन केन्द्र ही लघु उद्योगों में सम्मिलित है और अन्य स्थानीय पशुओं के पालन केन्द्र में कहीं पर भी कोई औद्योगिक दर्जा नहीं खोला गया है, जिससे पशुपालन व्यवसाय मिश्रित कृषि व कृषको के निजी व्यवसाय में ही सम्मिलित हैं।

पशुपालन को मिश्रित व्यवसाय में सम्मिलित करके ही आगे बढ़ाया जा सकता है। क्षेत्र में अध्ययन विषय के अन्तर्गत पशु और कृषि भी एक मुख्य तत्व है, क्षेत्र के लगभग सभी लोग जो कि कृषि कार्य में लगे हुए हैं। वह बराबर पशुपालन भी समान रूप से करते है। क्योंकि क्षेत्रीय कृषकों की कृषि का जुआ पशु सम्पदा को माना गया है। जनपद के लगभग सभी ढ़ालों पर व्यावसायिक तौर पर उखड़ी व रोपण कृषि कार्य पृथक-पृथक विधि से किया जाता है, इसके साथ-साथ पशुपालन, भेड़, बकरी, गाय, भैंस भी पर्याप्त मात्रा में पाली जाती है। कृषि जोत में मुख्य सहायक बैलों का पालन किया जाता है। घाटी में जातिगत आधार पर पशुपालन किया जाता है। पशुओं को बुग्यालों में मौसमानुसार चराने के लिए ले जाया जाता है। गूर्जर लोगर व सभी पशुचारक जातियाँ ग्रीष्म व वर्षा काल में इन स्थानों अर्थात् (आवासीय छप्परों) में भैंस, बैल, बकरी, भेड़, घोड़े-खच्चर का पालन करते हैं।

उद्यानिकी एवं कृषि वानिकी– भौगोलिक दशाओं के मध्य जलवायुगत विशेषताओं व वातावरणीय सम्बन्ध के साथ उद्यानों का वितरण व फलोत्पादन देखने को मिलता है। पर्वतीय भू-भाग पर सभी प्रकार के वितरण मुख्य रूप से भोगोलिक दशाओं पर निर्भर व प्रभावित होते हैं। भौगोलिक अनुकूल दशाओं के आधार पर जनपद का प्रत्येक भाग उद्यानिकी हेतु सुलभ समझा गया है। जबकि उद्यानिकी वितरण से स्पष्ट होता है कि जनपद का प्रत्येक भाग व प्रत्येक गाँव के कुछ न कुछ भाग में फलोदार पेड़ों का क्षेत्र उपलब्ध है। सभी गाँवों में फलों का उत्पादन किया जाता है। उद्यानिकी के रूप से विकसित किया जाय, तो क्षेत्र अवश्य विकसित श्रेणी के उद्यान में सम्मिलित होगा उद्यान निर्मित क्षेत्र कहलायेगा। उद्यान व्यवस्था के लिए कुछ प्राकृतिक कारकों की कुछ भौगोलिक दशाओं की स्थिति भीषण रूप से प्रभावित देखने को मिलती है। जिससे क्षेत्र पर उद्यान काफी मात्रा में विकसित हो, तथा समीपवर्ती क्षेत्रों पर भी उनका प्रभाव उत्तम दशा में प्रभावित हो उद्यानिकी कृषि की एक प्रमुख सहभागी क्रिया है। जबकि कृषि में कार्यरत ग्रामीण कृषक भी उद्यानिकी में कार्यरत अवस्था में रहता है।

यह भाग पर्वतीय क्षेत्र की भौगोलिक विषमताओं के अन्तर्गत दुर्गम मार्ग नियोजकों की अकार्य कुशलता यातायात व संचार के साधनों की कमी उचित बाजार विश्वसनीय संगठनों का अभाव और विपर्णन की भौतिक सुविधाओं के अभाव से फलोत्पादन की योजनाओं का पूर्ण उपयोग इस क्षेत्र में नहीं हो पाया है। इस समस्या को मध्यनजर रखते हुए उत्तरांचल विकास विभाग ने सन् 1978 में एक कार्यक्रम बनाया, जिसमें बागवानी को व्यापक बनाने के लिए उपयुक्त सघन क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर उद्यानिकी क्षेत्र को लगाने के लिए कृषकों को प्रोत्साहित करने हेतु आसान किस्तों में दीर्घ कालीन ऋण का प्रस्ताव दिया था। साथ ही आवश्यक तकनीकीय सहायता उपकरण बीज व्यवस्था करना तथा रख-रखाव आदि में सहायता देने की बात कही गई हैं लेकिन इस प्रकार की सुव्यवस्था के बावजूद दो दशक व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उक्त विकास कार्यक्रम सरकारी फाइलों में दबा पड़ा है। और जिसका प्रचार-प्रसार व विकासीय आंकड़े सरकार द्वारा बार-बार अपने कार्यों को ना के बराबरा रूप में प्रचारित किये जाते हैं। वर्तमान समय में भी सरकारी आंकड़े जो प्रचारित किये जाते हैं। वह निराधार निरर्थक एवं इस क्षेत्र के किसानों के साथ सरासर धोखा है। तथा राष्ट्र के प्रति झूठ है। क्योंकि सरकारी पंजीकाओं में दर्शाये गये उद्यानों का विवरण फलोत्पादन की दशा तथा वास्तविक दृष्टि से किये गये मूल्यांकन में बहुत अन्तर देखने को मिलता आ रहा है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव सामने क्षेत्र पर प्रदर्शित दिखायी देता है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. सांख्यकीय पत्रिका, 2001, 2017
2. राणा, के0एस0 1987- गढ़वाल हिमालय में प्रवासीय पशुचारण एवं पर्यावरण नवराह नई चेतना, पौड़ी गढ़वाल, पृ0 सं0 2-3
3. रिखाड़ी, एच0 नेगी 1992 वनस्पति पशु निर्भरता पहाड़ वर्ष पाठक परिक्रमा नैनीताल, पृ0 120,125
4. चड्डा, वीर सिंह 1989 पहाड़ी खेती के आधार नैनीताल, पृष्ठ सं0 59
5. बिष्ट, डॉ0एन0 1980 उत्तराखण्ड हिमालय की अर्थव्यवस्था भागीरथी प्रकाशन, टिहरी, पृ0

सं0 47

6. तिवारी, आर0सी0 1998 कृषि भूगोल प्रकाशक प्रयाग पुस्तक भवन 20 ए0 यूनिवर्सिटी रोड़ इलाहाबाद कम्प्यूटर कम्पोनिम मीडिया प्रिंटर्स, इलाहाबाद, पृ0 सं0 225
7. चितलंगी, वी0एम0 1991 ग्रामीण विकास के सिद्धान्त पक्ष, पृरूठ सं0 27
8. नेगी, पी0एस0 1991 पारिस्थितिकी विकास एवं पर्यावरण भूगोल रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ, पृ0 सं0 104
9. सेमवाल, जी0एन0 1991 उत्तराखण्ड में पर्यावरण हिमालय निवासी एवं निसर्ग वर्ष 15 अंक 6, पृ0 सं0 19, 20
10. रघुवंशी, अरुण 1949 पर्यावरण तथा प्रदूषण मध्य हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृ0 सं0 64
11. नेगी, बी0एस0 1994 कृषि भूगोल, प्रकाशक कॉलेज रोड़ मेरठ, पृ0 सं0 365
12. पाठक, जी0के0 1989 भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का योगदान लेरत योजना पाक्षिक पृं0 सं0 25

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

गढवाल में मंदिर व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययनः कमलेश्वर मंदिर के विशेष सन्दर्भ में

* सत्येन्द्र धर्म्वाण
** शन्तन सिंह नेगी

सारांश– *गढ़वाल हिमालय में स्थापित देव मंदिर पुरातन काल से यहाँ के जनमानस की धार्मिक आस्था के प्रतिबिम्ब रहे है। इस जनभावना को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ के अनेक शासकों द्वारा विभिन्न देवों एवं देवालयों को सदैव सपूज्य रखने और दैनन्दिन व्यवस्था बनाये रखने हेतु भूदान प्रदान किये गए। इन भूमिदानों से प्राप्त आय से जहाँ एक ओर मंदिर व्यवस्था सुसंचालित होती थी वही उस भूमि पर कार्य करने वाले कृषक दैनन्दिन मंदिर व्यवस्था में यथोचित सेवाभाव से प्रदत उतरदायित्व का निर्वाहन भी करते थे, जो उनके जीवकोपार्जन का आधार था। उस कार्य में समाज के लगभग सभी वर्गो को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता था। इन सेवाकारों में पुजारी प्रमुख सेवाकार होता था इसके अतिरिक्त फुलारी, पनेरी, तेली, नृतक–नर्तकी, गायक, वादक, कुशल–अकुशल श्रमिक, भित्ती–चित्रकार आदि प्रमुख थे। इन सेवाकारो को सेवा के बदले मंदिर को प्राप्त होने वाली आय का कुछ अंश जीवकोपार्जन हेतु दिया जाता था जिसकी जानकारी हमें छठवीं–सातवीं शताब्दी से परवर्ती काल में मंदिरों को दिये गए विभिन्न ताम्रपत्रों, अभिलेखों, सनदों से प्राप्त होती है। इसी परिप्रेक्ष्य में कमलेश्वर मंदिर व्यवस्था को विशिष्ट रूप से प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषित करने का शोधार्थी द्वारा प्रयास किया जायेगा*

मुख्य शब्द– दस्तूर, बारी, लोटपरिक्रमा, खचरोड़, सत्र, सदावर्त ।

भारतीय जीवन दर्शन सदैव से ही आध्यात्म से प्रेरित रहा है तथा इसी आध्यात्मिक प्रेरणा ने ईश्वर की मूर्त कल्पना और प्रतिस्थापना का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे विभिन्न उपासना पद्धतियों का विकास हुआ। वैदिक आर्यो की उपासना के प्रमुख अंग उनके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले वैदिक यज्ञ थे। यज्ञ अनुष्ठानों में मंदिरों के लिए कोई स्थान न था।[1] लेकिन कालान्तर में ब्रह्म के निर्गुण, निराकार व अनिवर्चनीय स्वरूप के अलावा सगुण व साकार स्वरूप को स्वीकार किया गया, जिससे ब्रह्म के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए भक्ति परम्परा का उद्भव हुआ एवं ब्रह्मोपासना देवी-देवताओं के मूर्त रूप में प्रकट हुई। कालान्तर में प्रतिमा स्थापना हेतु पवित्र गृहों का निर्माण आरम्भ हुआ तदन्तर पवित्र प्रतीकों की स्थापना के निमित यही उपासना गृह हिन्दू मंदिरों के रूप में विकसित हुऐ। प्राचीन गढ़वाल हिमालय का सामाजिक स्वरूप जनजातीय था। जिस कारण यहाँ के

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, हे0 न0 ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढवाल।
** प्रोफेसर, इतिहास विभाग, हे0 न0 ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढवाल।

लोग प्रकृति उपासना के साधक रहे है, जो नाग, यक्ष, घण्टाकर्ण, भूमियाल आदि अनेक स्थानीय देवी-देवताओं को विश्वास पूर्वक पूजते आ रहे हैं। गढ़वाल में मंदिर का प्राचीनतम साक्ष्य पलेठी (टिहरी गढ़वाल) का सूर्य मंदिर है।[2] मंदिर स्थल पर उपलब्ध शिलालेखों की लिपि के आधार पर मंदिर का निर्माण सातवीं शती ई0 निश्चित किया जा सकता है।[3] प्राचीनकाल से ही ऋषि मुनि, साधु-संत, तीर्थयात्री यहाँ की यात्रा करते आ रहे है, जिसका प्राचीनतम प्रमाण देवप्रयाग के अभिलेख से मिलता है।[4] पांडवों से लेकर आदि शंकराचार्य तक और उसके उपरान्त भी तीर्थयात्रियों का प्रभाव यहाँ अविछिन्न रहा है।[5] उत्तराखण्ड के दानपत्रों में वर्णित कतिपय नाम ब्रहमा, विष्णु, शिव , शक्ति, स्कंद, इन्द्र, वरूण, यक्ष, असुर, नागदेवता व स्थानीय देवताओं के नाम पर आधारित हैं। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि यहाँ के लोग बहुदेववादी थे और किसी संप्रदाय के प्रति रूढिग्रस्त नहीं थे। यहाँ सभी सम्प्रदायों को मानने वाले लोग हैं जिस कारण यहाँ सभी सम्प्रदायों के मंदिर हमें प्राप्त होते हैं, जिसमें शैव और वैष्णव धर्म प्रमुख है और शैव मतावलम्बियों की बहुलता है। यही कारण है कि इस क्षेत्र के हर ग्राम में छोटा-बड़ा शिव मंदिर मिल जाता है। यहाँ यह कहावत प्रचलित है, 'गढ़वाल में जितने कंकड़ उतने शंकर' इसकी प्रमाणिकता इस उक्ति से हो जाती है, "धिक भस्मरहित भालं, धिक ग्रामं शिववालयम्" (अर्थात बिना भस्म के ललाट एवं शिवालय के बिना ग्राम धिक्कार है)।

इस प्रकार सैकड़ो शैव मंदिर इस क्षेत्र में स्थित है जिसमें प्रमुख रूप से पंचकेदार, कमलेश्वर, काशीविश्वनाथ, कालेश्वर, शैलेश्वर, वीरणेश्वर, गोपेश्वर, कोटेश्वर, ओंकारेश्वर आदि का विशेष महत्व है इसी क्रम में प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं में से एक प्रमुख मंदिर कमलेश्वर की मंदिर व्यवस्था का विश्लेषण किया जा रहा है।

श्रीनगर, गढ़वाल का एक अतिप्राचीन नगर है तथा कमलेश्वर मंदिर इसी नगर में अवस्थित है। यह नगर अलकनंदा नदी के बायें तट पर करीब साढे तीन मील लम्बी और आधे से पौने मील तक चौड़ी एक गहरी उपत्यका में बसा हुआ है। देवी भागवत् पुराण में श्रीनगर का उल्लेख इस प्रकार है-

नीलाम्बायाः परं स्थानं नील पर्वत मस्तक,
जांबू नादेश्वरी स्थानं तथा श्रीनगरं शुभम्। स्कंध 7-अ-38

महाभारत के वन पर्व के अनुसार श्रीनगर गढवाल, राजा सुबाहु की राजधानी थी।[6] केदारखण्ड में यह स्थान 'श्री' क्षेत्र के नाम से जाना गया है।[7] तथा यहाँ पर श्रीयंत्र' अवस्थित है।[8]

तदन्तर श्रीनगर गढवाल का वर्णन यूरोपीय यात्री विलियम फिंच ने भारत के यात्रा वृतांत 1608 ई0 से 1611 ई0 में गढवाल राजा मानशाह का वर्णन एक शक्तिशाली राजा के रूप में किया है, जिसकी राजधानी को श्रीनगर गढवाल में स्थित बताया है।[9] इसी प्रकार जहाँगीरनामा में श्रीनगर शासक श्यामशाह के नाम का उल्लेख आया है जिसमें जहाँगीर द्वारा उसे घोडे व हाथी उपहार में देने का वर्णन आया है।[10]

'इस यंत्र को शंकराचार्य ने अलकनंदा में उल्टा कर दिया था ऐसी मान्यता थी कि प्रतिदिन इस यंत्र के दर्शन जो सबसे पहले करता वह मृत्यु को प्राप्त होता था।

अंग्रेज यात्री अजेवेडो के विवरण में श्रीनगर का वर्णन तत्कालीन राजा महपतिशाह के सन्दर्भ में आया है जिसमें उसने लिखा है जुलाई 1631 को श्रीनगर के शासक

महपतिशाह की अन्तेष्टि में वह उपस्थित था।[11] एटकिंसन ने अपनी पुस्तक हिमालयन गजेटियर में केशवराय मठ की दीवार पर खुदा एक शिलालेख में महपतिशाह के शासन काल में उसकी राजधानी का श्रीनगर में होने का उल्लेख प्राप्त होता है।[12] इसी प्रकार पृथ्वीपतिशाह के काल में श्रीनगर गढवाल का वर्णन दारा शिकोह के बडे पुत्र सुलेमान शिकोह के सन्दर्भ में आया है जिसने गढवाल के राजा से शरण ली थी।[13]

कमलेश्वर मंदिर इसी श्री क्षेत्र श्रीनगर में अवस्थित है जो एक मंदिरों की प्राचीन नगरी है यहाँ छोटे-बड़े 15 से अधिक मंदिर है जिनमें कमलेश्वर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। जो महत्व उत्तरकाशी के लिए विश्वनाथ का, चम्पावत का बालेश्वर, बागेश्वर का व्याघ्रेश्वर, देवप्रयाग का रघुनाथ मंदिर का है वहीं महत्व श्रीनगर के लिए कमलेश्वर का है।

कमलेश्वर के महत्व की पृष्ठभूमि में पौराणिक कथानकों का भी महत्व है। स्कंद पुराण के केदारखण्ड के अनुसार हिमालय के इस श्री क्षेत्र में साक्षात् महादेव, उमा, नन्दी, तथा मृगगण के साथ रहते है, अन्यत्र तो वह अंश मात्र ही निवास करते हैं।[14]

यत्र देवः शिवः साक्षाद्वितते शिवमासहः स्वयं
समग्रभावेन नन्दि मृडग्यादि भिनृपः (37)

कमलेश्वर मंदिर को पूर्व में सिद्वेश्वर मंदिर के नाम से जाना जाता था, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यह एक स्वयंभू लिंग है। इसी संदर्भ में प्रचलित कथा के अनुसार प्राचीन काल में उत्फालक ऋषि ने अपने आश्रम में धर्मनेत्र राजा को प्रवचन में बताया कि इस क्षेत्र में जो पांच हजार माहेश्वर पीठ है उनमें कमलेश्वर भी एक है। पूर्व काल में वाराणसी का एक विद्वान सर्वशास्त्र विशारद ब्राह्मण जिसका नाम शिह्ल था, ने यहाँ आकर दीर्घ समय तक शिवाराधना करता रहा तो यहाँ पर धरती के गर्भ से मरकत मणि युक्त लिंग प्रकट हुआ। देवाज्ञा से ब्राह्मण ने अनेक देवार्थवेदियों को बुलाकर लिंग का अभिषेक किया और उस लिंग का नाम सिद्धेश्वर पड़ा।[15]

कमलेश्वर नाम पड़ने के पीछे केदारखण्ड पौराणिक पृष्ठभूमि प्रदान करता है कि कभी भगवान राम ने प्रतिदिन सौ कमलों से इस लिंग का पूजन किया था तभी से सिद्धेश्वर लिंग को कमलेश्वर कहा जाने लगा।[16] यहाँ श्री रामचन्द्र ने भगवान शिव को कमल पुष्प अर्पित किये इसलिए यहाँ उनके कमलेश्वर रूप में उपासना होती है।[17] इसके पीछे एक स्थानीय किवदन्ति प्रचलित है, श्री राम ने भगवान शिव को चढ़ाने हेतु एक हजार कमल पुष्प एकत्रित किए शिव ने एक पुष्प पूजा भावना की परीक्षा हेतु छिपा लिया। श्री राम ने खोऐ हुऐ कमल के स्थान पर अपनी आंख चढ़ा दी और तब से यहाँ शिव, कमलेश्वर के नाम से पूजे जाते है।[18] कमलेश्वर को पुत्रदायी मंदिर के रूप में भी माना जाता है, एक प्रथा के अनुसार संतान की कामना करने वाली महिलाएं बैकुण्ठ चतुर्दशी की रात को यहाँ पर हाथों में घी का दिया रखे खड़ी रहती है और जिन महिलाओं को नींद नहीं आती व प्रातःकाल तक जिनके हाथों का दिया बुझता नहीं है उनके बारे में माना जाता है कि उन्हें भगवान का आशीर्वाद मिल गया है।[19] इस आस्था के फलस्वरूप देश के कोने-कोने से आस्थावान जनमानस इस मंदिर में पुत्र अभिलाषा में प्राचीन काल से आज तक खिंचा चला आ रहा है। इसी के परिणामस्वरूप प्राचीन समय से यहां के शासकों ने इस मंदिर को मुक्त हस्त से भूमिदान व गूँठ ग्राम दान दिए जिसने मंदिर व्यवस्थाओं को संचालित होने में महत्वपूर्ण योगदान दिया इससे मंदिरों की आय होती थी और मंदिर के दैनन्दिन कार्य

सम्पादित होते थे तथा इससे जुड़े लोगों का जीविकोपार्जन भी होता था। दान ग्रहण करने वाला कोई व्यक्ति, व्यक्ति समूह या कोई प्रतिष्ठान ही क्यों ना हो, भूमिदान का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत, समूहगत या प्रतिष्ठानगत जीवन में धर्माचारण के लिए आवश्यक सम्पदा को जुटाने का सुनिश्चय करना था। दान में दी भूमि की आय से ही 'अग्निहोत्र', 'पंचमहायज्ञ' जैसे ब्राह्मणीय धार्मिक अनुष्ठानों का व्यय व अन्न, वस्त्र एवं सुगन्धित पदार्थ, माला, दीप, धूप का व्यय व्यवस्थित होता था।[20]

दक्षिण भारत में तमिल मंदिरों का खर्च ग्रामदान व भूमिदान से प्राप्त सम्पदा से चलता था। दाता राज-परिवार के सदस्य, सम्पन्न भूस्वामी, मध्यवर्ती लोग या व्यापारी अथवा श्रेणियां हो सकती थी। मंदिर के छोटे-मोटे उपादान जैसे - प्रतिमाएं, दीपक, तेल आदि आम तौर पर समाज के साधारण लोगो द्वारा दिऐ गऐ दानों से प्राप्त होते थे। मंदिर के सेवक भिन्न-भिन्न जातियों के थे। गर्भगृह में पूजा पाठ केवल ब्राह्मण और अन्य जातियों (सामान्यतः छोटी जातियों) के लोग मंदिर के समारोहों में गायन-वादन करते थे, दीप जलाते थे, प्रतिमाओं की पूजा के लिए आवश्यक फूल और मालाऐं जुटाते थे तथा मंदिर की सफाई का ध्यान रखते थे।[21] इसी प्रकार गढवाल में भी मंदिरों को अनेक प्रकार के दान दिऐ गऐ। मंदिर की आय के निम्नलिखित साधन थे।[22]:-

(1) देवमय ग्राम अर्थात गूँठ ग्राम।
(2) देवता की सिरती तथा खेवणी ठेक सिरती।
(3) गूँठ ग्रामों से प्राप्त घी, चावल आदि
(4) दस्तूर, जो कि कन्या विवाह, पुत्र जन्म या देवपूजन के अवसर पर लिया जाता था
(5) नवरात्र के अवसर पर भैंस व बकरों के रूपये।
(6) यात्रियों द्वारा मंदिर में चढ़ावा, भेंट आदि।

उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त मंदिर की आय के कुछ आकस्मिक साधन भी थे जैसे।[23]-

(1) आकस्मिक भेंट-यह भेंट गूँठ ग्राम के सायणा, पंच जमींदारों पर आरोपित की जाती थी।
(2) गूँठ ग्राम के किसानों से दण्ड तमगीन इत्यादि।

परन्तु एटकिंसन ने मंदिर की आय के चार साधन बताए हैं।[24]:-

(1) सदाव्रत कोष से प्राप्त राजस्व।
(2) मंदिर में यात्रियों की भेंट
(3) गूँठ जमीन से मुद्रा और वस्तु के रूप में लगान।
(4) मंदिर के आस-पास जमीन के मालिक की मृत्यु होने पर लावारिस संम्पति।

अतः स्पष्ट है कि मंदिर की आय के प्रमुख साधन गूँठ भूमि, सदाव्रत कोष, यात्रियों द्वारा मंदिर में अर्पित भेंट, चढ़ावा, दस्तूर , देवता की सिरती, लावारिस भूमि व कुछ आकस्मिक भेंट व दण्ड इत्यादि थे।

मंदिर के आय के स्त्रोत-मंदिरों को आय की दृष्टि से दो भागों में रखा जा सकता है।[25]

(1) अग्रहार (गूँठ) व सदावर्त पाने वाले मंदिर।
(2) अग्रहार (गूँठ) व सदावर्त न पाने वाले मंदिर।

मंदिरों को भूमि दान का पहला अभिलेखीय प्रमाण सातवाहन काल से मिलता है।[26] सतवाहनों के अभिलेखो में धार्मिक उद्देश्य से राजकीय आदेशपत्र जारी करके भूमिदान करने की प्रथा की जानकारी मिलती है। धार्मिक प्रतिष्ठान या ब्राह्मण को दी गयी इस प्रकार की भूमि कर-रहित होती थी। ये धार्मिक दान पुण्यार्जन हेतु राजा द्वारा दी जाती थी।[27] गढ़वाल में मंदिरों को भूमिदान का प्रारम्भिक साक्ष्य छठी-सातवीं सदी में पौरव नरेशों के तालेश्वर ताम्र शासनों में विरणेश्वर महादेव मंदिर भू दान तथा कत्यूरी राजाओं द्वारा पाण्डुकेश्वर ताम्रशासनों में बदरीनाथ मंदिर को भूमिदान का उल्लेख प्राप्त होता है।[28] गढ़वाल हिमालय में प्राचीन काल से ही अनेक राजवंशों के शासकों ने हिन्दू धर्म से सम्बन्धित अनेक मंदिरों को भूदान दिये जिसमें वर्मन, पौरव, कत्यूरी और तदुपरान्त गढ़राज वंश और गोरखा शासन प्रमुख है। इन भूदानों का उद्‌देश्य जहाँ। मंदिरों की दैनन्दिन की व्यवस्था को समुचित बनाना था वहीं शासक वर्ग समाज की आस्था के अनुरूप उनके आस्था राज्य शासन में बनाये रखना चाहते थे।[29] इसी क्रम में पंवार वंशीय शासकों ने भी कई मंदिरों को भूमि दान दिये।

मंदिरों हेतु भूमिदान के निम्न प्रकार थे–

1. अग्रहार/विष्णु प्रीति या गूँठ- प्राचीन दान पात्रों में मंदिरों में बलि, चरू, सत्र, परिवर्तन भंडारा, पूजा, गंध, पुंष्प, दीप, अनुलेपन, नृत्य, गीत, वाद्य आदि की व्यवस्था के लिये जो भूमिदान दी जाती थी उसे अग्रहार नाम से जाना जाता है।[30] तालेश्वर तथा कत्यूरी दानपात्रों में सत्र, बलि, चरू शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि दान की संपत्ति, पूजा-अर्चना तथा भोजन वितरण के लिये व्यय की जाती थी।[31] तालेश्वर से प्राप्त दूसरे दानपात्र में महासत्र का कार्य जारी रखने हेतु उल्लिखित भूमि के सम्बन्ध में शासन देने का आदेश दिया गया है।[32] कल्याण वर्मा के पलेठी शिलालेख में भी उसके द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण हेतु उसे सत्र आदि देने का उल्लेख है।[33]

सातवीं शताब्दी के बाद के दानपात्रों में अग्रहार के स्थान पर देवता या मंदिर के लिये दान सम्बन्धित आदेश देने का उल्लेख हुआ है।[34] चंद दानपात्रों में मंदिरों को अर्पित की गई भूमि के लिये चढ़ाना अर्पण करना कहा गया है।[35] जबकि व्यक्तियों को दिये गये दान में दिन्ही दी या बगसी बख्शी शब्द का प्रयोग हुआ है। देवमय ग्राम तथा वह भूमि जो भोग पूजार्थ राजा द्वारा मंदिरों को व पुजारियों के लिये उपयोग हेतु दी जाती थी, कालान्तर में गूँठ ग्राम या गूँठ भूमि कहलायी, इस तरह के ग्राम गढ़ नरेशों ने अपने राज्यरोहण या अन्य अवसरों पर बदरीनाथ आदि मंदिरों को संकल्प या विष्णप्रीति के नाम से अर्पित किये थें।[36] गढ़नरेशों द्वारा मंदिरों के कोष से युद्ध के लिये या जनकल्याण हेतु ऋण भी लिया जाता था। ऋण लेने हेतु गढ़नरेशों द्वारा कुछ ग्राम मंदिर के पास बंधक रखे जाते थे। प्रायः ऋण नहीं चुकाया जाता था और इस प्रकार गिरवी रखे ग्रामों की गणना भी विष्णुप्रीति ग्राम के रूप में की जाती थी। गोरखा आक्रमण के समय प्रद्युम्नशाह ने बदरीनाथ मंदिर के कोष से पचास हजार रूपये ऋण के रूप में लिऐ थे।[37] महाराजा प्रदीपशाह द्वारा भिलंगना घाटी थ्यूल-स्थित केदारेश्वर मंदिर के महन्त से जन-कल्याण के लिए ऋण लेने का उल्लेख मिलता है।[38] - ''य तुमारो कर्ज गाडे (।) मुलक का वास्ता गाडणू लाग्या छौं (।) से रूपया हमन जी फसल पर सब ते पैले रास ब्याज सुदा तुमारा चुकौंणा तब और काम करणो'' (थ्यूल-प्र० १८१४ भादो)

गूँठ भूमि दो प्रकार की होती थी-

(अ) **राजा द्वारा पुजारियों को मंदिर की पूजा हेतु वेतन के रूप में दी गई कर मुक्त भूमि**- इस प्रकार की भूमि से राजा द्वारा कोई कर नहीं लिया जाता था। मंदिर का पुजारी इस प्रकार की भूमि पर स्वयं खेती करवाता था। इस तरह मंदिर के नाम चढ़े खेतों पर पुजारी तिहाड़ में खेती करवाता था। पुजारियों को भूमि दान का उल्लेख श्यामशाह के सवंत् 1672 के ताम्रशासन, कर्णावती के ताम्रशासन संवत् 1697 व फतेहपतिशाह के ताम्रशासन संवत् 1724 में मिलता है।[39]

(ब) **मंदिरों को अर्पित गूँठ ग्राम**- मंदिरों को अर्पित गूँठ ग्रामों से मंदिर को केवल भूमिकर प्राप्त होता था। गूँठ ग्राम के कृषक भू-राजस्व राजा को देने के बजाय मंदिर को देते थे जो कि मंदिर की आय का प्रमुख साधन था।[40]

गोरखाली शासन में भी मंदिरों को गढ़नरेशों द्वारा अर्पित भूमि में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया। इस भूमि को गोरखाली शासकों ने गूँठी या गूँठ नाम दिया।[41] एस0एस0 नेगी ने गूँठ शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के गोष्ठी शब्द से बताई है।[42]

2- **संकल्प वृति/माणा-चौल**- ब्राहमणों तथा विद्वानों को भरण-पोषण हेतु जो भूमि प्रदान की जाती थी उसे वृति कहते थे। ज्ञानचंद के मादुली दानपात्र में संकल्पवृति देने का उल्लेख है।[43] परमार दानपात्रों में भी वृति शब्द मिलता है।[44] स्थानीय भाषा में इसे माणा-चौल एक माणा चावल कहा जाता है। पूजा-पाठ करने वाले ब्राह्मणों को वर्तमान में वृति बामण कहा जाता है।

3- **सदावर्त**- लोककल्याणकारी तथा धर्माथ कार्यों के लिये भूमिदान[45] को सर्वप्रथम गोरखा दानपत्रों में सदावर्त कहा गया है।[46] सदावर्ती गाँवों की व्यवस्था मंदिर के पुजारियों के हाथ में थी। ब्रिटिश शासनकाल में इस व्यवस्था को लोकल कमेटी के हाथ में दे दी गई जिससे उनकी आय का उपयोग तीर्थ यात्रा मार्गों पर औषधालयों के निर्माण और संचालन के लिये प्रारम्भ किया गया। तीर्थ यात्रियों को इस प्रकार निःशुल्क भोजन देने की व्यवस्था को गोरखाली शासनकाल में सदावर्त नाम दिया गया।[47] सदावर्त देने के लिये कुछ ग्रामों को सदावर्त ग्राम घोषित किया जाता था। इन ग्रामों से प्राप्त भूमि कर की धनराशि को तीर्थ यात्रियों को निःशुल्क भोजन देने के लिये प्रयुक्त किया जाता था। इन ग्रामों का प्रबन्ध मंदिरों के अधीन रखा जाता था।[48]

दान के साक्षी- उत्तराखंड़ के प्राचीन दानपात्रों में दान के साक्षियों का विभिन्न रूपों में उल्लेख हुआ है। मूल दान पात्र पर जो राज्य के अभिलेखागार में रखा जाता था, साक्षियों के हस्ताक्षर करवाये जाते थे। उनमें सर्वप्रथम महाराजकुमारों कुँवर तथा राजा के अन्य पुत्रों, राजा के भ्राताओं, परिवार के अन्य वृद्ध जनों एवं राजगुरू के हस्ताक्षर होते थे। इसके पश्यात प्रमुख अधिकारियों वजीर, नेगी, बिष्ट, फौजदार, दीवान, दतरी, चौधरी, शिखदार आदि पदों पर नियुक्त व्यक्तियों के हस्ताक्षर होते थे अन्त में दानपात्र का आलेख तैयार करने वाले के हस्ताक्षर लिखित के आगे होते थे।[49] परमार दानपत्रों में भी साक्षी के रूप में दरबारियों का उल्लेख है पर उनमें पद की अपेक्षा उपस्थित दरबारी व्यक्तियों के नाम ही प्रमुख है। प्रदीपशाह के मुखीम दानपात्र में व्यक्ति-नाम, पद-नामों के साथ मिलते है।[50] गोरखा दानपात्रों में साक्षियों का उल्लेख नहीं मिलता है।

कमलेश्वर मंदिर को राज्याश्रय- कमलेश्वर मंदिर के नाम जितनी दान प्राप्त

संपत्ति है उसके हिसाब से भी यह मंदिर उल्लेखनीय है।[51] श्रीनगर में राजधानी स्थापना के बाद स्वाभाविक था कि गढ़राजवंश के नरेश इस पौराणिक महत्व के मंदिर को भी आश्रय प्रदान करते, इस प्रकार वे शिवार्चन करके अपनी प्रजा को प्रसन्न रखने व नियंत्रित करने में सफल रहे अतः जगतपाल, अजयपाल और सहजपाल जैसे दानवीर प्रतापी पूर्वज नरेशों की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए मंदिरों को संरक्षण देने का कार्य बलभद्रशाह 1575-1591 के समय से और भी व्यवस्थित हो गया। कमलेश्वर मंदिर को नित्य पूजा के निमित पुराने समय से गढ़नरेशों के चढ़ाये कुछ गाँव थे उनमें मालगुजारी का रूपया तथा कुछ अन्न मंदिर में आया करता था।[52]

कमलेश्वर मंदिर को प्रदत्त गूँठ ग्राम तथा आय- कमलेश्वर मंदिर को कई गूँठ ग्राम अर्पित थे, इन ग्रामों का कृषि योग्य क्षेत्रफल 1823 ई0 में 232 वीसी' था जो कि बढ़कर 1863 ई0 में 677 वीसी हो गया था। मंदिर को गूँठ ग्रामों से 186 रू0 की आय प्राप्त होती थी जो कि 1882-83 में बढ़कर 248 रूपये हो गई थी।[53] महंत द्वारा प्रकाशित पुस्तिका,'श्री कमलेश्वर महात्म्य' के अनुसार 32 गांव ब्रिटिश गढ़वाल(पौड़ी गढवाल, चमोली) में और 30 गांव टिहरी[54] से गूँठ के रूप में कमलेश्वर मंदिर को अर्पित थे। डबराल ने सबसे अधिक गूँठ भूमि श्रीनगर के कमलेश्वर मंदिर को दान दी गयी बतायी है, जो निम्नांकित गांवों में थी।[55] -

फैगुल गर्खा में	-	घणसाली गांव तथा घुंटि गांव में,
चिल्ला गर्खा में	-	मंदार गांव तथा सिंदुल गांव में,
हिमदाऊँ गर्खा में	-	अध्यालगांव में,
भिलंग गर्खा में	-	जोग्याणीगांव, धरालि तथा औंधणातिगांव में,

कमलेश्वर मंदिर को प्राप्त होने वाले कुछ ताम्रपत्र व सनदें-

1753 का ताम्रपत्र- डबराल के अनुसार 1753 ई0 में प्रदीपशाह के शासनकाल में सर्वप्रथम कमलेश्वर मंदिर को भूमिदान का ताम्रपत्र मिला था।[56] परन्तु इस ताम्रपत्र का कहीं न विवरण मिलता है न ही परवर्ती काल में कहीं उल्लेख पाया गया।

सनद 1787 ई0[57]- इस सनद में मंदिर की पूजा व भंडार सामग्री जो पर्वतीय क्षेत्रो से आती थी, को कर मुक्त कर दिया गया था। इसके बाद प्रद्युम्मनशाह ने पूर्वोक्त भूमिदान प्रदान किया था। सनद में रेशमी, पशमीना, कपड़ा, वस्त्र दिसावरी मंडी नजीबाबाद से आते थे। स्मरणीय है कि कई गाँव जो जगत,जगात जैसे नाम वाले है वे तीन बातों की द्योतक है कि वहाँ चुंगी वसूली जाती थी, चौंरहा था तथा वहाँ से कोई व्यापार पथ गुजरता था। जेचल वस्तुतः खेचल है जो अब गढ़वाली में खचरोड़ तथा हिन्दी में विघ्नबाधा के अर्थ का द्योतक है। ल्वेण का आशय उनी लावा/लोई है। भगेंलो भांग के रेशे का गर्मियों में पहनने का बुना वस्त्र है। आबादी बढ़ने पर या राज्य परिवर्तन होने पर भूमिविवाद होते थे। ऐसे ही एक भूमि विवाद में बाद को कमलेश्वर की कुछ भूमि का ज्यूला माप उत्तरकाशी के क्षेत्र में घटाया गया था। चौखुण्टा ज्यूला भी होता था। रतूड़ी ने इसकी माप 16 दोण बीज का एक चौखुण्टा ज्यूला लिखा है जबकि सामान्य ज्यूला चार दोण बीज का होता था।

1787 ई0 का ताम्रपत्र[58]- यह सनद गढवाल नरेश महाराजा प्रघुम्न शाह का सम्वत 1844 वि0 फाल्गुन शुक्ल पक्ष 30 गते का ताम्रपत्र है, जो श्री कमलेश्वर मंदिर के महंत निर्मल पुरी को अन्थवाल गाँव की भूमि दान देने के सम्बन्ध में है इस सनद् में दान दी

गयी भूमि का अपहरण करने को पाप बताया गया है और कहा गया है कि जो दान में दी गयी भूमि का अपहरण करता है वह साठ हजार वर्षों तक स्वानविष्ठा का कृमि बना रहता है।

गोरखा शासनकाल मे– गोरखा शासन के अन्तर्गत उत्तराखण्ड के धार्मिक जीवन पर कोई नकारात्मक प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता है। जिसका प्रमुख कारण गोरखा शासकों का हिन्दु धर्मी होना है, जिस कारण उन्होंने यहाँ के मंदिरों के रख-रखाव व जीर्णोद्धार में सहयोग प्रदान किया।[59] विभिन्न मंदिरों को को गढनरेशों ने जो भूमि संकल्प में दान दी थी उसे गोरखा शासकों ने पूर्ववत बना रहने दिया, उन्होंने अनेक मंदिरों को भूमिदान व गूँठ ग्राम दान में दिये।[60] इस प्रकार गोरखा शासकों ने कमलेश्वर मंदिर को दिये भूमिदान और मंदिर व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। गोरखा शासक विक्रमशाह बहादुर से महंत प्रसाद पुरी को सन् 1811 ई0 तथा सन् 1812 ई0 में दो ताम्रपत्र भेंट किए, जिससे यह प्रमाणित होता कि गोरखा-शासन काल में भी कमलेश्वर मंदिर के सम्मान तथा प्रतिष्ठा को आंच नहीं पहुँचाई गई। गोरखा शासकों ने हिन्दू मंदिरों को गढ़राज वंश के शासकों द्वारा दी गई भूमिदान व गूँठ ग्रामों में कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया क्योंकि गोरखा भी स्वयं शैव धर्म के अनुयायी थे जिस कारण उन्होंने स्वयं भी अनेक मंदिरों को भूमिदान दिया।

गोरखा शासन काल में कमलेश्वर मंदिर को प्राप्त होने वाले ताम्रपत्र व सनदे्–

(1) कमलेश्वर मंदिर (श्रीनगर) को दिये गये सदावर्त सम्बन्धी ताम्रशासन में कहा गया है- कमलेश्वर मंदिर का पुजहाँ री (पुजारी) महंत प्रसाद पुरि प्रति दिन मंदिर में देवता को भोग लगाकर महंतमण्डली को जिमावे। आश्विनमास की (विजया) दशमी के दिन देवलगढ़ पहुॅच कर (सत्य) पीर के मंदिर में सवा सौ रूपया की भेंट चढ़ावे। सामान्य पर्वो पर सवा दस रूपये की सामान्य भेंट अर्पित करें। पीर को एक दिन के लिए फलाहार देवे। (राजराजेश्वरी के मंदिर में) अष्टमी के दिन एक बकरा बलिदान के लिए ले जावे। होम की सामान्य सामाग्री ले जाकर होम करने वाले ब्राहमणों को होम की सामान्य दक्षिणा सवा रूपया देवे। शिवालय में ढ़ाई दूण आटा, उचित दाल, 3 सेर घी, आधा सेर नमक, डेढ़ सेर से भण्डारा करे।[61]

(2) सनद पट्टा, मंदिर कमलेश्वर, (श्रीनगर)[62] संवत् 1868, (1811 ई0)

संवत् 1868 शाल मिति पौष सुदी 2 रोज 2 शुभम् (।)

सिद्धि। मैडवदि जिले गढ़वालमध्ये देवीदेवता गूँठीमा सांघसिवाना मिल्याको भया (।) प्रगना-प्रगना का जान्या भला आदमी सोधी-जगा हेरी सांघ सच्चाई दीन्यो भनि सवालमा लेखी आउदा श्रीकमलेश्वर का गूँठी सदावर्त का जगामा प्रगना प्रगना का भलामानिस राखी सोची जो भूमि गढ़का टिकेराजाले विधि-पूर्वक कल्याणण्धन मानि समर्च्या......... बांकी गूँठी सांघ सच्चाई दीन्वा।

(3) कमलेश्वर (श्रीनगर) ताम्रशासन[63]- 1 सं0 1869 (1812 ई0)-

स्वस्तिश्री गिरिराजचक्र चूड़ामणि नरनाराणेत्यादि विविध विरुदावली विराजमान मानोनत श्रीमन्महाराजाधिराज श्री श्री महाराज गीर्वाणयुद्धविक्रमसाहब बहादुर सम्सेरजं उ दवानाम् सदासमर विजियिनाम् (।) आगे श्री कमलेश्वर का पुजहाँरि महन्त प्रसादपुरी के प्रति.......(।) नित्य पूजा भोग आरति पर्व पर्व मा अस्वत्न मामुत्न देषिगरि चलाई। याको

नैमितिक कर्म पुजा भोग आरति जप पाट होम हाम्रो जै मनाई। विधिपूर्वक जथोक्त सामग्री वति न घटाई। सेवा पुजा टहलमां जु रही....(।) हाम्रो जै मनाई(।)....... सं0 1869 साल मिति वैषाख 2 रोज 3।

ब्रिटिश शासनकाल में-

गोरखा शासन के उपरान्त, सन् 1815 ई0 की सिंगोली सन्धि के बाद आधा गढ़वाल ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत आ गया। परिणाम स्वरूप कमलेश्वर मंदिर भी स्वाभाविक रूप ब्रिटिश शासन की सीमा के अर्न्तगत आ गया। ब्रिटिश गढ़वाल में महंत की नियुक्ति कुमाऊँ के कमिश्नर की स्वीकृति से होती थी, लेकिन उस समय भी महंत का तिलक परम्परा के अनुसार टिहरी नरेश द्वारा किया जाता था। ब्रिटिश काल में कमलेश्वर मंदिर की पूजा व्यवस्था यथावत् बनी रही। हालाँकि ब्रिटिश काल में कुछ गूँठ गाँवों को खारिज कर दिया गया था। किन्तु अंग्रेज भी कमलेश्वर मंदिर को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा दर्शनीय मानते थे। सन् 1822 ई0 में विलियम ट्रेल ने अपनी रिपोर्ट में सम्पूर्ण कुमाऊँ तथा गढ़वाल के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा दर्शनीय मंदिरों में श्रीनगर के कमलेश्वर तथा अल्मोड़ा के जागेश्वर मंदिरों का उल्लेख किया है।[64]

(1) प्रसाद पुरी को 'हुकुम'(सनद)[65]-

कमलेश्वर मंदिर के महंत प्रसाद पुरी को विलियम फ्रेजर ने सेवा के बदले, गढनरेशों और गोरखाली-शासकों द्वारा प्रदत्त भूमि की आय से कमलेश्वर की पूर्ववत् पूजा करते रहने का आदेश दिया।

कमलेश्वर मंदिर की व्यवस्था-

गढ़वाल में मंदिर हमेशा से धार्मिक आस्था के केन्द्र के साथ-साथ उससे जुड़े लोगों के जीविकोपार्जन का एक माध्यम भी रहा है मंदिरों को प्राप्त होने वाली आय गूँठ दान, सदावर्त व भेंट चढ़ावा से जहाँ मंदिर अपनी दैनन्दिन आवश्यकताओं को सम्पादित करता था वहीं मंदिर से जुड़ें हुए व्यक्तियों के भरण पोषण का कार्य भी करता था। प्राचीन काल में मंदिर व्यवस्था स्पष्ट नहीं थी परवर्तीकाल में राजाश्रय मिलने के कारण मंदिर व्यवस्था सुदृढ़, सुचारू व नियमित हुई कमलेश्वर व्यवस्था भी परवर्तीकाल में सुदृढ़ होती गई। इस मंदिर व्यवस्था से जुड़े अनेक व्यक्ति थे जो इस व्यवस्था के सुचारू रूप से चलने में अपना योगदान देते थे। कमलेश्वर मंदिर व्यवस्था में निम्न व्यक्तियों का योगदान महत्वपूर्ण था-

प्रधान पुजारी (महंत)- कमलेश्वर मंदिर में नित्य दिन पूजा अर्चन होती है तथा पर्व विशेष पर विशेष शिवार्चन होता है। यहाँ पुजारियों का प्रधान व्यक्ति महंत कहलाता है।[66] कमलेश्वर मंदिर का महंत दशनामी गोस्वामी सम्प्रदाय के पुरी वंश का होता है व ब्रहमचारी नहीं होता है, और बच्चे उत्पन्न कर सकता है, पर उसके बच्चों को महंत बनने या मंदिर की संपति में भाग पाने का अधिकार नहीं होता उन्हें केवल पिता अपने द्वारा कमायी गयी संपति का हिस्सा दे सकता है।[67] महंत के लिए उसी व्यक्ति को सुपात्र समझा जाता है जो कि पुरी वंश का हो, कमलेश्वर के किसी महंत का शिष्य हो तथा चरित्रवान होने के साथ ही मंदिर की पूजा-अर्चना आदि कार्यो को सम्पन्न करने की योग्यता रखता हो। महंत को अपने जीवन का अधिकतम समय मंदिर की पूजा, देख-भाल एवं दैनिक व्यवस्था के संचालन में व्यतीत करना पड़ता है और इन कार्यो को वही व्यक्ति अच्छी तरह से सम्पादित कर सकता है जो कि समर्पित होकर मंदिर की सेवा करने का इच्छुक हो। महंत की गद्दी

का उत्तराधिकारी महंत का वरिष्ठतम चेला होता है। महंत का कोई चेला न होने पर इस पद के लिए चुनाव होता है अन्यथा वरिष्ठ चेला ही महंत बनता हैं। कमलेश्वर के महंत बलभद्र पुरी की मृत्यु होने पर दस नामी महंतों ने उसके शिष्य हनुमंत पुरी(शोभानंद पुरी) को कमलेश्वर का महंत चुना।[68] कमलेश्वर में स्थित शिलापट, प्राप्त ताम्रपत्रों, सनदों, मोलाराम के विवरण एवं कमलेश्वर मठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'माहात्म्य' के आधार पर अब तक हमें 12 महंतों की नियुक्ति का विवरण हमें प्राप्त होता है।[69] कमलेश्वर के गुसाई में तीन प्रकार के चेले होते हैं।[70]–

(अ) ऐसा चेला जो गुरू के साथ रहता है और उसकी सेवा करता है।

(ब) ऐसा चेला जो गुरू की सेवा के लिए उसके साथ नहीं रहता बल्कि गुरू से दूर स्वतंत्र निवास करता है।

(स) जो अन्तिम दिनों में चेला बनता है और मुक्ति के लिए सन्यास ग्रहण करता है उसे अतर सन्यासी चेला कहते हैं।

निर्मल पुरी से पूर्व महंत को मात्र गुसाई कहा जाता था। 1787 ई0 में राजशाही द्वारा महंत पद नाम दिया गया। महंत की देखरेख में ही मंदिर में सभी प्रकार के निर्माण एवं जीर्णोद्वार का कार्य होता था। इसी प्रकार मंदिर में होने वाले सभी पर्वो (बैकुण्ठ चतुदर्शी, शिवरात्रि, घृतकमल आदि) के सम्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बैकुण्ठ चतुदर्शी के दौरान पुत्ररत्न की कामना करने हेतु महिलायें रात्रि के समय से जो दीपक हाथ में लेकर खड़ी रहती है, उसका विर्सजन भी सुबह महंत के कर कमलों द्वारा ही सम्पादित होता है। माघ मास के शक्ल पक्ष की अचला सम्पत्ति जिसे स्थानीय लोग घृत कमल कहते है। इस दिन महंत का उपवास रहता है व मंदिर में चार बार शिव पूजन होता है रात्रि में पूजा, भोग तथा आरती के पश्चात महंत केवल एक लंगोट धारण करके दिगम्बर स्वरूप में मंदिर की लोट परिक्रमा करता है। महंत समय समय पर मंदिर में शिव कथा का आयोजन भी करवाता है।

कमलेश्वर मंदिर के महंत का राजनीतिक हस्तक्षेप– प्राचीन समय से मठ-मंदिर धार्मिक क्रियाकलापों के साथ-साथ तात्कालीन राजनीतिक घटनाक्रमों में भी संलिप्त रहे हैं क्योकि शासक वर्ग का मंदिरों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है, जहाँ शासक वर्ग मंदिरों के द्वारा समाज में न्याय व सुचिता बनाये रखने में सफल रहे साथ ही विपत्ति के समय मंदिरों से ऋण आदि की सहायता भी लेते रहे है। इस प्रकार मंदिर के प्रधान पुजारी(महंत) भी राजकीय कार्यों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाग लेते रहे है, जिसका प्रमाण हमें सुदर्शन शाह के शासन काल में कमलेश्वर मंदिर के महंत प्रसाद पुरी द्वारा चाचा भतीजे की लडाई में कूटनीति से सक्रिय भागीदारी के प्रमाण मिलते हैं। उसने अपने परिवार के मलूप पुरी को (जिसका चित्र मौलाराम ने अपने समकालीन चित्रों के साथ अंकित किया है) पराक्रम शाह के पक्ष में सक्रिय भाग लेने का आदेश दिया तथा अपने ही परिवार के रूद्रपुरी और समशेर पुरी को सुरर्शनशाह की सहायता करने के लिए भेजा इससे वह अपना हित इस बात से साधना चाहता था कि बाद में विजय किसी भी पक्ष में हो विजेता का कृपापात्र बने रहने का अवसर मिलेगा। उसकी इस कूटनीति से उसके परिवार तथा संबन्धियों में से अनेक गुसाईयों ने चाचा भतीजे की लडाई में दानो ओर से सक्रिय भाग लिया। फलतः इस लडाई में मारे जाने वाले व्यक्तियों में गुसाईयों की संख्या अधिक थी।[71]

इसका उदाहरण हमे 'श्रीपुर-लीला' नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ से सुदर्शनशाह के काल में मिलता है, जब सुदर्शनशाह को अपनी राजधानी से हस्तगत होना पडा और राजपरिवार के साथ (कनखल में) गुप्त रूप से रहना पडा था और जब इस बात की विश्वस्त सूचना प्रसाद पुरी को मिली तो उसने अपने लेखवार शंकरदत्त कोटनाला को गुप्त रूप से सुदर्शनशाह के पास भेजा। उक्त ग्रन्थ के अनुसार शंकरदत्त कोटनाला महंत के पत्र और कुछ अशरफियों को अपने जूते की तलियों के अन्दर छिपाकर ले गया तथा सुदर्शनशाह को सावधान रहने और धैर्य रखने की सलाह देकर उसी गुप्त ढंग से राजपुत्र का पत्र ले लेकर श्रीनगर लौट आया। इन गतिविधियों में संलिप्तता के कारण गोरखालियों को संदेह हुआ जिस कारण प्रसाद पुरी को बन्दी भी बनाया गया परन्तु प्रमाण न मिलने के कारण प्रसाद पुरी को कारागार से मुक्त किया गया फिर भी मौका मिलने पर प्रसाद पुरी समय-समय पर अपने विश्वस्त लोगों के हाथ गुप्त पत्र एवं आर्थिक सहायता सुदर्शनशाह को भेजता रहा।[72]

अंग्रेजी शासन काल में भी कमलेश्वर मंदिर के महंत प्रसाद पुरी की घनिष्टता अंग्रेज अधिकारियों के साथ बराबर बनी रही इस कारण वह कमलेश्वर मंदिर को दी गयी भूमि व गूँठ को अंग्रेजी शासन काल में भी बनाये रखने में सफल रहा।[73] प्रसाद पुरी जिसका नाम रूथरफोर्ड ने पसन्दपुरी लिखा है। रूथरफोर्ड से प्रसाद पुरी का गुप्त सम्पर्क था। रूथरफोर्ड के अनुसार, वह उन व्यक्तियों में से था जो ब्रिटिशसरकार के हितैषी थे, और रूथरफोर्ड के संकेत पर गोरखाली शासकों के सम्बन्ध में गुप्त सूचनाऐं प्रेषित किया करते थे।[74]

इससे स्पष्ट होता है कि महंत का तत्कालीन राजनीति में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप था। कमलेश्वर मंदिर के महंतों ने कूटनीति से काम लेकर सदा अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखी चाहे शासक वर्ग कोई भी रहा हो।

महंत के अलावा अन्य पुजारी- मंदिर में पूजा के निमित अन्य पुजारी भी होते है, जो पहले केवल पुरी समाज से ही होते थे तथा महंत के साथ पूजा में भाग लेते थे। महंत प्रधान पुजारी होता था तथा अन्य पुजारी सहायक के रूप में महंत की सहायता करते थे। लेकिन वर्तमान में सहायक पुजारी पुरी समाज से न होकर ब्राह्मण समाज से है, जो मंदिर में सेवाकार के रूप में कार्यरत है तथा समय समय पर मंदिर में आने वाले श्रद्धालुओं की पूजा अर्चन व यज्ञ अनुष्ठान भी संपादित करते है।

रसोइया– स्थानीय लोगों से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में मंदिर में एक रसोइया भी नियुक्त होता था। जो पुरी समाज से ही सम्बन्धित था और मंदिर के भोग के निमित प्रतिदिन सुबह-शाम भोग तैयार करता था क्योंकि पहले प्रतिदिन मंदिर में भगवान को भोग लगता था। किन्तु अब विशेष पर्वो के समय ही भोग लगता है अत: मंदिर में अब नियमित रसोइया नहीं है।[75]

पनेरी– मंदिर में पनेरी, सेवाकार के रूप मे नियुक्त होते थे जो प्रतिदिन सुबह व शाम शिवलिंग में अर्पण एवं मंदिर में अन्य कार्यो संपादन के लिए नदी से जल लाते थे, जो मंदिर से कुछ दूरी पर बहने वाली पवित्र नदी अलकनंदा से लाया जाता था। शिवलिंग के अर्पण हेतु महंत भी स्वयं नदी से जल लाता था।[76] लेकिन आज के आधुनिकता के दौर में यह व्यवस्था विलुप्त हो गई है आज जल मंदिर के प्रांगण तक आसानी से उपलब्ध है।

कुछ श्रद्धालु आज भी अपने श्रद्धा भाव से शिवलिग में जल अर्पण हेतु अलकनंदा नदी से जल लाते है।

दैनन्दिन पूजन सामग्री की व्यवस्था करने वाले लोग– मंदिर में दैनन्दिन पूजन सामग्री धूप, दीप, तेल, दुग्ध-दही, चंदन, हवन सामग्री आदि पहुँचाने वाले सेवाकार भी नियुक्त किये जाते थे। मंदिर की पूजन सामग्री पुरी समाज के स्थानीय निवासियों द्वारा समय-समय पर अपनी बारी के अनुसार पहुचाँई जाती थी, इन लोगों को सेवा के बदले कुछ पारिश्रमिक भी मंदिर की ओर से दिया जाता था, परन्तु आज ऐसी सामग्री पहुंचाने वाले लोगो की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है, आज यह सामग्री या तो श्रद्धालु स्वयं श्रद्धा भाव से अर्पित करते हैं या महंत स्वयं मंदिर के खर्चे से यह दैनन्दिन वस्तुओं की व्यवस्था करता है।

कमलेश्वर मंदिर व्यवस्था का स्थानीय समाज पर प्रभाव– प्राचीन काल से ही कमलेश्वर मंदिर का स्थानीय जनमानस पर गहरा प्रभाव रहा है। मंदिर जहाँ एक ओर धार्मिक आस्था को प्रतिबिम्बित करता था साथ ही स्थानीय लोगों के जीविकोपार्जन का भी एक सशक्त माध्यम था। गढराजवंश के शासकों की राजधानी श्रीनगर होने के कारण कमलेश्वर मंदिर विशेष आस्था का प्रतीक रहा, जिसे शासकों द्वारा मुक्तहस्त से ग्राम और गूँठ दान दिये गये। मंदिर को दान में मिली भूमि पर स्थानीय जनमानस कृषि कार्य कर अपना जीवनयापन करती थी और साथ ही मंदिर में होने वाले दैनन्दिन कार्यों से भी लोगों की आय होती थी। पहाड़ का दुरूह जीवन व मैदान से सीधे जुड़ा न होने के कारण तथा सीमित कृषि भूमि होने यहाँ के स्थानीय जनसमुदाय की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, लोग छोटी बड़ी आर्थिक जरूरत के लिए मंदिर पर आश्रित रहते थे। परवर्ती काल में गोरखाली शासन के दौरान गोरखा शासकों ने भी मंदिर को दान में मिली भूमि में कोई हस्तक्षेप नहीं किया, जिससे मंदिर व्यवस्था अविच्छन रूप से बनी रही। गोरखाली शासन के पराभव के उपरान्त अंग्रेज शासकों ने भी कमलेश्वर मंदिर की महत्ता को ध्यान में रखते हुए मंदिर उपासना पद्धति को सुचारू रूप से चलने दिया। मंदिर व्यवस्था का आरंभ मंदिर के दैनान्दिन कार्यो के सम्पादन को सुचारू रूप से सम्पादित करने हेतु हुआ। स्थानीय लोगों की आवश्यकताऐ सीमित थी और लोगों की आजिविका अधिकांशतः मंदिर से पूर्ण हो जाती थी। व्यक्ति अपनी जाति व योग्यतानुसार मंदिर के कार्यो को सम्पादित करते थे। मंदिर निर्माण हेतु कुशल-अकुशल श्रमिक, भित्तीचित्रकार मंदिर में दैनान्दिन उपयोग सामग्री (दूध, दही, मोदक, अक्षत, गंध, रोली इत्यादि) मंदिर पहुचाने वाले लोगो की वंश परम्पराऐ व आजीविका आज भी निरन्तरता व परिवर्तनता के साथ आज भी बनी हुई है। शासन वर्ग का प्रत्यक्ष नियंत्रण मंदिर के ऊपर होता था, जिसका उदे्श्य राजा का अपनी प्रजा के ऊपर नियंत्रण स्थापित करना था। राजा मंदिर की सहायता से जहाँ एक ओर कानून व्यवस्था को बनाये रखने में सफल रहा जिससे कि उसके शासन के प्रति किसी प्रकार का विद्रोह न हो सके वहीं दूसरी ओर प्रजा में नैतिकता व सुचिता को भी स्थापित करने में सफल रहा। परवर्ती गढनरेशों ने साधारण जनता के बीच अपनी 'दैविय शक्ति' की स्थापना हेतु स्वयं को 'बोलान्दा बद्री' (सच्चा बदरीनाथ का अवतार) की संज्ञा देकर बदरीनाथ का साक्षात् रूप माना। जिससे साधारण प्रजा धार्मिक आस्था के कारण अपने राजा के विरूद्ध आवाज न उठा सके व हमेशा राजधर्म का पालन करते हुऐ शासन के प्रति हमेशा स्वामिभक्ति बनाये

रखे। राजा पुजारी की सहायता से मंदिर व्यवस्था को संचालित करता था।

अन्त में कह सकते है कि कमलेश्वर मंदिर की महत्ता को देखकर शासक वर्ग ने इस मंदिर को विशेष दान दिऐ जिसके परिणाम स्वरूप कमलेश्वर मंदिर की व्यवस्था सुचारू रूप से चलनी प्रारम्भ हुई। यह व्यवस्था लम्बे समय तक अनवरत चलती रही, क्योंकि रोजगार के अल्प साधन होने के कारण मंदिर ही जीविकोपार्जन का एक सशक्त माध्यम था, लेकिन आधुनिकता के प्रभाव में आज कई परिर्वतन दृष्टिगत होते हैं। आज के भौतिकवादी दौर का स्पष्ट प्रभाव हमें इस मंदिर व्यवस्था में देखने को मिलती है। लोगों की आय में वृद्धि होने, सरकारी क्षेत्र में नौकरियों व स्वरोजगार ने स्थानीय लोगों की मंदिर पर आर्थिक निर्भरता को कम कर दिया है, फिर भी निरंतरता और परिवर्तनता के साथ आज भी कमलेश्वर मंदिर व्यवस्था बनी हुई है, जो मंदिर कार्य के सम्पादन में अपना योगदान दे रही है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. बनर्जी, जे0एन0य (1974), डवलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकेनोग्राफी, मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स प्रा0 लि0 नई दिल्ली, पृ0 66
2. काला, प्रतिभाय (2003),गढ़वाल का मंदिर स्थापत्य प्रारम्भ से 1200 ई0 तक, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, हे0न0ब0ग0वि0वि0 श्रीनगर गढ़वाल, पृ0 58
3. कठौच, यशवंत सिंहय (1996), मध्य हिमालय खण्ड-1,भागीरथी प्रकाशन गृह, नई टिहरी पृ0 92
4. डबराल,शिवप्रसादय (1990), उत्तराखण्ड के अभिलेख एंव मुद्रा,वीरगाथा प्रकाशन, दुगड्डा गढ़वाल, पृ044
5. कठौच, यशवंत सिंहय (1996), पूर्वोक्त , पृ0 69
6. रतूड़ी, हरिकृष्णय (1988), गढ़वाल का इतिहास, भागीरथी प्रकाशन गृह, टिहरी गढ़वाल, पृ0 58
7. वही पृ0 58
8. मैठाणी, वाचस्पतिय (2004), गढ़वाल हिमालय की देव संस्कृति-एक सामाजिक अध्ययन, गांध ी हिन्दूस्तानी साहित्य सभा सन्निधि, राजघाट, नई दिल्ली, पृ0 59
9. फिंच, विलियमय (1921), अर्ली टैवल्स इन इण्डिया 1583-1619, (सम्पादक विलियम फोस्टर), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन पृ0 180-181
10. थैकसटन, एम0 ह्वीलर (अनु0, संशोधित, टिप्पणी), द जहाँगीरनामा मेमोरीज ऑफ जहाँगीर, ईम्पीरल ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन पृ0 361
11. वेसल्स, सीय, (1997), अर्ली जेसूट टैवल्स इन सेन्टल एशिया 1603-1721 एशियन ऐजूकेशनल सर्विस, नई दिल्ली पृ0 95
12. एटकिंसन, ई0टी0, अनुवादक प्रकाश थपलियालय (2003), हिमालयन गजेटियर, ग्रन्थ-2 भाग-2, उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालयन संचेतना संस्थान, आदिबद्री चमोली, उत्तराखण्ड पृ0 259
13. नेगी, राजपाल सिंह, ए स्टडी ऑफ मुगल इण्टरवैनशन इन बॉडर कॉनलिक्ट्स विटवीन वैस्टर्न हिमालायन स्टेट ऑफ गढवाल एण्ड सिरमौर, हिम कांति, (सम्पादक- बी0 एम0 खण्डूरी, विनोद नौटियाल) एच0 एन0 बी0 गढवाल यूनिवर्सिटी, श्रीनगर गढवाल, पृ0 277
14. नैथानी, शिवप्रसादय (1998), उत्तराखण्ड श्री क्षेत्र श्रीनगर, पवेत्री प्रकाशन, भक्तियाना, श्रीनगर गढ़वाल, पृ0 178
15. वही, पृ0 178

पुराशिहलो बभूवाथ ब्राहमणों वेदपारगः। चतुर्मुखनि भस्साक्षात्सर्व शास्त्र विशारदः। 76।
वराणस्यॉहि वसति स्मैकदात्र समाययौ। तीर्थानांतीर्थ राजे तु समाराध तत्परः।77।
एतास्मिन्नन्तरे तत्र द्धिघा भू-पृथिवी नृप। तसमाद्रनधात्प्रभौधस्तु मणीनां हि समाययौ।80।
अर्द्वरात्रेऽपि राजेन्द्र मध्यान्ह इव सम्बभौ। ततो मारकतं लिंग प्रत्य दृश्यतः तत्र वै।81।अत्र 188,

16. वही, पृ0 179,
पुनः कदाचिदभगवत्रामरूपी जनार्दनः। पूजयामास कमलैः प्रत्यहं शत सम्मितैः।88।
ततोऽवधि महाराज कमलेश्वरतांगतः।89।
तीर्थ भयाद्वहिकोणे हयधस्ताद्वहिपर्वतात्। कमलेशो महादेवो माने शर चतुष्टये।90।

17. एटकिंसन, ई0टी0, अनुवादक प्रकाश थपलियालय (2003), हिमालयन गजेटियर, ग्रन्थ-2 भाग-1, उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालयन संचेतना संस्थान, आदिबद्री चमोली, उत्तराखण्ड, पृ0 83
18. एटकिंसन, ई0टी0, अनुवादक प्रकाश थपलियालय (2003) हिमालयन गजेटियर, ग्रन्थ-2 भाग2, पूर्वोक्त, पृ0 507
19. वाल्टन, एच0जी0, अनुवादक प्रकाश थपलियालय (2005), गढ़वाल हिमालय का गजेटियर, उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालयन संचेतना संस्थान, आदिबद्री चमोली, उत्तराखण्ड, पृ0 191
20. चक्रवर्ती, रणवीर, अनुवादक, शर्मा, उमाशंकरय (2012),भारतीय इतिहास आदिकाल (प्राचीनतम पर्व से 600 ई0 तक) ओरियंट ब्लैक स्वान प्रा0 लि0, दिल्ली, पृ0 309
21. थापर, रोमिला, अनुवादक, सिंह, आदित्य नारायणय (2009),पूर्वकालीन भारत (प्रारम्भ से 1300 ई0 तक) हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय , पृ0 309
22. कठौच, यशवंत सिंहय (1996)पूर्वोक्त, पृ0 158
23. वही, पृ0 158
24. रावत, शिवचंद सिंहय (2011), गढ़वाल की अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक संस्थाओं के विकास का इतिहास, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 127
25. वही, पृ0 121
26. झॉ एवं श्रीमालीय (2007), प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यानवयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 237
27. चक्रवर्ती, रणवीर, अनुवादक, सिंह, आदित्य नारायणय (2012) भारतीय इतिहास आदिकाल, पूर्वोक्त, पृ0 234
28. द्विजवर्मन का वृषताप शासन व विष्णुवर्मन का तालेश्वर ताम्रशासन से उद्धृत, डबराल, शिवप्रसादय (1990)उत्तराखण्ड के अभिलेख एवं मुद्रा, पूर्वोक्त, पृ0 48। एवं नेगी, शन्तन सिंह, टेंपल पीपुल एण्ड द पावर इन गढ़वाल हिमालय, हिम कांति, (सम्पादक- बी0 एम0 खण्डूरी, विनोद नौटियाल) एच0 एन0 बी0 गढवाल यूनिवर्सिटी, श्रीनगर गढवाल, पृ0 262
29. नेगी, शन्तन सिंहय (2006), गढ़वाल हिमालय में समाज धर्म एवं राजनीति का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य, ऐजुकेशनल रिसर्च जर्नल, (सम्पादक डॉ0 पी0 एल0 भट्) उत्तराखण्ड शोध संगठन कोटद्धार, पृ0 2
30. उद्धृत, त्रिपाठी, तारा चन्द्रय (1999), उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक भूगोल, पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांग, तल्लीताल, नैनीताल, पृ0139, अभिलिख्याग्रहाराः प्रतिपादितकास्ताति च शासनान्या. ... तालेश्वर दानपत्र, द्युतिवर्मन पंक्ति 9
31. उद्धृत, त्रिपाठी, किरनय (2006), उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक एवं सांस्कृति भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनिताल, पृ0 283
....गन्ध-धूपदीपोपलेपननैवेद्यबलिचरुनृत्य-गेयवाद्यसत्रादि-प्रवर्तनायखण्ड-स्फुटित-संस्करणाय-अभिनकर्म्मकरणा.....श्रीसामदेव्या स्वयं कारापित भेवते श्री नारायणभट्टारकाय शासनदानेन प्रतिपादिताः प्रकृतिपरिहारयुक्ताः- पांडुकेश्वर दानपत्र-1 पंक्ति 19-21, ललितशूरदेव
32. उद्धृत, वही, पृ0, 141, हृदयेरनुमोदना-शासने-भुवामर्थे-महासत्रो...- तालेश्वर दानपत्र, विष्णुवर्मन

33. उद्धृत, वही, पृ0 284, सत्रादियुक्त भूत्थवंशस्य शैलविषय परिगतं भूमिपालेन भक्त्या तैनेद्धामभानोः सुविहितभवकारित प्रीति- भाजा 1 - कल्याणवर्मा, पलेठी शिलालेख
34. उद्धृत, वही, पृ0 284 , भगवतः श्री नारायणभट्टाकाय शासनदानेन प्रतिपादितं प्रकृतिपरिहार युक्तम्..... पाण्डुकेश्वर दानपत्र- 2,ललितशूरदेव
35. उद्धृत, वही, पृ0 284 .... संकल्पपूर्वक चढ़ाया 1- बाजबहादूरचंद, सोमेश्वर मंदिर दानपत्र, शाके 1570/1648 ई0
36. डबराल, शिवप्रसादय (1999), गोरख्याणी-1 पर्वतीय राज्यों का विध्वंश, वीरगाथा प्रकाशन, दुगड्डा गढवाल, पृ0 161
37. एटकिंसन, ई0टी0य (2003), हिमालयन गजेटियर, ग्रन्थ-3 भाग-1, पूर्वोक्त, पृ0 23
38. कठोच, यशवन्त सिंहय (1996), पूर्वोक्त, पृ0 158,159
39. उद्धृत, पंवार, शूरवीर सिंह, (1990), गढवाली के प्रमुख अभिलेख एवं दस्तावेज, पृ0 2- 8 श्यामशाह द्वारा प्रदत संवत् 1672 का ताम्रशासन, कर्णावती द्वारा प्रदत संवत् 1697 का ताम्रशासन एवं फतेहपतिशाह द्वारा प्रदत संवत् 1724 का ताम्रशासन
40. रावत, शिवचंद सिंहय (2011)पूर्वोक्त, पृ0 128
41. पौ, ई0 के0((1896), रिपोर्ट ऑन द टेन्थ सैटिलमेन्ट ऑफ द गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट, इलाहाबाद, पृ0 39
42. नेगी, शन्तन सिंहय (1988-89), एग्रेरियन सिस्टम इन गढ़वाल हिमालया 1500 ई0 -1805 तक, जर्नल ऑफ हिस्ट्री, यू0पी0, हिस्टोरिकल रिव्यू , (सम्पादक- प्रो0 राधेश्याम) , इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद, पृ0 83
43. उद्धृत, त्रिपाठी, किरनय (2006)पूर्वोक्त, पृ0 284, राजा श्री ज्ञानचंद्रेण गसुर्द्ध शर्मण ब्राह्मणाय भूमि संकल्प दिन्हि 1- ज्ञानचंद मादली दानपत्र शाके 1311/1389 ई0 तथा अन्य चंद दानपत्र
44. उद्धृत, वही, पृ0 284, वृति हरण नी करणु- हाटगाँव , चमोली दानपत्र सं0 1714/1657 ई0
45. वही, पृ0 285, प्राचीन अभिलेखों में उपलब्ध सत्र और सदावर्त समानार्थक शब्द हैं। उत्तर गुप्तकालीन अभिलेखों में एक विशेष संस्था का उल्लेख मिलता है, जिसे सत्र कहते थे। इस स्थान पर विद्यार्थियों, साधु तथा निर्धन व्यक्तियों को निःशुल्क भोजन वितरण किया जाता था।
46. नैथानी, शिवप्रसादय (1998) उत्तराखण्ड श्री क्षेत्र श्रीनगर, पूर्वोक्त, पृ0 194, श्रीकमलेश्वर का गूँठी सदावर्त का जगामा....... सनद पट्टा मंदिर कमलेश्वर श्रीनगर, सं0 1868/1811 ई0
47. डबराल, शिवप्रसादय (1999) गोरख्याणी-1 पर्वतीय राज्यों का विध्वंश, पूर्वोक्त, पृ0 163
48. कठौच, यशवंत सिंहय (1996) पूर्वोक्त, पृ0 150
49. त्रिपाठी, किरनय (2006), उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन नैनीताल, पृ0 284,लिखितं इदं भरत दैवतेन 1 देवसाउ ले खुदवाये 1-़ ज्ञानचंद मादली दानपत्र, शों 1340/1418 ई0
50. वही, पृ0 284, साक्षि रतरसिं बिष्ट वगसी अर्जुन देवान ये गॉउ का नेगी ह्यासिं फद्यत्याउॅ को नेगी सुररसिं फतेवादरा को नेगी सेमसिं ....-प्रदीपशाह,मुखीम, नागराजमंदिर दानपत्र, सं0 1783/1726 ई0
51. एटकिंसन, ए0टी0, अनुवादक प्रकाश थपलियालय (2003), हिमालयन गजेटियरग्रन्थ-2 भाग-2, पूर्वोक्त, पृ0 507
52. वैष्णव, शालिग्रामय (2010), श्री उत्तराखण्ड रहस्य, पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांग, तल्लीताल, नैनीताल, पृ0 59
53. रावत, शिवचंद सिंहय (2011)पूर्वोक्त, पृ0 121
54. जिला पौड़ी गढ़वाल
(1)वणेलस्यूं में विरसणी गांव (2) मजाकोट गांव (3) बलगड़स्यूं में सैज गैरोला गांव (4) मनियारस्यूं में आसुई गांव (5) रावतस्यूं में पाली (6)ईडवालस्यूं बहेली (7) उफल्डा (8) कंडारस्यूं

में बनास मोल्टी (9) डोवरा (10) दला (11) कांडै (12) कर्मोली दर्मोली (13) पहिन कौंडा (14) सिर्तोली (15) कटूलस्यूं में बछेली (16) चलस्यूं में डूगरीपंथ। जिला चमोली (17) धनपुर में तिलणी (18) तल्ला नागपुर में रामपुर (19) वामसू में ल्वाणी किनगोडिया (20) सल्या (21) मल्ला कालीफाट में जाल तहला (22) भेत सेमनारायणकोटि (23) कोटियाडा (24) तल्ला कालीफाट में रयासू-हाट (25) मैखण्डा में जामू गांव (26) मल्ला मंगोल गांव (27) विचला नागपुर दशौली में वमोथ (28) पोखरी (29) बधाण-प्रकण्डी में सेरापाखुरी (30) वंड दशोली में गौणागांव (31) तल्ला दशोली में चमाली गांव (32) निजमोला टिहरी (1)बाडागडी मे चैनती-धनपुर (2) अलेट (3) गमरी में तोल्पाडा (4) ढुंगमंदार में मनार-म्यूंडी (5) भटवाड़ा (6) कस्तला (7) धुन्टी 8) थात 9) फैंगूल में घणसाली (10) द्वारी इन्द्रोला (11) कैमर में विलेश्वर (12) श्रीकोट (13) सिल्यारा (14) किरेथ सामिल श्रीकोट (15) केमरा (16) सेन्दूल (17) गोलगड़ में भटगांव (18) चड़यारा (19) भिलग में राणीढांग (20) सेन्दवाल गांव (21) चौरास में नौरगांव (22) भरदार में क्वीलागांव (23) मलेथा में जयालगड़ गांव (24) हिंदौ में अंण्थ्वाल गांव (25) लस्या में बडसेर गांव (26) देवगांव (27) बांगर में पुलन सेरवाडी गांव

55. डबराल, शिवप्रसादय (1999) टिहरी गढवाल राज्य का इतिहास-1 राजा सुदर्शनशाह से राजा कीर्तिशाह तक(सन्1815-1913), वीरगाथा प्रकाशन, दुगड्डा गढवाल, पृ0 94,95
56. नैथानी, शिवप्रसादय (1998), उत्तराखण्ड श्री क्षेत्र श्रीनगर, पूर्वोक्त, पृ0 189
57. वही, पृ0 190

श्री रजवार को आदेश

(सील महाराजा प्रद्युम्नशाह)

गुसाई निर्मल पुरी जी प्रति आगे छत जो नाज ध्यु तेल लोंण लोकर तामों भेड़,बकरी कामलों पाजली तमाजु गाउ कोधैं देस को कपड़ा रेसमिना पेसमिना किरणों पिठाई ल्वैण भगेलो जो परवत देस ते तुमारो औदा ताकी जगात बजारते लिय घाटा घाड़युं कि पाछ लग तुमको माफथ अवलग माफ करी दीने जगात बावत तुम मांझ कैन जेचल नी करणि हूकुमते वजीर जयदेव जीन छाप लेई साई हरिदत्त खण्डूरी संवत् 1844 कार्तिक।।गते।,

58. महाराजा प्रद्युम्नशाह का ताम्रपत्र, उद्धृत पंवार शूरवीर सिंहय (1985)गढ़वाल के प्रमुख अभिलेख एवं दस्तावेज, पुराना दरबार, टिहरी, पृ0 30- 31

सील -

बदरीनाथ विजयते

श्री कमलेश्वर जी

श्री रजवार को आदेश

श्री शाके 1709 संवत् 1844 फाल्गुनीय शुक्ल पक्षे रविवासरे उत्तर भादा नक्षत्रे दिन गते 30 श्रीनगर शुभ स्थाने श्री महाराजाधिराज प्रद्युम्नशाह देव ज्युले .....निमित्त गुसाई निर्मल पुरी जी कौ भाषापत्र लेषी दीन्यु यो पांजो निश्चल राषणों

सील - बदरीनाथो विजयते दिग्विजयी सर्वदा

महाराजा प्रद्युम्नशाह

(श्री)

5 ज्यूला बड़ा महाराज श्री जयकीर्तिशाह जी 3 चढ़ाया 2 भंडारा का धैं अणथवाल गांव का भोग कौ दिया था .... कुँवर प्राक्रम शाह जी वजीर जयदेव दतरी, हरिदत्त रतूड़ी, देवान मोहन सिंह रावत वकसी हमीर सिंह मियां, फतेवादरु को नेगी, अनूप सिंह ये कौंको नेगी दान सिंह फन्यौं को नेगी इन्द्र सिंह।

59. खाती, विनीताय (2013) गोरखा आक्रमण का उत्तराखण्ड के जनजीवन पर प्रभाव, हिमालयी इतिहास के विविध आयाम (सम्पादक-गिरजा पाण्डे, हीरा सिंह भाकुनी) आनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली पृ0 178
60. डबराल, शिवप्रसादय (1999)गोरख्याणी-1 पर्वतीय राज्यों का विध्वंश, पूर्वोक्त, पृ0 130

61. डबराल, शिवप्रसादय (1990)उत्तराखण्ड के अभिलेख एंव मुद्रा, पूर्वोक्त, पृ0 253-254
62. वही, पृ0 254
63. वही, पृ0 254
64. ट्रेल, जी0 डब्ल्यू0य (1851), स्टेस्टिकल स्केच ऑफ कुमायूँ, लन्दन, पृ0 25
65. डबराल, शिवप्रसादय (1983)उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग-5, वीरगाथा प्रकाशन दुगड्डा, पृ0 512

    सील - फरेजन
    साहब बहादुर
    हुकुम फरेजन साहेब बहादुर का
    ३३३णश्री कमलेश्वर जी

    महंत प्रसाद पुरी कौं आगे (श्री कमलेश्वर जी) ३३ण भोगपूजा सदावर्त का जगा जीले गढराज तमामैं गाऊ जगा जमीन बगीचा और दर दस्तुर गढ के राजौं के बसत सै गोरषा के अमल तैं चली आया है उसी मुजब आमदनी उसूल करकैं ३३ (श्री कमलेश्वर जी)कौं सपूज्य रषणा सदावर्त चलावणा शातर जमा रषणा तुमसैं कीसी बात का तकरार नहीं होगा समवत् 1872 का सौण 10 गते

66. वैष्णव, शालिग्रामय (2010) श्री उत्तराखण्ड रहस्य, पूर्वोक्त, पृ0 59
67. डबराल, शिवप्रसाद, श्री उत्तराखण्ड यात्रा-दर्शन,प्रकाशक श्री विशाल मणि शर्मा, विशाल कार्यालय मु0 पो0 नारायणकोटि चमोली (रूद्रप्रयाग) उत्तराखण्ड, पृ0 455
68. डबराल, शिवप्रसादय (1999) टिहरी गढवाल राज्य का इतिहास-1, पूर्वोक्त, पृ0 95
69. कमलेश्वर में स्थित शिलापट में निम्नांकित महंतों की सूची दी गयी है-

महंत का नाम	नियुक्ति-वर्ष
1 श्री 108 महंत निर्मल पुरी शिष्य केशव पुरी	सन् 1787 ई0
2 श्री 108 महंत प्रसाद पुरी शिष्य निर्मल पुरी	सन् 1793 ई0
3 श्री 108 महंत समशेर पुरी शिष्य पिताम्बर पुरी	सन् 1818 ई0
4 श्री 108 महंत गम्भीर पुरी शिष्य प्रसाद पुरी	सन् 1819 ई0
5 श्री 108 महंत बलभद्र पुरी शिष्य शिवराम पुरी	सन् 1840 ई0
6 श्री 108 महंत हनुमंत पुरी शिष्य बलभद्र पुरी	सन् 1851 ई0
7 श्री 108 महंत हीरा पुरी शिष्य दरयाव पुरी	सन् 1871 ई0
8 श्री 108 महंत दयाल पुरी शिष्य हनुमंत पुरी	सन् 1879 ई0
9 श्री 108 महंत ललिता पुरी शिष्य दयाल पुरी	सन् 1919 ई0
10 श्री 108 महंत कमलानन्द पुरी शिष्य गुलाब पुरी	सन् 1931 ई0
11 श्री 108 महंत गोविंद पुरी शिष्य कमलानन्द पुरी	सन् 1963 ई0
12 श्री 108 महंत आशुतोष पुरी शिष्य गोविंद पुरी	सन् 2003 ई0

70. पन्ना लाल, अनुवादक प्रकाश थपलियालय (2008), कुमाऊँ में प्रथागत कानून, उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालयन संचेतना संस्थान, आदिबद्री चमोली, उत्तराखण्ड, पृ0 73
71. डबराल, शिवप्रसादय (1999), टिहरी गढवाल राज्य का इतिहास-1, पूर्वोक्त, पृ0 45,46
72. वही, पृ0 61
73. डबराल, शिवप्रसाद, (1983), उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग-5, पूर्वोक्त, पृ0 511
74. वही, पृ0 511
75. पुरी मुन्नीदेवी, (वरिष्ट नागरिक कमलेश्वर श्रीनागर गढवाल उत्तराखण्ड), उम्र 80 वर्ष, साक्षात्कार, दिनांक 10 जनवरी, 2018
76. पुरी, लक्ष्मी, (स्थानीय नागरिक कमलेश्वर श्रीनागर गढवाल उत्तराखण्ड), उम्र 65 वर्ष, साक्षात्कार, दिनांक 27 मार्च 2017

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

चित्रकूट की ऐतिहासिकता एवं भौगोलिक परिक्षेत्र

* प्रज्ञा मिश्रा

सारांश- *चित्रकूट की प्राचीनता, अनादिता पावनता एवं आध्यात्मिकता से इसकी ऐतिहासिकता का परिज्ञान तो होता ही है। कालान्तर में भी इसकी ऐतिहासिकता के कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं। विशेषतः सम्राट् हर्ष (वि.सं. 952-928) के बाद भारत का राजनीतिक मंच विशेष क्षुब्ध रहा है। मध्य देश में स्थित होने के कारण इस उथल-पुथल से चित्रकूट अवश्य ही प्रभावित होता रहा है। पार्श्ववर्ती कालिंजर, अजयगढ़, पन्ना और महोबा राज्य राजनीतिक संघर्षो के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। अतः चित्रकूट भी इससे अछूता नहीं रहा। प्राप्त शिलालेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि 525 ई. तक गुप्त साम्राज का यहाँ आधिपत्य था। सम्राट् हर्ष ने अपने शासनकाल में यहाँ ब्राह्मण-जातीय किसी सामन्त को नियुक्त किया था। इसके बाद चन्देल राजाओं का इस क्षेत्र में अधिकार रहा। 13वीं शताब्दी आते-आते इस क्षेत्र में बघेलों का अधिकार हो चुका था जो अन्तिम बघेला राजा रामचन्द्र के समय तक रहा। रीवा नरेश राजा रामचन्द्र ने 1559 ई. में अकबर का दासत्व स्वीकार कर लिया और तब से औरंगजेब के समय तक मुगलों का अधिकार इस क्षेत्र में बना रहा। गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में इस म्लेच्छ शासन का यत्र-तत्र संकेत मिलता है। सन् 1683 ई. में औरंगजेब ने चित्रकूट की यात्रा की और बालाजी मन्दिर के बाबा बालकदास के आध्यात्मिक प्रभाव में आकर गाँव तथा 330 बीघा जमीन मंदिर के नाम माफी प्रदान की थी। आज भी मन्दिर में इस आशय का दानपत्र उपलब्ध है। इस समय तक चित्रकूट के आस-पास अनेक गाँव बस गये थे।*

मुख्य शब्द- पावनता, आध्यात्मिकता, परिज्ञान, तपस्थली

चित्रकूट नाम का गाँव भी बस चुका था, क्योंकि औरंगजेब के दानपत्र में इस गाँव का भी उल्लेख है। उस समय तक बालाजी का मन्दिर भी निश्चित ही बन चुका होगा, क्योंकि मन्दिर बनवाने का इस सनद में कहीं उल्लेख नहीं है। मन्दिर के खर्च और ठाकुर जी के भोग-राग के लिए औरंगजेब की दी हुई यह माफी आज भी मन्दिर को प्राप्त है।

औरंगजेब के आगमन के कुछ दशक पूर्व संत तुलसीदास ने इस क्षेत्र में रहकर तपसाधना की थी। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने चित्रकूट का पर्याप्त समसामयिक परिचय भी दिया है। तुलसीदास के अनुसार चित्रकूट का आध्यात्मिक महत्त्व सर्वोपरि है। गोस्वामी तुलसीदास के समय तक चित्रकूट की प्राकृतिक रमणीयता में भी कोई कमी नहीं आई थी। तुलसीदास ने अपने ग्रंथों में चित्रकूट के मनोहारी नैसर्गिक सौन्दर्य का विशद एवं सजीव चित्रण किया है। रामचरितमानस और गीतावली इस दृष्टि से विशेष दृष्टव्य है-

* अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, म.गाँ.चि.ग्रा.वि.वि., चित्रकूट (सतना) म.प्र.

झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिविध ताप हर त्रिविध बयारी।।
विरच बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भांती।।
सुन्दर शिला सुखद तरु छाही। जाइ बरन वन छवि केहिं पाहीं।।
सरनि सरोरुह जब बिहंग कूजत गुंजत भृंग।
बैर विगत बिहरत विपिन मृग विहंग बहुरंग।।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में कोल-किरातों द्वारा श्रीराम तथा भरत आदि के स्वागत किये जाने का जो संकेत दिया है उससे सिद्ध होता है कि यहाँ 16वीं शताब्दी तक छोटी-छोटी बस्तियाँ बसने लगीं थीं। सम्भवतः ये आदिवासी जातियाँ दक्षिण से आई हों। गोस्वामी तुलसीदास के समय तक यहाँ मुनियों के समूह के समूह रहने लगे थे। विशेष पर्वों या अवसरों पर संत सम्मेलन एवं आध्यात्मिक चर्चाएँ होती थीं। निम्नांकित दोहा इस बात का स्पष्ट प्रमाण है-

चित्रकूट के घाट पर, भई संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसै, तिलक देत रघुवीर।।

नगर एवं ग्राम-नियोजन-विभाग, उत्तर प्रदेश ने अपने एक सर्वेक्षण के आधार पर निर्णय लिया है कि तुलसी के समय तक चित्रकूट में विभिन्न वैष्णव-मतावलंबियों के सात अखाड़ों की स्थापना हो चुकी थी। उस समय तक चित्रकूट धर्माचार्यों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र बन चुका था। 16वीं सदी के अन्त में शुद्धाद्वैत-वाद के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने दिग्विजय-यात्रा-क्रम में चित्रकूट की यात्रा की और यहाँ रहकर श्रीमद्भागवत-पुराण का तथा वाल्मीकि रामायण का पाठ किया था।

महाप्रभु की 84 बैठकों में से एक बैठक चित्रकूट में भी है। कामदगिरी परिक्रमा में स्थित यह बैठक बल्लभ सम्प्रदाय में मान्य पुनीत स्थल है। तुलसी के समय तक इस क्षेत्र के कुछ विशिष्ट दर्शनीय स्थलों में भ्रमण की परम्परा चल पड़ी थी। मानस यत्र-तत्र कामदगिरि, स्फटिकशिला, अनसूया-आश्रम, विराध-कुण्ड, शरभ -आश्रम, भरतकूप आदि का परिचय मिलता है। इस समय तक चित्रकूट पर्वत को रामगिरि के अतिरिक्त रामशैल, कामदगिरि तथा कामतानाथ आदि नाम भी मिल चुके थे। सम्प्रति राममोहल्ला तथा मुख्य द्वार एवं प्रमुख द्वार भी नाम प्रचलित हो गये हैं। इस प्रकार तुलसी-साहित्य से चित्रकूट-विषयक विकासशील बातों का संकेत मिलता है।

तुलसी के समकालीन कवि रहीम भी कुछ समय तक चित्रकूट में रहे। चित्रकूट के सम्बन्ध में उनका यह दोहा प्रसिद्ध है-

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश।।

रहीम के जीवन से सम्बन्धित एक दंतकथा प्रचलित है कि रहीम ने चित्रकूट में किसी भड़भूजें के यहाँ कुछ दिनों तक भाड़ झोंकने का कार्य किया और अपने दुर्दिन काटे। यदि वास्तव में यह घटना रहीमदास और चित्रकूट से सम्बन्धित एवं सत्य है तो निश्चित है कि इस समय तक चित्रकूट की केन्द्रीय बस्तियाँ पर्याप्त विकसित हो चुकी थीं क्योंकि उस समय तक भड़भूँजा की भट्ठी प्रायः विकसित गाँवों में ही होती थी। वैसे भी इन बस्तियों के अध्ययन से पता चलता है कि इनकी स्थिति काफी समय पहले से है-भले ही इनका प्रारम्भिक स्वरूप बहुत सामान्य रहा हो।

सन् 1688 ई. में बुन्देला राजा छत्रशाल ने मुगल सेनापति अब्दुल हमीद को हराकर इस क्षेत्र में अधिकार किया और पन्ना को अपनी राजधानी बनाया। अपुष्ट प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि इसी समय तरौंहा (चित्रकूट) दुर्ग के अधिपति (राजा) रामहृदय के यहाँ कुछ दिनों तक महाकवि भूषण भी रहे हैं। प्रसिद्धि है कि भूषण की उपाधि भी उन्हें यही मिली थी यहीं से वे छत्रशाल के दरबार में गये थे। इस सन्दर्भ में उनकी रचना 'शिवराज भूषण' में एक पद भी मिलता है-

कुल सुलंकि चित्रकूट पति, साहस-शील-समुद्र।
भूषण कवि पदवी दई, हृदय रामसुत रुद्र।।

इससे तो पता चलता है कि सोलकी वंश के चित्रकूट के स्वामी हृदयराम के पुत्र रुद्र के समय में भूषण की पदवी कवि भूषण को प्राप्त हुई थी। कुछ भी हो महाकवि भूषण का चित्रकूट क्षेत्र से लगाव था तथा यहाँ पर वे भी रहे हैं, यह तथ्य सुनिश्चित एवं निर्विवाद है।

हिन्दू-धर्म और संस्कृति का विशेष प्रेमी पन्ना-राज-परिवार चित्रकूट के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। कहा जाता है कि कामदगिरि-परिक्रमा का पक्का मार्ग सर्वप्रथम महाराजा छत्रशाल की धर्मपत्नी महारानी चन्द्रकुँवरि ने ही (1752 ई.) में बनवाया था जिसका पुनरुद्धार महाराज अमानसिंह के काल में हुआ। महाराज अमानसिंह (18वीं शती का उत्तरार्ध) ने चित्रकूट में अनेक मठों, मन्दिरों और घाटों का निर्माण कराया और उसमें झाकियाँ लगायी। महाराज अमानसिंह ने ही सर्वप्रथम महन्त श्रीचरणदास को यहाँ का महन्त नियुक्त किया था। महन्त चरणदास ने इस बस्ती का नाम जयसिंहपुर से बदलकर सीतापुर रखा था। 19वीं सदी के पन्ना नरेश हिन्दूपत ने भी उदारवंश परम्परा का निर्वाह किया और धीरे-धीरे चित्रकूट में इस राजघराने द्वारा बनवाये गये मठ, मन्दिरों की संख्या बहुत बढ़ गयी। इस जनप्रिय राजघराने से सम्मान पाने के कारण इस अवधि में चित्रकूट का महत्त्व भी जनसामान्य में विशेष रूप से प्रचारित हुआ। अतः अब चित्रकूट केवल ऋषियों-मुनियों की तपस्थली नहीं रह गया अपितु हजारों-लाखों श्रद्धालुओं की श्रद्धा का केन्द्र भी बन गया।

अंग्रेजी शासनकाल में चित्रकूट के समीपवर्ती प्रायः सभी सामंत जागीरदास व जमींदार चित्रकूट के भक्त होते रहे। अतः जनमानस में इस तीर्थ का महत्व क्रमशः बढ़ता गया। धीरे-धीरे प्रति अमावस्या को यहाँ मेला लगने लगा और चित्रकूट अपार जनसमूह की श्रद्धा का केन्द्र बन गया। इधर तुलसीदास के मानस की अर्द्धालियाँ भी लोगों के होठों में आने लगी-

कामदभे गिरि रामप्रसादा, अवलोकत अपहरत विषादा।।
तथा
चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जाप कहि, तुलसी अभिमत देत।।

आदि मान्यताओं ने जनमानस में इस महिमाशाली तीर्थ के अमिट गौरव की प्रतिष्ठापना कर दी। चित्रकूट को लोकप्रिय बनाने में यहाँ के संत-महापुरुषों की अलौकिक विभूतियों की भी मुख्य भूमिका रही है। इनमें अनसूया आश्रम के सिद्ध बाबा और परमहंस स्वामी परमानन्द जी, पीलीकोठी के श्री अखण्डानन्द जी, जानकीकुण्ड के श्री रणछोड़दास

जी तथा नयागाँव आचार्य मन्दिर के आचारी जी आदि प्रमुख रहे हैं।

चित्रकूट मध्य प्रदेश के उत्तर पूर्व में सतना जनपद तथा उत्तर प्रदेश के दक्षिण पूर्व कर्वी जनपद की सीमा पर स्थिति है। चित्रकूट क्षेत्र का पूर्वी और दक्षिणी भाग जो मध्य प्रदेश की सीमा में आता है, विन्ध्य पर्वतमाला से घिरा है तथा उत्तर प्रदेश में उत्तर-पश्चिम का मैदान भाग है। सतना से 75 किमी. उत्तर तथा इलाहाबाद से 130 कि.मी. पश्चिम में स्थित चित्रकूट बाँदा से 70 किमी. पूर्व में है। चित्रकूट झांसी-मानिकपुर रेलमार्ग पर स्थित चित्रकूटधाम (कर्वी) स्टेशन से जुड़ा है तथा मध्यप्रदेश की ओर मझगवाँ रेलवे स्टेशन, इसे देश के सभी बड़े नगरों से जोड़ता है। सड़क मार्ग से भी चित्रकूट भारत के हर बड़े नगर से संलग्न है। चित्रकूट वस्तुतः एक गाँव या नगर नहीं अपितु सैकड़ों वर्ग किमी. में विस्तृत अनेक सुरम्य दर्शनीय पौराणिक पुण्यस्थलों से युक्त एक क्षेत्र है। तथापित सीतापुर (बाँदा) उत्तर प्रदेश तथा नयागाँव (सतना) मध्यप्रदेश मन्दाकिनी के दोनों तटों पर बसे यही दोनों गाँव चित्रकूट की केन्द्रीय बस्तियाँ हैं।

आधुनिक भौतिक विकास के प्रभाव से चित्रकूट भी अछूता नहीं रहा। मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश दो राज्यों की सीमाओं में स्थित होने से चित्रकूट के विकास में दोनों राज्य सरकारों ने रुचि दिखाई है और इस लोकप्रिय तीर्थ को पर्यटन केन्द्र के रूप में विकसित करने का प्रयास किया है। सम्प्रति दोनों राज्यों ने चित्रकूट में अपने-अपने विकास प्राधिकरण के माध्यम से अनेक विकास कार्यक्रम लागू कर रखे हैं। दोनों प्रान्तों के पर्यटन विभाग भी चित्रकूट को सुविधा सम्पन्न पर्यटन केन्द्र का रूप देने में तत्पर हैं। फलस्वरूप दैनिक जीवन की सामान्य सुविधाएँ यथा परिवहन, आवास, जल, विद्युत, चिकित्सा, सुरक्षा एवं संचार आदि सुलभ करा दिया गया है। कुल मिलाकर आज का चित्रकूट एक आरण्यक तीर्थ और सुविकसित पर्यटन स्थल दोनों का मिला-जुला रूप है जहाँ वर्ष भर प्रतिदिन आने वाले श्रद्धालुओं और पर्यटकों की भीड़ बनी रहती है। चित्रकूटधाम नगरपालिका कर्वी (उ.प्र.) क्षेत्र में तथा विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण मध्यप्रदेश क्षेत्र में सफाई रोशनी आदि नगरपालिका दायित्वों का निर्वहन करते हैं। चित्रकूट की भौगोलिक स्थिति से सम्बन्धित अन्य तथ्य निम्नलिखित हैं-

जलवायु	:	उष्ण कटिबंधीय
समुद्र तल से ऊँचाई	:	लगभग 300 फीट
वार्षिक वर्षा	:	लगभग 1000 मिमी.
तापमान	:	मई-जून में अधिकतम 450से. से 500 से. तक तथा दिसम्बर-जनवरी में न्यूनतम 100 से.
भाषा	:	हिन्छी
भ्रमण के अवसर	:	सामान्य वर्ष भर प्रतिदिनि, विशेषतया वर्षा ऋतु चित्रकूट सब दिन नीको लागत। वर्षा प्रवेश गिरिवन, देखत मन अनुरागत।। तुलसीदास

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. स्वयं का अधिकार।
2. म.प्र. तथा उ.प्र. पर्यटन विभाग के प्राप्त जानकारी।

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

मनोहरश्याम जोशी के कथा-साहित्य में वर्णित ह्रासोन्मुख जीवन-मूल्य

* मृदुल जोशी
** अनिका सिंह

सारांश- *मनोहरश्याम जोशी जी एक प्रबुद्ध साहित्यकार है, जिन्होंने समकालीन जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया है। इनका लेखन वर्तमान समय में पीढ़ी दर पीढ़ी हो रहे बदलावों को अभिव्यक्त करता है। आधुनिक युग में मनुष्य ने पूर्ण रूपेण अपने मूल्य खो दिए हैं। वह भौतिक चकाचौंध की दुनिया में अपने उन जीवन-मूल्यों को खोता जा रहा है, जो हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।*

मुख्य शब्द- जीवन-मूल्य, समकालीन जीवन, श्रेष्ठ, मनोदशा

मूल्य वह संपत्ति है, जिन्हें मनुष्य के जीवन के साथ जोड़ दिया जाता है। जीवन में मूल्यों से ही आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। इनका जीवन में अनुपालन करके ही मनुष्य स्वयं को स्थापित कर सकता है। व्यक्ति के द्वारा अनैतिक कार्य करने से समाज उसे उपेक्षित करता है। इसका असर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर पड़ता है। आधुनिक युग में पाश्चात्य प्रभाव के कारण बदलते परिवेश में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित मूल्यों का ह्रास हो रहा है। युग परिवर्तित होने से समाज में परिवर्तन होता है, जिससे मनुष्य की मनोदशाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। बदलते समय के साथ नवीन मूल्य पुरातन मूल्यों की जगह ले लेते हैं। नवीन मूल्य समाज में कहीं हमें श्रेष्ठता प्रदान करते हैं, तो कहीं हीनता। लेखक मनोहरश्याम जोशी ने पाठकों का ध्यान इस ओर खींचा है कि किस तरह आधुनिक युग के युवाओं की मानसिकता में परिवर्तन हो रहा है और किस तरह परंपरागत मूल्यों का ह्रास हो रहा है।

लेखक ने 'कुरू कुरू-स्वाहा' उपन्यास में संवेदन शून्यता को दर्शाया है। इस उपन्यास में दर्शाया गया है कि पैसों की खातिर कैसे बाप अपनी बेटियों से जिस्म का धंधा करवाता है। बाप-बेटी के पवित्र सम्बन्ध आज कलंकित हो गए हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"हमने इधर चौपाटी में नए-नए आए एक अन्य 'परिवार' की चर्चा की जिसमें एक अदद 'बाप' और दो उपकिशोरी बेटियाँ थीं। श्वेतकेशा के एक ग्राहक ने आपबीती का हवाला देकर बताया कि इन छोकरियों को यह दलाल बढ़िया होटेल का फेमिली केबिन में ही ले जान देती। उधर ये साली आइसक्रीम-वाइसक्रीम खूब खाती। थोड़ा कीस-वीस करने देती। लेकिन तुम जास्ती आगल बढ़ेगा तो एक बोलेगी, अंकल प्लीज ! दूसरा बोलेगी,

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कन्या गुरूकुल परिसर, गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
** शोध छात्रा (हिन्दी), गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अंकल, मैं शोर करूँगी, अपना डैडी को बुला लेगी अभी। डैडी साला बाहर बैठकर चाय पीता रहता।"[1]

'कसप' उपन्यास में यह दिखाया गया है कि आज के युग में जातिवाद का जहर तेजी से फैला है और धन-ऐश्वर्य सम्मान-प्रतिष्ठा के मापदण्ड बने हैं। इस उपन्यास में नायक उच्च मध्यमवर्गीय ब्राह्मण लड़की मैत्रेयी से प्रेम करता है लेकिन उसके माँ-बाप उसे अछूत ठहराते है क्योंकि वह निम्नवर्गीय ब्राह्मण है और आर्थिक रूप से भी कमजोर है।

नायक की कुण्ठा इन शब्दों में व्यक्त होती है-"बेबी शास्त्री जी की बेटी है, कर्नल साहब की बहन है। इन लोगों का बड़ा-सा घर है इस नगर में। ऊँचा खानदान है। ये 'भीतरी' लोग हैं।.. मैं बड़ी-सी पोटली बाँधकर लाऊँगा और एक दिन के ही लिए सही, दीवाली कर दूँगा इनके मनहूस घरों, इनके मुर्दार शहर में।

मैं जानता हूँ कि मैं तब भी इनके लिए कुछ नहीं होऊँगा। मैं जानता हूँ कि ये मेरी पोटली को भी अछूत घोषित कर देंगे। मैं जानता हूँ कि मेरी बड़ी-से-बड़ी उपलब्धि को यह नगर एक मज़ाक में उड़ा देगा।"[2]

इस कथा में नायक के द्वारा व्यक्त आक्रोश सामाजिक विषमता की ओर संकेतित करता है। मनुष्य जीवन-मूल्यों के प्रति विमुख होता जा रहा है। परंपरागत जीवन-मूल्यों नैतिकता, प्रेम, ईमानदारी, अहिंसा, आदर्शवादिता आदि का स्थान अनैतिकता, द्वेष, धोखाधड़ी, हिंसा, संस्कारहीनता जैसे अवमूल्यों ने ले लिया है।

'कसप' उपन्यास में पात्रों के मध्य द्वेष भावना को दर्शाया गया है। एक-दूसरें के सामने अनुराग की भावना रखते है लेकिन मन ही मन ईर्ष्या का भाव रखते है- "ड़ी.ड़ी. नहीं जानता कि जैसे बब्बन से अपनी यारी के बावजूद व खुद गहरे कहीं ईर्ष्यालु रहा है, वैसे ही दया भी बेबी के प्रति अपने सारे अनुराग के बावजूद ईर्ष्यालु रही है।"[3]

बब्बन कहीं न कहीं डी0डी0 से चिढ़ता था तो दया भी बेबी से इसलिए द्वेष रखती थी क्योंकि ड़ी.ड़ी. बेबी की वजह से दया से विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करता रहा था।

आज के युग में अनैतिकता यौन विकृति के चरमोत्कर्ष पर है आज का समाज दिशाहीन है। समाज की यह सच्चाई लेखक ने भी व्यक्त की है-"नायक-नायिका तब पकड़े गये जब वे और कुछ नहीं पेशाब कर रहे थे एक-दूसरे को देखते हुए, दिखाते हुए, उस सुरम्य और पवित्र स्थल पर।"[4]

अनैतिकता और अश्लीलता के तहत बेबी उर्फ मैत्रेयी (नायिका) का रिश्ता टूट जाता है। परिवार वालों को बदनामी का सामना करना पड़ता है। अनैतिकता के रूप में ही रिश्तों की छवियाँ धूमिल सी होती जा रही हैं। गुलनार और उसके सौतेले पिता के अनैतिक सम्बन्ध इसका एक अन्य उदाहरण है-"क्या तुम समझते हो कि वह मेरा सौतेला पिता, रंगमंच का जीनियस, कभी मेरी मदद करता आगे बढ़ने में ? वह तो मुझे वात्सल्य भाव से भोगता रहता और चाहता कि मैं प्यारी-प्यारी बच्ची बनी रहूँ। उसके बिस्तर की शोभा बढ़ाती रहूँ।"[5]

नैतिकता इस हद तक चुक गयी है कि पिता-पुत्री के सम्बन्ध भी मर्यादाहीन हो गये हैं। वर्तमान समय के सभी रिश्तों में कड़वाहट पैदा हो रही है और दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। सभी सम्बन्धों के प्रतिमान परिवर्तित हो रहे हैं। मैत्रेयी अपने प्रेम सम्बन्ध के लिए

माँ-बाप, भाई-भाभी से दूरी बना लेती है-"रोते हुए, खाँसते हुए, चीखते हुए जानना चाहती है जननी, "क्या मैने इसीलिए बुढ़ापे मैं पैदा की बेटी? यही दिन दिखाने को?"
"शास्त्री जी उठकर चले जा रहे हैं भीतर अपनी पोथियों की शरण में उनका प्रश्न अधिक मौलिक और पुरातन है। मैं ही क्यों पैदा हुआ?"[6]

स्वार्थी दृष्टिकोण परिवार के मानसिक कष्ट से भी अनभिज्ञ रहता है। 'क्याप' उपन्यास में भी नायिका 'उत्तरा' ब्राह्मण है जबकि नायक 'मैं' निम्न जाति का है। उत्तरा के परिवार वाले उसे पढ़ा-लिखाकर कुलीन वर्ग में शादी कराना चाहते है लेकिन वह घर से भाग जाती है-"मैं इतना जानती हूँ कि मैं तुम्हारे साथ तुम्हारी घरवाली बन जाने के लिए अपने घर से भागकर आ गयी हूँ।"[7]

कुछ दिनों बाद पकड़े जाने पर आत्महत्या भी कर लेती है। आजकल के युवाओं की इच्छा पूरी न होने पर वे इस प्रकार का कदम उठा लेते है।

हमज़ाद उपन्यास में शोषण की पराकाष्ठा दिखायी गयी है। टोपन, तिलक और उसके परिवार वालों पर आर्थिक रूप से अहसान दिखाकर उनके विश्वास को जीतता है। जबकि इस अहसान और विश्वास के पीछे केवल धोखा होता है। तिलक के माध्यम से लेखक ने मानवीय संवेदनाओं पर पड़ते आघातों को दिखाया है -"खुदा बन्दों से इतनी ऊँचाई पर बैठा हुआ है कि बन्दों के लिए उसमें बेरूख़ी ही हो सकती है और बेरूख़ी तो सबसे जियाद: चुभने वाली बेरहमी है। बन्दों में तो बेरहमी इस कद्र कूट-कूटकर भरी रहती है कि उसके छिपाने के वास्ते उन्हें रहम के मज़हब और इंसानियत के फ़लसफ़े गढ़ने पड़ते हैं। नादान बच्चों से लेकर सयाने बुजुर्गों तक सभी अपने साथी इन्सानों से बेरहमी करते हुए देखे जा सकते हैं।"[8]

'कौन हूँ मैं' उपन्यास में लेखक ने एक पतिव्रता स्त्री की कहानी को अभिव्यक्ति प्रदान की है। जिसमें एक स्त्री अपने पति के प्रति निष्ठा भाव से आसक्त होती है लेकिन उसका पति एक चरित्रहीन वेश्या से सम्बन्ध स्थापित करता है। विभावती के पति का उसके प्रति रूखा व्यवहार उसको हमेशा तनाव में रखता है। उपन्यास में पति-पत्नी के मध्य आपसी प्रेम, सौहार्द आदि भावों की अपेक्षा घृणा, कर्तव्यहीनता, असंतोष को दिखाया गया है। उपन्यास में सामाजिक कुप्रथा बाल-विवाह को भी लेखक ने पाठक के समक्ष अभिव्यक्त किया हैं। विभावती का भाई इस कुप्रथा का विरोध करता हैं लेकिन माँ के आगे उसकी एक नहीं चलती। विभावती को पढ़ाई बीच में छोड़कर अनपढ़ व्यक्ति से शादी करनी पड़ती है - "दादा झुँझलाकर बोले कि समझ में नहीं आता कि विभा को बालिका वधू बनाने के लिए क्यों इतने व्यग्र हो उठे हैं आप लोग। माँ बोली कि विभा तेरह वर्ष की हो चुकी है, कोई गोद की बच्ची नहीं है वह।"[9]

'वधस्थल' उपन्यास जोशी जी की अपूर्ण कृति है, जिसको वें अपने जीवन काल में पूरा नहीं कर सके। 'वधस्थल' उपन्यास कम्बोडिया के विध्वंस पर आधारित हैं । इस उपन्यास में नायक ने अपने पिता के द्वारा माँ के साथ किये धोखे को अभिव्यक्ति दी है। अभिनव के मन में अपने पिता के प्रति तनिक भी श्रद्धा नहीं हैं क्योंकि उन्होंने एक नर्स के लिए न तो अपनी पत्नी का सही से ख्याल रखा और न ही उसका। पत्नी के मरने के बाद पिता ने उसी नर्स से विवाह भी रचा लिया। उसके बाद अभिनव का अपने पिता के प्रति शेष बचा हुआ लगाव भी समाप्त हो गया। अभिनव की माँ दूसरे बच्चें के जन्म के समय

हुई मौत से मरी थी। दूसरा बच्चा अपनी मौत के साथ माँ की मौत को भी साथ लाया था। अभिनव के मन में यह बात स्थिर हो गयी थी इसलिए वह स्वयं भी पिता नहीं बना। उसने न जाने कितनी लड़कियों से विवाह रचाया लेकिन किसी को मातृत्व सुख नहीं दिया।

"इनमें से तीस स्त्रियाँ उनके जीवन में आ चुकी थी और 31 वीं को ले आने के लिए वह सम्प्रति व्यग्र थें । वें तीसों उनके प्रति समर्पिता थीं। सभी ने उनकी जीवन संगिनी बनने की लालसा प्रकट की थी। किन्तु अभिनव ने उनमें केवल चार के साथ विधिवत विवाह रचाने की अनुकम्पा की थी, शेष के यहाँ वह निःशुल्क मेहमान की हैसियत से रहे थे।"[10]

यहाँ कुण्ठित व्यक्तित्व के तहत जन्मी विकृत मानसिकता की अभिव्यक्ति हुई है।

मनोहर श्याम जोशी जी ने 'सिल्वर वेडिंग' कहानी में भी ह्रासोन्मुख जीवन-मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यशोधर बाबू समझौतावादी व्यक्ति है। पारम्परिक मूल्यों व नवीन मूल्यों के बीच समझौता बनाये हुए हैं। उनकी पत्नी और बच्चे पूरी तरह से आधुनिक बन चुके हैं। बच्चों का अपने पैरों पर खड़ा होना उन्हें एक तरफ खुशी प्रदान करता हैं तो दूसरी तरफ दुःख। पत्नी और बच्चों के आधुनिक बनने से उनके बीच अपनापन समाप्त होता जा रहा है। बच्चों के मन में पिता के प्रति आदर-सम्मान का भाव शेष नहीं बचा है। यशोधर बाबू की इच्छा है कि बच्चे कुछ भी कार्य करने से पहले उनसे सलाह लें । लेकिन बच्चे उन्हें आधुनिक विचारों व ज्ञान से अनभिज्ञ मानते हैं। यशोधर बाबू के माध्यम से लेखक ने पुरानी पीढ़ी की दयनीय स्थिति को अभिव्यक्त किया है।

''मानो न मानो, झूठे मुँह से सही-एक बार पूछ तो लिया करो, ऐसा कहते हैं यशोधर बाबू और बच्चें यही उत्तर देते हैं कि बब्बा आप तो हद करते हैं ! जो बात आप जानते ही नहीं, आप से क्यों पूछें ?"[11]

माँ-बाप बच्चों को इसलिए पढ़ाते हैं कि वे सुशिक्षित संस्कारी व सभ्य इंसान बने, लेकिन पश्चिमी अनुकरण के प्रभाव से वे संस्कारहीन व असभ्य बनते जा रहे हैं। यशोधर बाबू अपनी कमाई से बच्चों को पढ़ाते-लिखाते हैं कमाने योग्य बनाते हैं लेकिन इस कमाई को वें केवल अपने उपयोग की वस्तु मानते हैं। लेखक ने उनके बेटे के माध्यम से संस्कारहीनता को उजागर किया है- "यही सही है कि वेतन स्वयं बेटे के अपने हाथ में नहीं आता, 'एकाउन्ट ट्रान्सफर' द्वारा बैंक में आता है लेकिन क्या बेटा बाप के साथ 'ज्वाइन्ट एकाउन्ट नहीं खोल सकता था? झूठे मुँह से ही सही, एक बार ऐसा कहता तो ! तिस पर बेटे का अपने वेतन को अपना समझते हुए बार-बार कहना कि यह काम मैं अपने पैसे से कर रहा हूँ आपके से नहीं, जो आप नुक्ताचीनी करें।"[12]

"और ऐसा भी नहीं कहता कि लीजिए पिताजी, मैं आपके लिए यह टीवी ले आया हूँ। कहता यही है कि यह मेरा टीवी है समझे, इसे कोई न छुआ करे।"[13]

लेखक ने नवीन पीढ़ी के मन में अपने बड़े-बुजुर्गों के प्रति घटते आदर-सम्मान को अभिव्यक्त किया है। निष्कर्षतः यह सत्य है कि मनोहरश्याम जोशी जी ने समाज में हो रहे ह्रासोन्मुख जीवन-मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रेम, अहिंसा, नैतिकता, अपनापन आदि मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। इनके बिना मानव-जीवन बंजर भूमि की तरह है, जहाँ केवल झाड़ियाँ ही उग सकती है, लहलहाती फसल नहीं।

लेखक कथा साहित्य के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के जीवन की दुर्दशा दिखाते हैं और चाहते हैं कि युवा पीढ़ी में बदलाव आये और वह अपने परम्परागत जीवन मूल्यों की

ओर लौटे।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. 'कुरू कुरू स्वाहा', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-7-8, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली।
2. 'कसप', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-130, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली।
3. वही, पृ0-164
4. 'कसप', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-213, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली।
5. वही, पृ0-160
6. 'कसप', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-220, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली।
7. 'क्याप', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-79, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली।
8. 'हमज़ाद', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-70, किताबघर प्रकाशन 4855-56/24, अन्सारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली।
9. 'कौन हूँ मैं', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-62, वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली।
10. 'वधस्थल', मनोहरश्याम जोशी, पृ0-40, राष्ट्रीय, पुस्तक न्यास, भारत।
11. मनोहरश्याम जोशी, मनोहरश्याम जोशी की सम्पूर्ण कहानियाँ, पृ0-35, वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली।
12. मनोहरश्याम जोशी, मनोहरश्याम जोशी की सम्पूर्ण कहानियाँ, पृ0-36, वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली।
13. वही, पृ0-36

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

नारद भक्ति सूत्र का वैशिष्ट्य

* वेद प्रकाश मिश्र
** संतोष कुमार शर्मा

सारांश– *इस चराचर जगत के कण–कण में जिस प्रकार परमपिता परमेश्वर की सत्ता विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार वेद, शास्त्र, पुराण, उपपुराण एवम् ऐतिहासिक धार्मिक ग्रन्थ देवर्षि नारद के उपदेशों, सिद्धान्तों और उनके चरित्रों से ओतप्रोत हैं। आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण से लेकर नारदपुराण तक सभी पुराणों में और उप पुराणों में देवर्षि नारद की महिमा का गुणगान है। चाहे भागवत धर्म के अनादि सिद्धान्त ग्रन्थ नारद पांचरात्र को लीजिये, चाहे नारद गीता को या भक्तिसूत्रों को सर्वत्र देवर्षि नारद का ज्ञानोपदेश सर्वव्यापी प्रतीत होता है। इतना ही नहीं ज्योतिषशास्त्र के मूल सिद्धांत सूर्यसिद्धान्त, सूर्यसंहिता एवं सूर्यहोराशास्त्र को विचार पूर्वक देखने से उन सबके अन्तस्तल में भी देवर्षि नारद के ज्ञानामृत का स्रोत ही प्रवाहित होता हुआ दिखाई पड़ता है। अतएव यह कहा जाये कि धार्मिक संस्कृत–साहित्य एवं प्राचीन ज्योतिषशास्त्र से देवर्षि नारद के ज्ञानोपदेश, उनके सिद्धान्त और कथाओं को निकाल दिया जाये तो समस्त वाड्मय सारहीन हो जायेगा, इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। मेरे इस शोध पत्र का विषय नारद भक्ति सूत्र का वैशिष्ट्य वर्णन प्रस्तुत हैंः– अज्ञान के नाशक और नर–नारायण से प्राप्त या नारायण सम्बन्धी भक्ति के विस्तारक देवर्षि नारद ब्रम्हाजी के मानसपुत्र कहे गये है। उन्हें अपने पिता से सभी प्रकार के शिक्षा ग्रहण की ही है पर वे भगवान नारायण के शिष्य भी हैं।*

मुख्य शब्द– चराचर , जगत, ज्ञानामृत, सारहीन, भक्ति

श्रीमद्‌भागवत में उल्लेख प्राप्त होता है कि ब्रम्हाजी ने देवर्षि नारद को श्रीमद्‌भागवत का उपदेश देने के उपरान्त आदेशित करते हुए कहते हैं कि -

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्।
संग्रहोघ्यं विभूतीनां त्वमेतद् विपुलीकुरू।।
यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय।।[1]

अर्थात् 'यह भागवत नामक पुराण है जिसका मुझे भगवान् नारायण ने उपदेश दिया था। इसमें नारायण की विभूतियों का वर्णन है। अब तुम इसका विस्तार करो, किन्तु

* प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डॉ.सी.वी. रामन् विश्वविद्यालय करगी रोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)
** शोध छात्र (पी.एच.डी.), डॉ.सी.वी. रामन् विश्वविद्यालय करगी रोड कोटा, बिलासपुर।

विस्तार करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा भगवान श्री हरि में मनुष्यों की भक्ति उत्पन्न हो वैसे संकल्प से इसका वर्णन किया जाये।' भक्ति देवी के सम्मुख भक्ति के विस्तार के लिए देवर्षि नारद प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं -

कलिना सदृशः कोर्ध्पि युगो नास्ति वरानने।
तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने।।[2]

हे भक्तिदेवी! भक्ति प्राप्ति के लिए कलियुग के समान दूसरा कोई नहीं है। अर्थात् इस कलयुग में मै घर-घर में यहां तक कि प्रत्येक व्यक्ति में आपकी प्रतिष्ठा करूंगा।

अतः अपने पिता और गुरू ब्रम्हाजी का आदेश तो देवर्षि नारद ने स्वीकार किया ही था साथ ही अब वे भक्ति देवी से संकल्पित होकर भक्ति के विस्तार में उन्होनें स्वयं को लगाया। नारद पुराण में नारद की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 'नरस्येदं नारं ज्ञानम्' नर या नारायण सम्बन्धी ज्ञान 'नार' कहलाता है 'नार' ददाति इति नारदः ज्ञान के दाता को नारद कहते हैं। नारद वेदो के ज्ञाता एवं निश्छल भक्ति के परम आचार्य हैं। देवर्षि नारद का स्मरण मात्र ही हृदय में भक्ति का पुष्प पल्लवित कर देता हैं। स्कंद माहेश्वरी कुमारिका नामक ग्रंथ में एक बार भगवान श्री कृष्ण में नारद जी के गुणों की प्रशंसा करते हुए राजा उग्रसेन से कहा था-

अहं हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम्।
महेन्द्रगदितेनैव स्तोत्रेण श्रणु तन्नुप।।
उत्संगाद्ब्रह्णो जातो यस्ताहन्ता न विद्यते।
अगुप्तश्रुतिचारित्रं नारदं तं नमाम्यहम्।।
कामाद्वा यदि वा लोभाद् वाचं यो नान्यथा वदेत्।
उपास्यं सर्वजन्तूनां नारदं तं नमाम्यहम्।।
अध्यात्मगतितत्वज्ञं ज्ञानशक्तिं जितेन्द्रियम्।
ऋजुं यथार्थवत्तारं नारदं तं नमाम्यहम्।[3]

''मैं देवराज इन्द्र द्वारा किये गए स्त्रोत से दिव्यदृष्टि युक्त श्री नारदजी की सदा स्तुति करता हूं। वह स्त्रोत श्रवण कीजिए - जो ब्रम्हाजी की गोद से जन्म लिए है, जिनके मन में अहंकार नहीं है, जिनका शास्त्र ज्ञान और चरित्र किसी से छिपा नहीं है, ऐसे देवर्षि नारद जी को मेरा प्रणाम हैं। जिनमें व्याकुलता, क्रोध, चंचलता और भय का सर्वथा अभाव है, जो धीरे होते हुए भी दीर्घसूत्री नहीं है, उन नारद जी को प्रणाम करता हूं। जो कामना अथवा लोभवश झूठी बात मुंह से नहीं निकालते और समस्त प्राणी जिनकी उपासना करते है, वह नारद जी मेरा प्रणाम स्वीकार करे। जो अध्यात्म गति के तत्व को जानने वाले, ज्ञानशक्तिसम्पन्न तथा जितेन्द्रिय है, जिनमें सरलता भरी है तथा जो यथार्थ बात कहने वाले है, उस परम तत्व नारद जी को मैं प्रणाम करता हूं। नारद जी के अतुलनीय गुणों का बखान करते हुए भगवान गोविन्द आगे कहते हैः-

सुखशीलं सुसंवेषं सुभोजं भाखरं शुचिम्।
सुचक्षुषं सुवाक्यं च नारदं प्रणमाम्यहम्।।
कल्याणं कुरूते वाढं पापं यस्मिन्च विद्यते।
न प्रीयते परार्थेन योघ्सौ तं नौमि नारदम्।।
वेदस्मृतिपुराणोक्तं धर्मयोनित्यामास्थितः।

प्रियाप्रियविमुक्तं नारदं प्रणमाम्यहम्।।
अशनरदिष्वलिप्तं च पण्डितं नालसं द्विजम्।
बहुश्रुतं चित्रकथं नारदं प्रणाम्यहम्।।[4]

जो तेज, यश, बुद्धि नय, विनय, जन्म तथा तपस्या सभी दृष्टियों से बढ़े है, जो प्रकाशमान, पवित्र, शुभदृष्टिसम्पन्न तथा सुंदर वचन बोलनेवाले है, उन नारद जी को मैं प्रणाम करता हूं। जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते है, जिनमें पाप का लेश भी नहीं है तथा जो परोपकार करने से कभी थकते नहीं है, उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूं। जो सदा वेद, स्मृति और पुराणों में बताये हुए धर्म का आश्रय लेते है तथा प्रिय और अप्रिय से रहित है।, ऐसे नारदजी को मैं प्रणाम करता हूं। जो खान पान आदि भोगों में कभी लिप्त नहीं होते हैं जो पण्डित, आलस्यरहित तथा बहुश्रुत ब्राम्हण हैं, जिनके मुख से अद्‌भूत बातें - विचित्र कथाएं सुनने को मिलती हैं, ऐसे परम तेजस्वी नारद जी को मैं प्रणाम करता हूं।

नार्थे क्रोधे च कामे च भूतपूर्वोघ्स्य विभ्रमः।
येनैते नाशिता दोषा नारदं तं नमाम्यहम्।।
वीतसम्मोहदोषो यो दृढ़श्राक्तिश्च श्रेयसि।
सुनयं सत्रपं तं च नारदं प्रणाम्यहम्।।
असक्तः सर्वसंगेशु यः सक्तात्मेव लक्ष्यते।
अदीर्घसंशयो वाग्मी नारदं प्रणाम्यहम्।।
नासूयत्यागमं किन्चित् तपः त्येन जीवति।
अवघ्यंकालो वश्यात्मा तमहं नौमि नारदम्।।
एतान् गुणानारदस्य त्वमप्याकर्ण्य पार्थिव।
जप नित्यं स्तवं पुण्यं प्रीतस्ते भविता मुनिः।।[5]

जिन्हे धन के लोभ, काम अथवा क्रोध के कारण पहले भी भ्रम नहीं हुआ हैं, जिन्होंने काम, क्रोध और लोभ इन तीनों दोषों का नाश कर दिया है, वह नारद जी को मेरा प्रणाम हैं। जिनके अंतः करण से सम्मोह रूप दोष दूर हो गया है, जो कल्याणमय भगवान् और भागवतधर्म में दृढ़ भक्ति रखते हैं जिनकी नीति हमेशा उत्तम है तथा जो संकोची स्वभाव के है, उन नारद जो को मै प्रणाम करता हूं। जो समस्त संगों से अनासक्त है, यथापि सब में आसक्त हुए से दिखायी देते हैं, जिनके मन में किसी संशय के लिए स्थान नहीं है, जो बड़े अच्छे वक्ता है, उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूं। जो किसी भी शास्त्र में दोषदृष्टि नहीं देखते, तपस्या का अनुष्ठान ही जिनका जीवन है, जिनका समय कभी भगवद्‌चिन्तन के बिना व्यर्थ नहीं जाता और जो अपने मन को सदा वश में रखते है, उन श्री नारद जी को मैं प्रणाम करता हूं। जिन्होंने तप के लिए श्रम किया है, जिनकी बुद्धि पवित्र एवं वश में है, जो समाधि से कभी तृप्त नहीं होते, अपने प्रयत्न में सदा सावधान रहने वाले ऐसे तेजोमय नारद जी को मैं नमस्कार करता हूं। राजन्! आप भी नारद जी के इन गुणों को सुनकर प्रतिदिन इस पवित्र स्त्रोत का जप करे इससे वे मुनि आप पर बहुत प्रसन्न होंगें।ऐसे परम्पुण्य देवर्षि नारदजी का जीवन चरित्र अनुपमेय है। उनकी उपमा वे स्वयं ही हो सकते है। वे भक्तियोग के परम प्रचारक हैं।

देवर्षि नारद जी ने दिव्य भक्ति पर आधारित बहुत से ग्रन्थो की रचना की है जिसमें

नारद संहिता, पांचरात्रशास्त्र, नारदीय शिक्षा, संगीत मकरन्द नारद-परिव्राजकोपनिषद्, नारदीयपुराण एवं नारदभक्तिसूत्र नामक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। 'नारदभक्ति सूत्र इन्हीं देवर्षि नारदजी की कृति हैं। नारद भक्तिसूत्र की उत्पत्ति के विषय में एक कथा है कि 'एकबार बदरिकाश्रम में निवास करते हुए वेदव्यास ने इच्छानुसार विचरण करते हुए, देवर्षि नारदजी को देख कर उनका विधि-विधान से स्वागत-सत्कार करके पूछा कि हे देवर्षे! सुख-दुःख मनुष्य के अधीन नहीं है, किन्तु मनुष्यमात्र सुख-दुःख के अधीन है, सुख-दुःख में संसार मनुष्य का बन्धन है, मनुष्य बन्धन को नहीं चाहता, इसलिए अनिश्चित संसार बन्धन से मोक्ष होने की आवश्यकता है, वह मोक्ष उपाय से साध्य है, कर्म मोक्ष का साक्षात् उपाय नहीं माना जा सकता। यद्यपि ज्ञान मोक्ष का साक्षात् उपाय स्वरूप गिना जाता है तथापि भक्ति विहीन ज्ञानको शास्त्र अकिंचित्कर कहता है-इस कारण परमपुरूषार्थ मोक्ष की एक मात्र साधन रूप भक्ति ही है अतः आप भक्ति की जनसाधारण के कल्याणार्थ सरल व्याख्या कीजिए। तव महर्षि नारद जी कुछ सूत्रों के द्वारा भक्ति की व्याख्या करने लगे। ये सुत्र ही नारद भक्तिसूत्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन सूत्रो की संख्या कुल चौरासी है।''

नारद भक्ति सूत्र दर्शन न तो दैवीमीमांसा दर्शन की भांति युक्ति प्रधान हैं, न शाण्डिल्य भक्ति दर्शन के समान कठिन हैं। इसकी पद्धति विलक्षण हैं। इसका मूल प्रतिपाद्य विषय ही यह है कि भक्ति, कर्म, ज्ञान व योग रूपी सिद्धांतों का परिपक्व फल हैं, जिसका रसपान साधको के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर आवागमन के बंधन से मुक्ति प्रदान करने में परम सहायक एवं कल्याणकारी सिद्ध होगा। यही इस भक्ति सूत्र ग्रन्थ का आध्यात्मिक निरूपण हैं।

प्रेम के द्वारा मनुष्य को ईश्वर से जोड़ने वाले विज्ञान को भक्ति योग कहते हैं। यही मानव मन को ईश्वर की ओर उन्मुख कराने का सर्वाधिक सरल सुगम एवं सरस मार्ग हैं। दर्शन के विभिन्न परम्पराओं में निरूपित तत्वों को स्मरण रखने में आसान बनाने के लिए सूत्र साहित्य की रचना हुई। यथा बाद्यरायण व्यास कृत 'ब्रम्हासूत्र' और महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योग सूत्र आदि इसी क्रम में भक्ति शास्त्र के मूल तत्वों का संग्रह करके नारदीय भक्ति सूत्र की रचना हुई।

सार रूप में हम यह कह सकते हैं, कि नारद भक्ति सूत्रों का महर्षि वेदव्यास कृत श्रीमद्भागवत महापुराण के कुल द्वादश स्कंधों के दिव्य प्रसंगों में सूत्रों का उपयुक्त स्थल तय करना, तथा भक्तिसूत्रों का सारगर्भित रहस्योंदघाटन करते हुए भाव पूर्ण उद्देश्य परक व्याख्या विद्वतजनों के सामने प्रस्तुत करना ही इस शोध का उद्देश्य हैं। जनमानस में अखण्ड भक्ति का अविरल प्रवाह हृदय में प्रवाहित हो, दिव्य भक्ति रूपी परिपक्व फल को प्राप्त कर मानव जीवन की सार्थकता सिद्ध करने के लिए चौरासी का चक्र काटने के लिए ही नारद भक्ति के चौरासी सूत्र हैं। भक्ति का स्वभाव है कि वह आएगी तो उसके साथ ज्ञान भी आएगा ही। भक्ति तथा ज्ञान परस्पर आश्रित हैं।

भक्ति की विशेषता यह है कि वह दोषापनयन ही नहीं करती, गुणाधान भी करती हैं। भक्ति अन्तःकरण से काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर आदि को निकालकर उसमें सत्य, नम्रता, करूणा दया आदि गुणों को भर देती हैं। भक्ति सुख का साधन नहीं वरन् सुख का दिव्य स्वरूप हैं। अन्ततोगत्वा श्रीमद्भागवत पुराण एवं नारद भक्ति सूत्र की सम्यक रूपेण तुलना करें तो यह पता चलता है कि भागवत पुराण यदि कल्प वृक्ष है तो

नारद भक्तिसूत्र उनका परिपक्व फल। जिस प्रकार महाभारत महाकाव्य में भगवद्गीता रूपी ज्ञानामृत उसका सारतत्व हैं। ठीक उसी प्रकार श्रीमद्‌भागवत पुराण का नारद भक्तिसूत्रदर्शन दिव्य रसात्मक अनुभूति हैं।

निष्कर्षरूपेण हम यह कह सकते हैं कि-दस अनुवाक से सृजित चौरासी सूत्रों से युक्त नारदभक्ति दर्शन के प्रत्येक सूत्र में श्रीमद्‌भागवत के कथा प्रसंगों का दिव्य समावेश है, नारद भक्ति दर्शन के प्रत्येक सूत्र की भाव परक एवं विलक्षण व्याख्या भागवत पुराण के पावन प्रसंगों में सहज रूप में दृष्टव्य हैं। चाहे वह ध्रुव चरित्र हो, गोपियों का प्रसंग हो, अजामिलों परख्यान या प्रहलाद की शरणागति हो। इस प्रकार देखा जाए तो दोनों ग्रंथों की समानता को एक वाक्य में पिरोकर यह कह सकते हैं कि श्रीमद्‌भागवत रूपी समुद्र में नारदभक्ति सूत्र रूपी गंगा का पावन अवतरण हैं।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्‌भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर-2/7/51-52
2. महर्षि वेदव्यास (2010) श्री मद्‌भागवत महापुराण, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर-2/13(माहात्म्य)
3. महर्षि वेदव्यास (2007) स्कंद माहेश्वरी कुमारिका, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर-54/27-30
4. महर्षि वेदव्यास (2007) स्कंद माहेश्वरी कुमारिका, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर-54/31-34
5. महर्षि वेदव्यास (2007) स्कंद माहेश्वरी कुमारिका, गीता प्रेस प्रकाशन गोरखपुर-54/35-39

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

पारिजात हरण चम्पू काव्य में ईर्ष्या का स्वरूप

* साक्षी गुप्ता

सारांश- *16 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध चम्पू काव्यकार शेष श्री कृष्ण जी ने जिस पारिजात हरण चम्पू काव्य की रचना की है उसमें नारी सुलभ ईर्ष्या की वह प्रबल भावना छिपी हुई है जो स्वकीया मध्या नायिका सत्यभामा के माध्यम से हमारे समक्ष प्रकट होती है। देवर्षि नारद द्वारा स्वर्ग लोक से लाये गये पारिजात पुष्प को श्रीकृष्ण द्वारा प्रधान भार्या रूक्मिणी को देना सत्यभामा आदि रानियों में सौतिया डाह, ईर्ष्या, जलन आदि मनोविकारों को उदीप्त कर देता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे को सुखी देखकर सदैव दुखी बना रहता है। उसे अपनी सुखकर वस्तुएं भी सदैव दुखदायी प्रतीत होती हैं। समस्त रनिवास में प्रज्वलित ईर्ष्या की उस तीव्र अग्नि को श्रीकृष्ण अपने मान मनुहारों के शीतल जल से शान्त करने का प्रयास करते हैं। अन्तोगत्वा पारिजात वृक्ष प्राप्ति के आनन्द सागर को प्राप्त कर सत्यभामा की ईर्ष्या रूपी अग्नि शान्त हो जाती है।*

मुख्य शब्द– पारिजात, ईर्ष्या, भावना, डाह, मनोविकार

मानव ईश्वर द्वारा रचित वह सुन्दर रचना है जो जब जन्म लेता है तो निष्कलंक, निष्पाप और पूर्णतः निर्मल विचारों से युक्त माँ भगवती गंगा जी के जल के समान स्वच्छ और पवित्र होता है। शनैः शनैः प्रकृति के काल चक्र के आगे बढ़ने के साथ ही सांसारिक वातावरण का कालुष्य उसमें समाहित होने लगता है और निर्मल मन में राग, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, मोह, मद आदि मनोविकार समाहित होकर उसे कलुषित कर देते हैं। जैसे- जब माँ भागीरथी अपने उदगम स्थान गंगोत्री से प्रवाहित होती है तो पूर्णतः निर्मल और स्वच्छ धारा के रूप में प्रवाहित होती है, धीरे-धीरे जैसे-जैसे माँ गंगा की धारा आगे बढ़ती जाती है अनेकों प्रकृति प्रदत्त और मानव प्रदत्त मलिनतायें उस निर्मल जल में समाहित होकर उसे कलुषित कर देती हैं। ठीक उसी प्रकार सामाजिक व्यवहार, आचार-विचार और संगति का प्रभाव मनुष्य के आचरण पर पड़ता है। सत्संगति और कुसंगति का प्रभाव मनुष्य के चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सत्संगति जहाँ मानव को उन्नति और सत्मार्ग की ओर ले जाती है वहीं कुसंगति मनुष्य को अवनति और कुमार्ग पर धकेल देती है। मनुष्य चाहे कितना भी सहज, सरल, सज्जन व संयमी हो परन्तु बलवती इच्छायें मानव मन को बलात अपने वश में करके उससे नित्य नवीन प्रपंच कराती हैं। अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने की चाह और उसके प्राप्त न होने पर उसको प्राप्त करने का पुनः पुनः प्रयत्न करना। अभीष्ट वस्तु के न मिलने पर प्राणी में संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है। अपने मान और प्रतिष्ठा के रक्षार्थ अभिमान वश होकर प्राणी दूसरे की इच्छाओं और भावनाओं को तिरस्कृत करता हुआ स्व स्वार्थ सिद्धि हेतु येन केन प्रकारेण अनेकों यत्न कर ड़ालता है।

* एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)

इच्छित वस्तु स्वयं को प्राप्त न होकर अन्य को प्राप्त हुआ जानकर ईर्ष्या के संवेग की उत्पत्ति होती है। प्रतिद्वन्दिता के कारण अपने अधिकारों का हनन होना, अधिकार का किसी अन्य व्यक्ति को मिलना, अपने अभाव को दूसरे में देखना आदि तत्व ईर्ष्या रूपी मनोवृत्ति को उत्पन्न करते हैं।

पुराण गृहीत प्रसिद्ध पारिजात हरण चम्पू काव्य की लोक प्रसिद्ध पारिजात वृक्ष हरण की कथा के मूल में ईर्ष्या की यही भावना छिपी हुयी है। पारिजात हरण चम्पू काव्य की कथावस्तु के मनोवैज्ञानिक धरातल पर सर्वप्रथम चम्पूकाव्यकार शेष श्रीकृष्ण जी ने चम्पू काव्य के प्रथम श्लोक में ही सत्यभामा की ईर्ष्या को दर्शाया है।[1]

पारिजात हरण चम्पू काव्य की स्वकीया मध्या नायिका श्रीकृष्ण की प्रिय पत्नी, सौन्दर्यशीला, सर्वगुण सम्पन्न देवी सत्यभामा भी मानव सुलभ ईर्ष्या दोष से वंचित न रह सकीं। मानवती सत्यभामा की ईर्ष्या नारी सुलभ ईर्ष्या की श्रेणी में आती है। स्वाभाविक रूप से प्रत्येक पत्नी या प्रेमिका के लिये अपने पति या प्रेमी का अन्य स्त्री के प्रति प्रेम प्रदर्शन असहनीय होता है। श्रीकृष्ण ने तो सत्यभामा को अपनी अभिन्न हृदया ही कहा है।

श्रीकृष्ण सत्यभामा से कहते हैं-''तुम मनोविनोद की भूमि हो, अन्य स्त्रियाँ तो दिखावटी प्रणय की पात्र हैं। हे चन्द्रमुखी, तुम्ही कहो अन्य दूसरी कौन स्त्री मेरी प्रेमिका हो सकती है।''[2]

सत्यभामा को बस इसी बात का अभिमान था कि श्रीकृष्ण समस्त रानियों में सर्वाधिक प्रेम उन्हीं से करते हैं। संभवत: सत्यभामा के इसी अभिमान नाश हेतु, नारद प्रदत्त पारिजात पुष्प को श्रीकृष्ण ने कुछ विचार कर ही अपनी प्रधान भार्या देवी रूक्मिणी को प्रदान किया, क्यों कि जहाँ अभिमान होता है वहाँ श्री हरि निवास नहीं करते।[3] अपने प्रिय भक्तों के हित के लिये श्री हरि नित्य नवलीला करते ही हैं। अत: ईर्ष्या वशीभूत सत्यभामा का अभिमान नाश करने के लिये ही श्रीकृष्ण ने पारिजात हरण की यह अद्‌भुत लीला रची।

रैवतक पर्वत पर देवी रूक्मिणी के व्रतावसान पर स्वर्गलोक से देवर्षि नारद का पारिजात पुष्प को लेकर आगमन होना और श्रीकृष्ण द्वारा उस दिव्य पुष्प को देवी रूक्मिणी का कर्णाभूषण बना देना सत्यभामा के हृदय रूपी धरातल पर ईर्ष्या रूपी बीज को अंकुरित कर देता है। सत्यभामा श्रीकृष्ण से कहती हैं -

''भगवान नारद ने जो पारिजात पुष्प दिया, उस पुष्प को आज प्रिया को देते हुये आप यहाँ मेरा मन अभिमान और मन को भी क्या हरण नहीं किया।''[4]

देवर्षि नारद जिस मुक्त कण्ठ से पारिजात पुष्प के दिव्य गुणों का बखान देवी रूक्मिणी से करते हैं, उसे सुनकर अन्य रानियों की चेटियाँ अपनी स्वामिनिओं से कहती हैं। दासियों के मुख से दिव्य पारिजात पुष्प की गुण कथा को श्रवण कर समस्त रनिवास में व्याकुलता से परिपूर्ण कोहराम मच जाता है। देवर्षि नारद के द्वारा पारिजात पुष्प की गुण कथा सुनने में दत्तकर्ण पारिचारिकायें भी असूया, निर्वेद, अभिक्षेप, अश्रु से परिपूर्ण गदगद कण्ठ होकर पारिजात पुष्प के वृतान्त को अपनी अपनी स्वामिनिओं से कहती हैं। कहने की व्याकुलता के कारण, शीघ्रता से चलने के कारण जिनके पैर फिसल रहे हैं उन दूतियों से यह सुनकर के देवर्षि नारद द्वारा दिये गये स्वर्ग के आभूषण रूप, मनोवांछित फल देने वाले, इन्द्राणी का प्रिय, नन्दन वन की शोभा तरूराज पारिजात वृक्ष के पुष्प को श्रीकृष्ण

ने देवी रूक्मिणी का कर्णाभूषण बना दिया है समस्त रनिवास ईर्ष्या रूपी अग्नि से प्रज्वलित हो उठता है।

श्रीकृष्ण से जलती हुयी कई स्त्रियाँ रोने लगीं, स्वेद बिन्दुओं से परिपूर्ण रक्त नेत्र वाली कितनी स्त्रियाँ क्रोध से व्याकुल हो गई, अंगों को शिथिल कर रेशमी वस्त्राभरणों को त्याग दिया। बाद में कई स्त्रियाँ नारद के लिये दौड़ीं, कई स्त्रियों ने क्रोध में आकर रूक्मिणी को घेर लिया तथा कई सुन्दर स्त्रियाँ अपने भाग्य की निन्दा करने लगीं।[5]

ईर्ष्या रूपी पूर्णिमा के चन्द्रोदय हो जाने पर मन रूपी सागर में बड़े तीव्र ज्वार-भाटे आते हैं। अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने के लिये असंख्य युक्ति रूपी तरंगें हिलोरे मारने लगती हैं। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे से सलाह करते हुये रानियों ने पारिजात पुष्प के वृतान्त को जब सत्यभामा से कहा तो मानवती सत्यभामा के अन्तःकरण में ईर्ष्या और क्रोध के अंगारे दहकने लगते हैं। सर्पिणी के समान श्वास लेती हुयी, ग्रीष्मकालीन दावानल से जली हुयी भयभीत मृगी के समान, जलरहित तालाब में तडफड़ाती हुयी मछली के समान विचित्र अवस्था का अनुभव करती हुयी, नेत्रों से सतत अश्रुधारा को प्रवाहित करती हुई देवी सत्यभामा को जब श्रीकृष्ण ने देखा तो सत्यभामा की दशा उस विरहिणी नायिका के सदृश दिखाई दी जिसे वियोग में सुखकर वस्तुयें भी दुखदायी प्रतीत होती हैं।

''चन्दन को हटाओ, अधिक बजनदार माला को त्यागो, चन्द्रमा को सदय होकर ढ़क दो। अयि सखि ! मलय पवन को कमल नाल रूपी विष को धारण करने वाले सर्पों को खिला दो यह कहती हुई सत्यभामा को श्रीकृष्ण ने देखा।''[6]

मनोवैज्ञानिक तथ्य यह भी है कि ईर्ष्यालु व्यक्ति के मन में शान्ति का निवास नहीं हो सकता। आनन्द और उपभोग के जो सुख साधन उसके पास सुलभ होते हैं, ईर्ष्या में जलता हुआ व्यक्ति उनका उपभोग भी आनन्दपूर्वक नहीं कर पाता, उसे अपने पास उपलब्ध सुख साधन तुच्छ ही प्रतीत होते हैं। जैसे यहाँ सत्यभामा की दशा दृष्टिगोचर हो रही है। ''बाहुरूपी तकिया से युक्त, कस्तूरी के सुगन्ध से परिपूर्ण बड़ी शय्या में इधर उधर पार्श्व भाग को उलटने के समय सखियों के हाथ की सहारा वाली, सरस बिस (कमल नाल) के कटक (आभूषण विशेष) से भी दुःखित, चन्दन युक्त जल से भीगे हुयेकमल के पत्तों से और कमल के पत्तों से बनाये गये पंखे की शीतल हवा से भी सत्यभामा अधिक क्लेश को प्राप्त हो रही है।''[7]

इस प्रकार ईर्ष्या रूपी कषाय से कलुषित मन वाली सत्यभामा की सजीव मनोदशा का चित्र चम्पू काव्यकार शेष श्री कृष्ण जी ने हमारे समक्ष खींच दिया है। रोने, हंसने, विस्मय और गर्व की तरंगों वाली सत्यभामा मन में कुछ विचार कर उठती है, गिरती है बार-बार सिर को हिलाती हुयी भूतावेश को धारण की हुई है।

''बिखरे हुए बाल से युक्त मुख को हथेली पर रखे हुई अधिक गिरते हुए विमल अश्रु से परिपूर्ण, समीप में आये हुए व्यक्ति को देखती हुई भी मुकुलित तथा रक्तिम दृष्टि को धारण किये हुए सत्यभामा को श्रीकृष्ण ने देखा।''[8] देवी सत्याभामा के अन्तःकरण में उत्पन्न हुई नारी सुलभ ईर्ष्या का वर्णन करने में चम्पूकाव्यकार शेष श्री कृष्ण जी पूर्णतः सफल हुए हैं। द्वितीय उच्छवास के एक एक श्लोक में, गद्य भाग में नारी सुलभ ईर्ष्या का सजीव चित्रण दर्शनीय है।

''अकस्मात शुभ्र रेशमी वस्त्रों को छोड़कर, मलिन वस्त्र को धारण करती हुई,

मस्तक में चर्चित रक्त चन्दन से युक्त अधिक समय से एक वेणी को बांधी हुई, बिना कारण ही वस्त्र के टुकड़े को, शिरोव्यथा में जैसे बांधा जाता है उसी तरह शिर से बांधकर प्रिय के रोष को सूचित करने वाला दूसरे चन्द्र के समान चमकने वाले आभूषण को त्याग कर बैठी हुई सत्यभामा को भगवान श्रीकृष्ण ने देखा।''[9]

पारिजात हरण की सुन्दर कथा के मूल में अन्य रानियों और सत्यभामा के हृदय में उठी ईर्ष्या की वह प्रबल भावना ही थी जो श्रीकृष्ण को स्वर्ग से पारिजात वृक्ष हरण करने के लिए वाध्य कर देती है। श्रीकृष्ण अनेकों मान मनुहारों से सत्यभामा को समझाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु सत्यभामा की हठधर्मिता श्रीकृष्ण और देवराज इन्द्र के युद्ध का कारण बनती है। सत्यभामा के हृदय में उठी ईर्ष्या रूपी अग्नि श्रीकृष्ण के सान्त्वना देने पर ही शान्त होती है।

श्रीकृष्ण सत्यभामा से कहते हैं- कि तुम यदि उस पुष्प को चाहती हो तो उसके लिये इतना क्यों दु:खित होती हो, मैं इन्द्र को भी पराजित कर चिरकाल के लिये तुम्हारे प्रांगण में स्वर्ग के देव वृक्ष को स्थापित कर दूंगा।[10]

पारिजात वृक्ष के स्वर्ग से हरण की यह लोक प्रसिद्ध कथा, विविध धार्मिक ग्रन्थों, विविध पुराणों (हरिवंश पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण) आदि में पृथक-पृथक ढ़ंग से वर्णित है। पुराण कथानुसार नरकासुर का वध करके जब श्रीकृष्ण सत्यभामा सहित देवमाता अदिति के कुण्डल देने स्वर्गलोक जाते हैं, तो देवमाता अदिति श्रीकृष्ण की स्तुति करती हैं और सत्यभामा को चिरयौवनता का आर्शीवाद देती हैं। किन्तु इन्द्राणी मानुषी जानकर सत्यभामा को पारिजात पुष्प नहीं देती है। इन्द्राणी के इसी मान को भंग करने के लिये श्रीकृष्ण पारिजात वृक्ष का हरण करते हैं। विभिन्न पुराणों और चम्पूकाव्य की कथाओं के घटनाक्रम में न्यूनाधिक अन्तर अवश्य है किन्तु निष्कर्ष एक ही है- श्रीकृष्ण को पारिजात वृक्ष की प्राप्ति। निष्कर्षतः विभिन्न पुराणों और चम्पूकाव्य से निकली पारिजात हरण कथा की मन्दाकिनी अलग-अलग घटनाक्रम रूपी मार्गों से प्रवाहित होती हुई सत्यभामा के वृक्ष प्राप्ति के आनन्द सागर में निमग्न हो जाती है।

प्रस्तुत पारिजात हरण चम्पू काव्य में पारिजात वृक्ष का हरण सत्यभामा की ईर्ष्यालु मनोवृति के कारण ही होता है। ईर्ष्या में तीव्र जलन के लक्षण पाये जाते हैं। ईर्ष्या में प्रतिद्वन्दी के प्रति शत्रुता की अभिवृति ईर्ष्यालु व्यक्ति को उग्ररूप धारण करने पर विवश कर देती है। मनोवैज्ञानिक तथ्य यह भी है कि लड़को की अपेक्षा लड़कियों में ईर्ष्या की मनोवृति अधिक पायी जाती है। ईर्ष्या के मूल में अप्रसन्नता निवास करती है जैसे- सत्यभामा, दासियों व अन्य रानियों की खिन्न मनोदशा का चित्रण चम्पूकाव्यकार ने किया है। इच्छा पूर्ण न होने के कारण अथवा अपने अधिकार का किसी अन्य व्यक्ति को मिलने से ईर्ष्या के संवेग की उत्पत्ति स्वतः हो जाती है, जैसे- पारिजात पुष्प का देवी रूक्मिणी को प्राप्त होना सत्यभामा में ईर्ष्या उत्पन्न कर देता है और यह भी पूर्णतः सत्य है कि जहाँ ईर्ष्या का जन्म होता है वहाँ शान्ति का लोप भी होता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति का मन जब तक अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक शान्ति को प्राप्त नहीं होता।

पारिजात हरण चम्पू काव्य में सत्यभामा के हृदय रूपी धरातल पर उत्पन्न ईर्ष्या रूपी अग्नि का स्वाभाविक वं सजीव चित्रण किया गया है। चम्पू काव्य में जहाँ एक ओर भावनाओं का उतार चढ़ाव है, ईर्ष्या की तीव्र जलन है वहीं दूसरी ओर रूठने-मनाने की

शीतल बौछारें सुखकर प्रतीत होती हैं। इस प्रकार पारिजात हरण चम्पू काव्य में नारी सुलभ ईर्ष्या का सजीव चित्रण करने में चम्पूकाव्यकार पूर्णतः सफल हुये हैं।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. पारिजात हरण चम्पू काव्य, प्रथम उच्छवास, श्लोक संख्या-1
 'सानन्दं मकरन्दबिन्दुनिकर प्रस्यन्द वन्दी भवन्मन्दी भूतामिलिन्द तुन्दिलदलन्मन्दार मन्दादरम्। भूयः सौरभलोभ संभ्रमभराद् भृल्लीभिरल्ली कृते भामयाः किल पारिजात कुसुमे जीयात्सतृष्णं मनः।''
2. पारिजात हरण चम्पू काव्य, द्वितीय उच्छवास, श्लोक संख्या-65
 ''त्वमसि मम मनोविनोद भूमिः परमपरा मुखराग मात्र पात्रम्।
 वद वदनविनिर्जितेन्दुरन्या जयति तमां कतमातिमान योग्या।।''
3. ''जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि मैं नहीं''- कबीरदास
4. पारिजात हरण चम्पू काव्य, तृतीय उच्छवासः, श्लोक संख्या-6
 ''यन्नारदस्तेर्घदित परिजातं तत्स्वप्रियायैददता त्वयाद्य।
 मानोघभिमानोघपि मनोघपि किं वा नादापि ना हारि ममेह किं वा।।''
5. पारिजात हरण चम्पू काव्य, द्वितीय उच्छ्वास
6. पारिजात हरण चम्पू काव्य, द्वितीय उच्छवास, श्लोक संख्या-27
 ''त्यज मलयजपडं भूरिभारं च हारं,
 परिहर हरिणाडं सानुकम्पं पिधेहि।
 आये मलय समीरं प्राशय प्राशयामुं,
 बिसविषधर सर्पनित्यनुव्याहरन्ती।।''
7. पारिजात हरण चम्पू काव्य, द्वितीय उच्छवास, श्लोक संख्या-26
 ''तल्पेघ्नल्पतरे मृगाड़ रूचिरे बाहूपधाने मुहु-
 स्तापात्पार्श्वं विवर्तन व्यतिकरेष्वालम्बि तालीकरा।
 क्लिश्यन्ती सरर्समृणालवलयैः श्रीखण्डचर्चाचयै-
 स्तोयार्द्रैर्नलिनीदलैः किसलयैः किं चानिलैः शीतलैः।।
8. पारिजात हरण चम्पू काव्य, द्वितीय उच्छवास, श्लोक संख्या-20
 ''करतल करितालका कुलास्या,
 बहलगलाद्विमलाश्रु शून्य शून्यम।
 जनमुपनतमन्तिके स्पृशन्तीमपि,
 मुकुलामरूणां दृशं दधाना।।
9. पारिजात हरण चम्पू काव्य, द्वितीय उच्छवास, श्लोक संख्या-25
 ''कौसुम्भं सहसा विहाय मलिनं वासो वसानां सितं,
 भालालेपित रक्तचन्दन रसा बद्धैक वेणी चिरम्।
 वासः खण्डमकाण्ड एव सरूजे वाबध्य मध्येशिर-
 चन्द्राभं प्रिय रोष चिन्हमपरं संत्यज्य भूषाभरम्।।
10. पारिजात हरण चम्पू काव्य, तृतीय उच्छवास, श्लोक संख्या-17
 ''सुरतरू प्रसवं तु पदीहसे तदियदर्थभियत्किमु खिद्यते।
 अपि हरिं परिभूय तरूं दिवस्तव चिरादचिरे घपि निवासये।। बेयर एक्ट प्रोटक्शन ऑफ वूमन फ्रॉम डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट, 2005, यूनीवर्सल ला पब्लिकेशन, इलाहाबाद, पृ. 14.

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा में श्रीशंकरदेव की भूमिका

* **परिस्मिता बरदलै**

सारांश– प्राचीनकाल से ही भारत एक धर्मप्राण देश रहा। लेकिन बहुत से समय में यह देखने को मिलता है कि कुछ स्वार्थपरक लोग अपने स्वार्थ के लिए धर्म को विकृत रूप प्रदान करते हैं। धर्म के इस विकृत रूप को सुधारकर धर्म की प्रतिष्ठा के लिए भारत में विभिन्न समय में विभिन्न प्रांत में विभिन्न महापुरुष कार्य करते आये हैं। असम में शंकरदेव के बहुत पहले से ही वैष्णव धर्म का प्रचार क्षीण मात्रा में हो रहा था। शंकरदेव ने ही असम के मध्यकालीन भक्ति आंदोलन को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उन्होंने 15वीं शताब्दी के अंत में नववैष्णव धर्म के प्रचार का कार्य शुरू किया। नैतिक आदर्श और आध्यात्मिक साधन को महत्व देकर उन्होंने नववैष्णव धर्म का नीव रखा। भक्ति के चार तत्व नाम, देव, गुरु और भक्त को लेकर उन्होंने असम में नववैष्णव धर्म का प्रचार किया। बहुदेवतावाद के स्थान पर ऐकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा, बहुसत्य में सनातन सत्य की उपलब्धि, धार्मिक पाखण्ड का खंडन करके आंतरिक श्रद्धा भक्ति के ऊपर महत्व, वर्ण वैसमय के भेदभाव को मिटाकर एक साथ बैठकर नामकीर्तन करना आदि कार्य के द्वारा महापुरुष शंकरदेव ने असम में नववैष्णव भक्ति आंदोलन का प्रचार करके असमीया जाति को विश्वदरबार में एक विशिष्ट मर्यादा प्रदान करने के लिए सक्षम हुए।

मुख्य शब्द– भक्ति आन्दोलन, धार्मिक पाखण्ड, व्द्रदेवतावाद, नववैष्णव, युगान्तकारी, एकशरणनाम।

उद्देश्य–

* वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा में श्रीशंकरदेव की भूमिका को स्पष्ट करना।
* नववैष्णव धर्म के प्रचार के द्वारा असम भूमि को एक स्वस्थ सबल समाज के रूप में निर्माण करने के लिए शंकरदेव के जो प्रचेष्टा थी उसका विश्लेषण करना।
* सामाजिक श्रेणी विभाजन और गोष्ठीगत विभेदता को दूर करके सभी जाति जनजाति के लोग एक साथ बैठकर भगवान के नामकीर्तन के द्वारा वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा की जो प्रचेष्टा रही उसकी विवेचना करना।
* वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा के साथ साथ श्रीशंकरदेव ने सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से असमीया समाज को जो स्थान दिलाया उसका अवलोकन करना।
* भारतीय भक्ति आन्दोलन में श्रीशंकरदेव की भूमिका को स्पष्ट करना।

व्याप्ति तथा प्रासंगिकता– प्रस्तुत शोध पत्र में वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा में श्रीशंकरदेव की भूमिका का अध्ययन किया गया है। इस विश्लेषण के द्वारा श्रीशंकरदेव ने किस प्रकार असमीया समाज में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक दृष्टि से एक युगान्तकारी परिवर्तन लाने में सक्षम हुए इसका अवलोकन किया गया है।

* **हिन्दी विभाग, कॉटन कॉलेज, असम**

बहुदेवतावाद के स्थान पर ऐकेश्वरबाद की प्रतिष्ठा, बहुसत्य में सनातन सत्य की उपलब्धि, धार्मिक पाखण्ड का खण्डन करके आन्तरिक श्रद्धाभक्ति के ऊपर महत्व देना, वर्ण वैषम्य के भेदभाव को मिटाकर एक साथ बैठकर नामकीर्तन करना आदि उनके इस प्रकार के आदर्शों को असमीया समाज में अक्षुण्ण रखने में ही इस शोध पत्र की प्रासंगिकता निहित है।

अनुसंधान पद्धति : इस शोध पत्र के निर्माण के लिए प्रधान रूप से श्रीशंकरदेव द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थावलियों के साथ-साथ उनके विषय में निश्चित विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन किया गया है। शोध प्रविधि के तौर पर व्याख्यात्मक विश्लेषनात्मक प्रबिधि का इस्तेमाल किया गया है।

वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा में श्रीशंकरदेव की भूमिका :

प्रारम्भ : भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है -

''यदा यदा ही धर्म्मश्य ग्लानि भर्वति भारत।
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम
परित्राणाय साधूनां विनाशय च दृष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥''

''जब जब धर्म की हानि होती है, अधर्म का पार्दुभाव होता है, उसी समय साधु भक्त की रक्षा और दुष्टों को दमन करके धर्म की पुन:स्थापन करने के लिए मैं हर युग में अवतार लेता हूँ।''

अधर्म के भयंकर अंधकार से सम्पूर्ण विश्व मानव दिशाहीन होकर छटपटाने लगे थे। प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने जो वेद उपनिषद् लिखे मनुष्य उसे धीरे धीरे भूलने लगे। देवी-देवताओं के पूजा अर्चना के नाम पर जीव जन्तुओं का बध होने लगा। अपने भोग-सुख के लिए मनुष्य जब दुर्नीति, अनाचार, व्यभिचार आदि में लिप्त होता है, समाज में संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि के लिए अन्धकार युग आ जाता है, उसी समय भारत के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न महापुरुषों का जन्म होता है। वंगमें श्री चैतन्य, उत्तर में सूरदास, तुलसीदास, दक्षिण में रामानुज और पूर्व में महापुरुष शंकरदेव और माधवदेव ने जन्म ग्रहण करके सम्पूर्ण भारतवर्ष में अधर्म के अन्धकार को मिटाकर धर्म के उज्वलता को स्थापित किया।

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन में इन महान विभूतियों का अपूर्व योगदान रहा जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर इसे दिशा दी एवं गतिशील बनाया। यद्यपि इन महान विभूतियों की रचनाएँ प्रान्तीय भाषाओं में ही लिपिबद्ध हुई हैं तथापि इनके भावों में कोई भी अन्तर नहीं है।

जन्म, विवाह और प्रथम तीर्थ यात्रा :

महापुरुष श्रीशंकर देव ने पन्द्रवी शताब्दी में असम में नववैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा करके भारतीय भक्ति आन्दोलन के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शंकरदेव का जन्म सन् 1449 ई. तथा 1371 शताब्दी में नगाँव जिला के बरदोआ नामक जगह पर हुआ था। उनके पिता का नाम कुसुम्बर भुईया और माता का नाम सत्यसन्धा। कम उम्र में ही माता पिता के देहावसान के बाद दादी खेरसुती ने शंकर का लालन-पालन किया। अति कम उम्र से ही शंकरदेव उत्यन्त तीक्ष्णबुद्धि सम्पन्न था। उनके विलक्षण प्रतिभा को देखते हुए ही गुरु महेन्द्र कन्दलि ने शंकर को 'देव' शब्द में विभूषित किया।

विद्यालय के शिक्षा समाप्त करके उन्होंने 'शिरोमणि भुईया' दायित्व ग्रहण किए। 21 वर्ष की उम्र में सूर्यवती के साथ विवाह बन्धन में बंध गए। विवाह के तीन साल बाद सूर्यवती ने एक पुत्री को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया मनु। मनु के जन्म को नौ महिने ही हुए थे कि सूर्यवती का देहान्त हो गया। इस घटना के पश्चात् शंकर देव के मन में इस संसार के प्रति वैराग्य भाव जागृत हुआ और उनके मन में तीर्थ-यात्रा में जाने का भाव भी उत्पन्न हुआ। लेकिन अपनी छोटी सी बच्ची को साथ में लेकर यह कार्य करना उनके लिए संभव नहीं था। मनु की नौ वर्ष की ही थी कि शंकरदेव ने रामचन्द्र कायस्थ के पुत्र 'हरि' के

साथ मनु को विवाह बन्धन में बान्ध दिया।

सम्पूर्ण गृहस्त दायित्व नये जँवाई हरि के हाथों में सौंपकर 32 वर्ष की उम्र में सन् 1481 में साथ में 17 संगीयों को लेकर भारत के विभिन्न तीर्थस्थानों पर भ्रमण किया। इस भ्रमण काल में ही श्रीमन्त शंकरदेव ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में रहने वाले सन्त-महत्माओं से मुलाकात की। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन से जुड़े विभिन्न विशिष्ट व्यक्ति, धर्म गुरु, धर्म प्रचारक से मिलकर उन लोगों के साथ धर्म-दर्शन, रीति-नीति, आचार-व्यवहार आदि विभिन्न विषयों पर आलोचनाएँ की और इन सभी से प्रभावित होकर श्रीशंकरदेव ने नये तरह से, असम के सामाजिक परिवेश के साथ सम्बन्ध रखते हुए नव वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए अनुप्रेरणा प्राप्त की और 44 वर्ष के उम्र में 1415 शताब्दी में प्रथम तीर्थयात्रा समाप्त करके घर पहुँचे।

तीर्थभ्रमण से लोटने के पश्चात् आत्मीय-स्वजनों के अनुरोध को स्वीकार करते हुए 1425 शताब्दी में कालिन्दी देवी से द्वितीय विवाह किया। लेकिन कोई भी प्रशासनिक दायित्व को लेने के लिए वह प्रस्तुत नहीं हुए और जो दायित्व उनको दिया गए वह भी उन्होंने अपने जवाँई हरि को सौंप दिए। अपने घर से कुछ दूर हटकर एक छोटा सा घर बना लिया था जिसमें वह शान्ति से बैठकर अध्ययन के साथ-साथ धार्मिक आलोचना भी कर सकते थे और इस घर को 'हरिगृह' या 'देवगृह' नाम दिया गया। इसी की भाँति बाद में 'नामघर' का निर्माण किया गया।

शंकरदेव की रचनाएँ : आलोचना के सुविधा के लिए हम श्रीशंकरदेव के रचनाओं को विभिन्न भागों में विभाजित कर सकते है।

1. **काव्य :** (क) हरिश्चन्द्र उपाख्यान (ख) रूक्मिणी हरण (ग) बलिछलन, (घ) अमृत मन्थन (झ)कुरूक्षेत्र (च) अजामिल उपख्यान।
2. **नाटक :** (क) पत्नीप्रसाद (ख) कालियादमन (ग) केलि गोपाल (घ) रूक्मिणी हरण (ङ) पारिजात हरण और (च) रामविजय।
3. **अनुवाद** : (क) भागवत पुराण के प्रथम, द्वितीय, छष्ठ (अजामिल उपाख्यान), अष्टम (बलिछलन, अमृत मथन) दशम, एकादश, द्वादश स्कन्ध (ख) उत्तरा काण्ड रामायण।
4. **भक्तितत्त्वमूलक रचना :** (क) भक्ति प्रदीप (ख) निमि-नव-सिद्ध संवाद (ग) अनादि पातन।
5. **गीत :** (क) बरगीत (ख) भटिमा (ग) टोटय, चप्पय।
6. **नाम प्रसंग विषयक :** (क) कीर्तन (ख) गुणमाला।
7. **प्रकरण ग्रन्थ :** (क) भक्ति रत्नाकर।

अपने इन तमाम रचना कर्म के प्रयोग के द्वारा ही श्री शंकरदेव ने असम में नववैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए सक्षम हुए। महापुरुष श्रीशंकरदेव एक व धर्म प्रचारक ही नहीं अपितु वह एक प्रतिभाशील साहित्यकार और कलाकार भी थे। धर्म प्रचार ही मुख्य उद्देश्य होने के बावजूद आज भी शंकरी साहित्य अनन्य और अतुलनीय है। नववैष्णव धर्म के प्रवर्तन और प्रचार के उद्देश्य से रचित उनके साहित्य और कलाओं के प्रति आकर्षित होकर असम के जनसाधारणों ने शंकरदेव को ग्रहण किया। शंकर देव और उनके समसामयिक साहित्यकारों के साहित्यकर्म को मद्दे नजर रखते हुए असमीया साहित्य के इतिहासकारों ने इस युग को 'शंकरी युग' नाम दिया है, और 'शंकरी युग' असमीया साहित्य का स्वर्णयुग है।

नववैष्णव धर्म और श्रीमंत शंकरदेव :

प्रथम तीर्थयात्रा से लोटने के पश्चात से ही श्रीमन्त शंकरदेव ने नववैष्णव धर्म के प्रचार कार्य की नीव तैयार की। 'हरिगृह' में बैठकर वह हर समय अपने योजनाओं को पूरा करने के लिए धर्म ग्रन्थ का अध्ययन और आलोचना विलोचना में ही अपने को निमग्न रखते थे। श्रीशंकरदेव ने प्रारंभिक समय में

जगन्नाथ का मुर्ति तैयार करके धर्म प्रचार का कार्य शुरू किया था किन्तु परवर्ती समय में इसका संस्कार करके 'एकशरण नामधर्म' के प्रचार में मनोनिवेश किया। बरदोवा में सबसे पहले उन्होंने 'नामघर' की स्थापना करके वहा नाम कीर्तन के साथ साथ 'चिन्हयात्रा भाऊना' का मंचस्थ किया। चिन्हयात्रा भाऊना में उन्हें जनता का विशेष समादर प्राप्त हुआ और इसी तरह नववैष्णव धर्म के प्रचार कार्य के पहली पड़ाव में उन्हें सफलता मिली। 'चिह्नयात्रा भाऊना' के साथ सामजंस्य रखते हुए ही उन्होंने बाद में 'अंकिया नाट' का रचना की।

व्यासमुनि द्वारा रचित अठरह पुराण में से भागवत पुराण ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ है। जनश्रुति के अनुसार जगदिश मिश्र नाम का एक पण्डित व्यक्ति पुरी से आकर शंकरदेव के संग एक साल रहा था। उसी समय जगदिश मिश्र ने शंकरदेव को श्रीधर स्वामी टीका सम्बलित एक भागवत पुराण दी थी और उस एक साल में जगदीश स्वामी ने शंकरदेव को भागवत पाठ और उसका व्याख्या करके सुनायी। इसके पश्चात् ही शंकरदेव ने भागवत पुराण के महत्व को स्वीकार करके यह कहा कि 'नाहि एको शास्त्र इयार समान।' श्रीधर स्वामी टीका सम्बलित भागवत पुराण के साथ शंकरदेव का संयोग उनके आध्यात्मिक जीवन का एक महत्वपूर्ण समय था।

1444 शताब्दी तथा सन् 1522 में माजुली के धुवाँहाट के बेलगुरि नामक जगह पर शंकरदेव और माधवदेव का मिलन हुआ था। शंकर माधव के इस मिलन को डॉ. महेश्वर नेऊग ने गुरु-शिष्य का 'मनिकांचन-संयोग' कहा है। तेहत्तर वर्ष के उम्र में शंकरदेव को उनके द्वारा निर्मित धर्म के मुख्य प्रचारक और वैष्णव धर्म के उत्तराधिकारी के रूप में माधवदेव मिल गए। शंकरदेव ने माधव को 'प्राण बान्धव' आख्या दी थी। इसीलिए कहा जाता है कि महापुरुष शंकरदेव ने असम प्रांत में वैष्णव मत की प्रतिष्ठा की किन्तु उसके प्रचारक तथा विस्तारक होने का श्रेय उन्हीं के शिष्य माधवदेव को है।

''शंकर स्वरूप हरि निज अंशों अवतरि
भक्ति प्रदीप नगाई थैला
माधवव स्वरूपे आहि ताते तैल बन्ति दिया
अज्ञान आन्धार दूर कैला।''

एकशरण नाम धर्म को सत्र में स्थापना करके असमीया जाति के सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन को एक ही शूत्र में बाधना ही महापुरुष शंकरदेव के जीवन का प्रधान उद्देश्य रहा। उन्होंने ऊच-नीच के भेद-भावों को हटाकर सभी जाति धर्म के लोगों को एक साथ बैठकर भागवती धर्म का रस पान करने के लिए वैष्णव धर्म के द्वारा सभी के लिए खोल दिए।

सर्व वेदान्त का सार 'श्रीमद् भागवत' और 'श्रीमद्भगवद गीता' एकशरण नाम धर्म या महापुरुषीया धर्म के प्रधान प्रमाणिक ग्रन्थ है। महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव के भक्तिधर्म के दार्शनिक भित्ति अद्वैतवाद और विशिष्ट द्वेतवाद के समन्वय से निर्मित हुआ है। भगवान के पूर्ण अवतार, भागवत में वर्णित कृष्ण पर प्रेमभक्ति आरोप करके उपासना और उनके नाम-गुण-श्रवण कीर्तन करना ही शंकरदेव प्रचारित धर्म का मूल मन्त्र है। शंकरदेव द्वारा प्रचारित धर्म के दार्शनित भित्ति ही है 'भागवत'। भागवत में उल्लेखित भक्तिधारा के ऊपर भित्ति करके वैष्णव धर्म का प्रचार होने के कारण इसे 'भागवती वैष्णव' धर्म भी कहा जाता है। कृष्ण भक्ति के लिए अनुकूल विषय को ग्रहण और प्रतिकूल विषयों को वर्जन का संकल्प, भगवान ही हमारा रक्षक है, भगवान को ही पालन कर्ता के रूप में वरण, आत्मसमर्पण और दैन्य -यही सब शरणागत का मूल लक्षण है। इस शरणागति का श्रद्धा भाव जिसके चित्त में उदित हुआ है वही भक्ति का अधिकारी है। भागवत में विष्णु-कृष्ण को महापुरुष कहा गया है। इसी कारण शंकरदेव द्वारा प्रचारित धर्म का दो नाम है 'वैष्णव धर्म' और 'महापुरुषीया धर्म'। भगवान का नाम, गुण, श्रवण और कीर्तन को अग्राधिकार देने के

कारण इसे 'नाम-धर्म' भी कहा जाता है। दूसरी तरफ, ईश्वर एक और अद्वितीय है, उनके समान अथवा उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वह ब्रह्मरूपी सनातन है। इन्हीं ईश्वर-कृष्ण में एकान्त शरण लेने के कारण इसे 'एकशरण नामधर्म' भी कहा गया है। भक्त गणों का अपनी विद्या-बुद्धि-मान-अभिमान आदि सभी का परित्याग कर भगवान की चरण में आत्मसमर्पण करना ही भक्ति की चरम अवस्था है। वही है शरणागति या एकशरण। माधवदेव ने कहा है :-

''मोत मात्र सदा दिय मन मोर भक्त होवा सर्वक्षण
मोके पूजा मात्र मोके करा नमस्कार
कहिलो तोमात तत्ववाणी पाईवा सूखे मोक महामाणी
तुमि प्रियतम सूहृद सखि आमार।''

सनातन धर्म का मूल मार्ग चार है --कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति। इनमें से भक्ति ही ईश्वर के करूणा लाभ का श्रेष्ठ ऊपाय है। भक्ति ही है भगवान प्राप्ति का परम , शुद्ध और निरुपम पथ --

''तप जप तीर्थ स्थान नेलागे धारणा ध्यान
केवल भकति गति साधे,
करन्त नाहिके कष्ट अल्परो नाहिके नष्ट
आक एक विधिनि नावाधे। 175
तिनिउ लोकत चार भकतिर परे आर
नाहि नाहि ताक जाना निष्ट।
हृदयत रूप धरे वचने नामक स्मरे
सि सि जन महन्त विशिष्ट॥'' 176

(श्रीमद् भागवत एकम स्कन्ध)

महापुरुषीया धर्म में भगवान भजन के क्षेत्र में नौ प्रकार के भक्ति के बारे में कहा है जिसे 'नवधा भक्ति' कहा जाता है। वह नौ प्रकार के भक्ति है -- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, पादसेवन, दास्य, साख्य, वन्दन और आत्मविवेदन। शंकरदेव ने कीर्तन के प्रह्लाद चरित में कहा है --

श्रवण कीर्तन स्मरण विष्णुर
अर्च्चन पद सेवन।
दास्य सखित्व वन्दन विष्णुर
करिव देहा अर्पण॥ 340

(कीर्तन-प्रह्लाद चरित)

इस नवधा भक्ति में से श्रवण, कीर्तन और स्मरण लीलामय भक्ति या प्रेममयी भक्ति, पाद सेवन, अर्चन और बन्दन कर्ममयी भक्ति, दास्य, सखीत्व और आत्मनिवेदन को ज्ञानमयी भक्ति कहा जाता है। इस नवधा भक्ति में से 'श्रवण कीर्तन' को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। 'श्रवण कीर्तन' भक्ति के द्वारा भगवान को सन्तुष्ट करके भक्तगण भगवान के कृपा पात्र बन सकते है -

''भकते से करे आक्षाक वश्य।
कहिलो उद्धव ईटो रहस्य॥''137 (कीर्त्तन-पाषण्ड मर्द्दन)

वैष्णव धर्म में भगवान के नाम-गुण-श्रवण-कीर्तन में कोई जात-पात का भेद भाव नहीं है।

''कृष्णार कथात जितो रसिक।
ब्रह्मण जन्म तार लागै किक॥
स्मरक मात्र हरि दिने राति।

नवाछै भकति जाति अजाति।।'' 129 (कीर्तन-पाषण्ड मर्द्दन)

महापुरुष शंकरदेव ने कीर्तन में लिखा है कि ब्रह्मबधी, गुरुबधी पितृ-मातृवधी पापिस्थ व्यक्ति भी हरिनाम, श्रवण-कीर्तन से शुद्धि लाभ कर सकता है-

''ब्रह्मवधी-गुरुवधी जतेक।
पितृ-मातृबधी अनेक॥
कुकुर खाया हेन म्लेछगणे।
सियो शुद्ध होवे हरि कीर्तने॥''117 (कीर्तन-पाषण्ड मर्द्दन)

कोई व्यक्ति जान बुझकर या अज्ञानतावश ही सही अगर वह हरि के नाम श्रवण-कीर्तन करता है तो उसको यमराज के यातना से भी मुक्ति मिल सकती है। महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव ने कीर्तन के अजामिल उपाख्यान में लिखा है -

''परै वा पिछलै सर्पे वा दंशवै
ज्वर ताप पीड़ा करे।
एतेके यदि हरिनाम लवै
जय यातनाक तरै॥'' 185

मूल्यांकन : श्रीमन्त शंकरदेव प्रचारित वैष्णव धर्म के विभिन्न वाणीयों को जानने के पश्चात् हम यही कहेंगे कि शंकरदेव ने एकशरण नामधर्म की पृष्ठभूमि इस प्रकार से तैयार कि थी की समाज के सभी स्तर के व्यक्ति इसे ग्रहण कर सके। यह धर्म अत्यन्त सहज-सरल और सभी प्रकार के वाहयाडम्बरों से मुक्त है। लक्षीनाथ बेजबरुवा देव के भाषा में अगर कहा जाए - 'यह है अत्यन्त सहज और अमुल्य धर्म।'

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के उदय का मूल कारण ही था कि धर्मीय अनुष्ठान का वाहुल्य त्याग करके समाज के साधारण वर्ग के लोगों को धर्म में आर्थिक रूप से राहत प्रदान करना। कारण पूजा-पाठ, जाक-जज्ञ, बलि-विधान आदि अनुष्ठान अत्यन्त व्यववहुल है। इन सबमें पशु-पक्षी, घि-मधु आदि अत्यधिक मात्रा में प्रयोग होता है और इसी कारण समाज के साधारण वर्ग द्वारा यह कार्य करके भगवान को सन्तुष्ट कर पाना सम्भव नहीं है। इसके अलावा इस प्रकार के धर्म तत्व के सार को कोई समझ नहीं पाता है। इसलिए जाक-जज्ञ, मठ-मन्दिर, तीर्थयात्रा, बलि-विधान आदि में धन खर्च ना करके केवल ईश्वर का नाम लेकर, हृदय से भगवान की भक्ति करने के लिए वैष्णव धर्म के प्रतिष्ठापक श्रीशंकरदेव ने लोगों से अनुरोध किया था। श्रीमन्त शंकरदेव ने कहा है -

''तप जप यज्ञ दान सवे विड़म्वन।
केवल भक्तिते तुष्ट होन्त नारायण॥'' 813 (कीर्तन)

शंकरीधर्म में भक्ति के केन्द्रस्थल है 'नामघर'। यहाँ कोई मूर्ति पूजा का व्यवस्था नहीं है। ईश्वर को अनुभव करने के लिए मूर्ति की कोई आवश्यकता नहीं है - इस बात को शंकरदेव भली भाँती समझ गये थे। और इसी कारण वैष्णव धर्म में भगवान के नामस्मरण को ही प्रमुखता मिलि। इसके अलावा 'नामघर' केवल एक धर्मीय अनुस्थान ही नहीं, यहाँ आज भी असमीया समाज के लोगों की समस्यावलियाँ के आलोचना विलोचना होती है। यही सब कारणों से श्रीमन्त शंकरदेव प्रचारित नववैष्णव धर्म असमीया समाज में एक उच्च स्थान अधिर करने में सक्षम हुए।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. **श्री शंकरदेव की रचनायें।**

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

'दस्तावेज' : एक परिचयात्मक मूल्यांकन

* गुलाब सिंह

सारांश– *'दस्तावेज' पत्रिका मूलतः रचना एवं आलोचना की पत्रिका है। जिस समय इसका उद्भव हुआ वह दौर लघु पत्र पत्रिकाओं का दौर था। उस दौर की पत्र पत्रिकाओं में से कुछ ही बची रह सकी है जबकि बहुत सी कालकवलित हो गई। लेकिन 1978 से 2018 तक लगातार दस्तावेज अपने जिस विचारधारा, संतुलित कलेवर और अपनी निरंतरता के लिए जानी जाती है उसका पूरा श्रेय इसके संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को है। 'दस्तावेज' साहित्यिक पत्रिका के क्षेत्र में अपनी निरंतरता बिना किसी बाहरी सहयोग और बिना विज्ञापन का सहारा लिए पाठ्कों के बीच रचनात्मकता को रेखांकित करती हुई और आलोचनात्मक विवेक को बनाए हुए है। 'दस्तावेज' के प्रवेशांक में संपादक ने घोषणा की थी दस्तावेज ने अपनी उस प्रतिज्ञा, अपने संकल्प का पूर्ण तत्परता से निर्वाह किया है। 'दस्तावेज' नाम से जिस सत्यता और प्रमाणिकता का बोध होता है वास्तव में 'दस्तावेज' ने अपने इस अर्थ को शुरू से चरितार्थ किया है। जहां कहीं उसे अपने उद्देश्यों में असंतुलन दिखाई पड़ा है उसने अपने संपादकियों द्वारा कारगर ढंग से हस्तक्षेप किया है। इस दृष्टि से इसके संपादकों का महत्व भी बढ़ा है। इन संपादकीयों पर जितनी प्रतिक्रियाएं छपी है शायद ही हिंदी में किसी लेख पर छपी हो। ये संपादकीय कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं ने आदरपूर्वक मुद्रित भी किए हैं।*

मुख्य शब्द– आधुनिक चेतना, मूल्य, फलक, योगदान, जन समुदाय, अभिव्यक्ति, विधाओं, विचारधारा, मुखपत्र, ज्ञस्य, दूरगामी, परिणाम, परिक्रमा, कालजयी।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आविर्भाव जिस समय से माना जाता है ठीक वही समय हिन्दी पत्रकारिता की शुरुआत का भी है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक चेतना का आविर्भाव और हिन्दी पत्रकारिता का आरंभ एक साथ एवं एक दूसरे के समानांतर हुआ। आधुनिक जीवन मूल्य और उनकी चेतना के विकास तथा उसे विस्तृत फलक देने में पत्र पत्रिकाओं के काशन की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल की शुरुआत की जब भी बात की जाती है उसमें पत्र पत्रिकाओं के योगदान को अवश्य रेखांकित किया जाता है।

पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन से साहित्य के विकास में सबसे बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि साहित्य का संबंध जन समुदाय से हो गया। साहित्य के विस्तृत जन समुदाय से जुड़ते ही उसके लक्ष्य, उसके निहितार्थ एवं उसके सीमा-विस्तार में तुरंत ही बदलाव देखने को मिलते हैं। साहित्य का रूप भी वह नहीं रहता जो पूर्व में था साथ ही साहित्य के विविध

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रूपों में नवीनता को स्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है। व्यापक जनसमूह जब अपने विचार एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है तो वहां साहित्यिक रूपों में न केवल बदलाव परिलक्षित किया जा सकता है बल्कि अभिव्यक्ति के नवीन रूपों का आग्रह देखने को मिलता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के विकास के आधुनिक काल में अभिव्यक्ति के वैविध्यपूर्ण रूप और नवीन से नवीन विधाओं को परिलक्षित किया जाता है। स्पष्ट है साहित्य की विभिन्न विधाओं और अभिव्यक्ति के विविध रूपों के उद्‌भव और विकास में साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं का अन्यतम योगदान है।

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता की एक सुदीर्घ परंपरा रही है जिसमें कई तरह के ऐतिहासिक उतार चढ़ाव दिखाई देते हैं। हिन्दी पत्रकारिता का प्रारंभिक दौर कुछ ज्यादा ही कठिन और विवादास्पद रहा है। प्रारम्भिक दौर की उन पत्र पत्रिकाओं में कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र चंद्रिका, ब्राह्मण, हिन्दी दीप, नागरिक चारिणी पत्रिका, सरस्वती, हंस, मतवाला आदि का नाम लिया जाता है। उसके पश्चात वर्तमान में हिन्दी पत्रकारिता की परंपरा को विकसित करने में नया साहित्य, कल्पना, धर्मयुग, आलोचना, पूर्वग्रह, समालोचक, दस्तावेज आदि पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन पत्र पत्रिकाओं ने हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं के आविर्भाव और उनके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

यह स्पष्ट है कि आधुनिक हिन्दी गद्य की विविध विधाओं जैसे कहानी, निबंध, उपन्यास, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण तथा साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति हिन्दी में आलोचना का प्रारम्भ भी पत्रिकाओं के माध्यम से ही हुआ। हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता में रचनात्मक साहित्य और उसकी विविध विधाओं पर केंद्रित पत्रिकाएं तो बहुत रही है किन्तु शुद्ध आलोचना के क्षेत्र की पत्रिकाओं का प्रायः अभाव रहा है। यह अभाव हमें सातवें आठवें दशक तक देखने को मिलता है। इस अवधि तक 'आलोचना' जैसी एक आध पत्रिका को छोड़कर कोई भी ऐसी पत्रिका नहीं थी जो आलोचना के स्वरुप पर कार्य कर सकें और आलोचना की दशा और दिशा निर्धारित कर सकें। पत्रकारिता के विकास के क्रम में इस अभाव की पूर्ति करने के लिए अक्टूबर, 1978 में त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका दस्तावेज का उद्‌भव हुआ। इसलिए हिन्दी की साहित्य पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेषकर हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में 'दस्तावेज पत्रिका' का ऐतिहासिक महत्व है।

'दस्तावेज' पत्रिका का प्रारम्भ-

दस्तावेज पत्रिका का प्रारंभ अक्टूबर, 1978 में हुआ। यह एक त्रैमासिक पत्रिका है जिसके संस्थापक-संपादक डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी है। बेतियाहाजा, गोरखपुर से प्रकाशित होने वाली यह पत्रिका मुख्यतः आलोचना एवं रचना की पत्रिका है जो विगत 40 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है। हमारे लिए अत्यंत गौरव का विषय है कि इसका 158 वां अंक आज हमारे सामने है। इस पत्रिका का प्रवेशांक जिस स्वरुप, और जिस उद्देश्य को लेकर निकला था आज भी उसी स्वरुप और उसी उद्देश्य को दस्तावेज समर्पित है। इसकी एक अन्यतम विशेषता यह भी है कि इसके प्रवेशांक से लेकर आज तक प्रकाशित हुए अंकों के आवरण पृष्ठ पर एक गोला चित्रित किया गया है। जिसके बारे में संपादक महोदय का कहना है कि "यह पूर्णता का प्रतीक है जो ईशावास्योपनिषद के थम मंत्र से लिया गया है।"[1]

'दस्तावेज' का प्रवेशांक अक्टूबर, 1978 में निकला। जिसमें कुल पृष्ठों की संख्या

96 थी और इसका मूल्य चार रुपये निर्धारित था। इसमें संपादकीय के अलावा कविता, मूल्यांकन,टिप्पणी, लेख, संस्मरण और समकालीन भारतीय साहित्य नाम से कुछ छह स्तम्भ थे।

इस अंक के संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अपना संपादकीय दृष्टिकोण, दस्तावेज के उद्देश्य, विचारधारा इत्यादि को स्पष्ट किया हैं। 'मूल्यांकन' स्तंभ में नंदकिशोर नवल ने 'बासी और ताजी कविताएं' में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'काठ का घीसा' और 'बांस का पुल' की समीक्षा की है। इसी क्रम में अरुणेश नीरन ने अमृतलाल नागर के चर्चित उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल' की 'पीर का पुराण' शीर्षक से मूल्यांकन किया है। 'टिप्पणी' स्तंभ के अंतर्गत राजेंद्र यादव ने 'सामाजिक परिवर्तन और कथा साहित्य' शीर्षक से कथा साहित्य और सामाजिक परिवर्तन के संबंधों को दर्शाया है। 'लेख' स्तंभ में विजय मोहन सह ने 'समकालीन हिन्दी उपन्यास:व्यक्ति और समूह का अंतराल' शीर्षक लेख में उपन्यासों में चित्रित व्यक्ति और समूह के संबंधों का उद्घाटन किया है। 'कहानी:संरचना और मूल्य' लेख में बच्चन सह कहते हैं कहानी की संरचना कविता से बहुत कुछ मिलती जुलती है। 'रचना की चुनौतियां और आलोचना की सृजनशीलता' लेख में रामचंद्र तिवारी ने आलोचना विधा पर अपना मंतव्य स्पष्ट किया है। 'समकालीन भारतीय साहित्य और सांस्कृतिक अस्मिता' शीर्षक लेख में परमानंद श्रीवास्तव भाषा को संस्कृति से अनिवार्य रुप से अंतर्संबंधित बताते हैं। 'संस्मरण' स्तंभ में विद्या निवास मिश्र के 'रोमानिया में भारत से साक्षात्कार' शीर्षक संस्मरण में उनकी रोमानिया यात्रा का वृतांत स्तुत किया है। 'समकालीन भारतीय लेखन' स्तंभ में, आधुनिक उड़िया कविता के कतिपय पहलू: सीमाकांत महापात्र, समकालीन उड़िया कविताएं (अनुवाद): शंकरलाल पुरोहित, डोगरी साहित्य: कल से आज तक तथा कुछ डोगरी कविताएं पदमा सचदेव को स्थान प्राप्त हुआ है।

'दस्तावेज' पत्रिका के उद्देश्य- जब भी कोई पत्रिका अस्तित्व में आती है तो उस से पूर्व उस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली सामग्री, पत्रिका के उद्देश्य, स्वरुप, दृष्टि, लक्ष्य इत्यादि का विश्लेषण किया जाता है। तत्पश्चात उसके लक्ष्य, उद्देश्य,दृष्टि इत्यादि का निर्धारण होने पर ही उस पत्रिका को वास्तविक धरातल पर उतारा जाता है। किसी भी लक्ष्य और उद्देश्य को निर्धारित करना आसान है लेकिन उन घोषित लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करना अपने आप में बहुत बड़ा चुनौतीपूर्ण कार्य है। किसी पत्रिका के आदि से लेकर उसकी संपूर्ण जीवन यात्रा तक लगातार एक समान दृष्टिकोण बना कर चलना उससे भी दुष्कर कार्य है। 'दस्तावेज' पत्रिका के प्रारंभ से पूर्व इन सभी तत्वों का गहराई से विचार कर विश्वनाथ साद तिवारी ने दस्तावेज पत्रिका को अस्तित्व प्रदान किया।

'दस्तावेज' पत्रिका के संस्थापक– संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी इस पत्रिका के संपादकीय दृष्टिकोण, विचारधारा, उद्देश्य एवं लक्ष्य आदि पहलुओं को संपादकीय में ही स्पष्ट कर देते हैं। वे पत्रिका के प्रकाशन के कार्य को बहुत ही कष्ट साध्य करार देते हुए संपादकीय में लिखते हैं-, "पत्रिका निकालना भी लेखन की तरह ही एक नर्क से गुजरना है। इस सर्जनात्मक और असर्जनात्मक आयोजन में उस क्रूर संसार का और गहरा साक्षात्कार होता है जिसके बीच एक लेखक जी रहा या धीरे-धीरे मर रहा होता है।"[2] आगे अपने संपादकीय में तिवारी जी कहते हैं- "लेखक के सामने कई तरह की समस्याएं होती

है जैसे वह किसके लिए लिख रहा है और किसलिए लिख रहा है।"[3] किसी भी पत्रिका के प्रकाशन एवं संपादन के साथ ऐसे कई प्रश्न जुड़े हुए होते हैं जिसका सामना उस पत्रिका को करना पड़ता है। साथ ही पत्रिका के स्वरूप निर्धारण व उसकी विचारधारा की समस्या भी नित्य बनी रहती है। तिवारी जी संपादकीय में स्पष्ट करते हैं कि "स्वरूप से मेरा मतलब विचारधारा से हैं। विचार के बिना जीना मुश्किल है तो मेरा भी अपना एक विचार है। पर मेरी पत्रिका में वह सब भी छपेगा जो मेरे विचारों के विरुद्ध है। संपादकों और आलोचकों की गुटबन्दियों तथा लेखकों के अतिवादी रुझानों से बहुत अहित हो चुका है रचना-आलोचना का।"[4] यानी तिवारी जी उनकी व्यक्तिगत विचारधारा से पत्रिका की विचारधारा को पूर्णतया निरपेक्ष रखना चाहते हैं।

डॉ. तिवारी अपने संपादकीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "यह पत्रिका गुटनिरपेक्ष होगी अर्थात् किसी भी शिविर या विचारधारा से आबद्ध होकर प्रकाशन नहीं करेगी।"[5] इसी उद्देश्य को लक्ष्य करते हुए मनोहर श्याम जोशी 50 अंक के लोकार्पण के अवसर पर कहते हैं कि "इस पत्रिका में दूसरे लेखकों के भी चेहरे दिखाई देते हैं जबकि आज की अधिकांश पत्रिकाओं में संपादकों के ही चेहरे चमकते रहते हैं।''[6] दस्तावेज संपादक से ज्यादा लेखकों की पत्रिका है।"[7]

दस्तावेज जब प्रारंभ हुई तो आरंभ में कुछ पत्रों ने उसकी विचारधारा का सवाल उठाया गया था। जो विचारधारा का अर्थ केवल मार्क्सवादी विचारधारा ही स्वीकार करते हैं उन्हें दस्तावेज से निराश होना पड़ेगा। दस्तावेज किसी विचारधारा का मुखपत्र नहीं है। यह पत्रिका गुटबंदियों से मुक्त है। दस्तावेज के संपादक लेखक संघों की राजनीति में विश्वास नहीं करते और ना ही उनका किसी भी लेखक संघ से किसी कार से संबंध है। उनकी एक स्पष्ट और दृढ़ विचारधारा है। और वही दस्तावेज की भी विचारधारा है। इस पत्रिका में सभी विचारधाराओं के लेखक और उनकी रचनाएं प्रकाशित होती है। सभी प्रकार की पुस्तकों की समीक्षाएं भी।

'दस्तावेज' का एक और उद्देश्य है किसी स्तरीय रचना जिसका रचनाकार चाहे अप्रसिद्ध भी है उसके प्रकाशन का कार्य करके साहित्य जगत में उसका मूल्य निर्धारित करना। दस्तावेज रचनाकार केंद्रित पत्रिका न होकर रचना केंद्रित पत्रिका है। इसी उद्देश्य को लक्षित करते हुए डर्ऑक्टर तिवारी उल्लेख करते हैं कि "दस्तावेज से उन सबको मदद मिलेगी जो रचना एवं चतन की दुनिया में गंभीरता से सक्रिय है। चाहे वह अपने समय के अचर्चित ही क्यों ना हो। दस्तावेज के लिए महत्व रचना का होगा रचनाकार का नहीं।"[8] आगे तिवारी जी लिखते हैं, "आदमी जैसा है उसे उसका वही रूप दिखाना और उसके भीतर छिपी मनुष्यता की तलाश ही दस्तावेज का लक्ष्य बन सके तो पर्याप्त होगा।"[9] यानी आदमी को उसका सही चेहरा दिखाना और उसके भीतर छिपी मनुष्यता की तलाश ही दस्तावेज का सर्वमान्य लक्ष्य है।

'दस्तावेज' पत्रिका की आलोचना दृष्टि– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के संपादकत्व में अक्टूबर,1978 में त्रैमासिक पत्रिका दस्तावेज अस्तित्व में आई। हिन्दी भाषा और साहित्य की दिनोंदिन विलुप्त हो रही श्रेष्ठ पत्रिकाओं की परंपरा के बीच दस्तावेज की विद्यमानता निश्चित ही साहित्यिक पत्रकारिता के लिए गौरव की बात है। 40 वर्षों की लंबी यात्रा में अब तक इसके 158 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। यह सब इस पत्रिका

की विकसित आलोचना दृष्टि एवं संकल्पित विचारधारा का ही दूरगामी परिणाम है।

किसी भी पत्र या पत्रिका का अस्तित्व उसकी विचारधारा से संबंधित विषय सामग्री के काशन पर निर्भर करता है। दस्तावेज की विचारधारा या उसके दृष्टिकोण का विवेचन संपादक ने वेशांक के संपादकीय में ही कर दिया था। दस्तावेज के थम अंक में दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए संपादक लिखते हैं, "विचार के बिना जीना मुश्किल है तो मेरा भी अपना एक विचार है पर मेरी पत्रिका में वह सब भी छपेगा जो मेरे विचारों के विरुद्ध है।"[10] परिक्रमा स्तंभ में अरुणेश नीरन की पत्र शैली में लिखी गई विखंडित सामग्री से सहमत न होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा याद रखी और प्रारंभ में वाल्टेयर का कथन उद्धत किया, ''मैं भले ही आपके कहे हुए एक भी शब्द से सहमत न होऊ परन्तु मैं मरते दम तक आपकी इस स्वतंत्रता की रक्षा करुँगा कि आप जो कहना चाहते है, कह सकते है''[11] और उसे प्रकाशित किया है। इन अर्थों में दस्तावेज का दृष्टिकोण विस्तृत है।

डॉ. तिवारी दस्तावेज के संपादकीय दृष्टिकोण को और ज्यादा स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "यह पत्रिका गुटनिरपेक्ष होगी अर्थात किसी विशेष विचारधारा से आबद्ध होकर प्रकाशन नहीं करेगी क्योंकि शिविरग्राही मान्यताएं किसी भी पत्रिका को एक सीमित पाठक वर्ग ही दे पाती हैं जबकि किसी भी कालजयी पत्रिका का उद्देश्य सीमित पाठक वर्ग नहीं अपितु व्यापक पाठक वर्ग होता है।"[12] यानी दस्तावेज किसी एक निश्चित विचारधारा का अनुसरण नहीं करती वह दल बंदियों से सर्वथा विमुक्त है। दस्तावेज में सभी विचारधाराओं के रचनाकार और उनकी कृतियों को स्थानप्राप्त होता है। दस्तावेज न प्रतिभाओं को काश में लाने के लिए भी तिबद्ध है लेकिन तिस्थापित साहित्यकारों को हाशिए पर धकेल कर नहीं। डॉक्टर तिवारी की दृष्टि नवीनता के साथ ही परंपरा बोध को स्वीकार करती है। अर्थात् वे परंपरा एवं आधुनिकता का एक सामंजस्य बनाते हुए पत्रिका को समृद्ध करते हैं। साथ ही दस्तावेज का जोर समकालीनता पर ज्यादा रहा है। यदि इसके अंको का विश्लेषण किया जाए तो समकालीनता के प्रति उसके गहरे लगाव को परिलक्षित किया जा सकता है।

दस्तावेज की दृष्टि में रचनाकार महत्वपूर्ण है। "दस्तावेज से उन सबको मदद मिलेगी जो रचना की दुनिया में गंभीरता से सक्रिय है चाहे वह अपने समय के अचर्चित ही क्यों न हो। दस्तावेज के लिए महत्व रचना का होगा रचनाकार का नहीं।"[13] प्रथम अंक के संपादकीय का यह अंश संपादकीय दृष्टिकोण के मूल मंत्वय को पूर्णतया अभिव्यक्त करता है।

'दस्तावेज' में प्रकाशित सामग्री– दस्तावेज मूलतः रचना एवं आलोचना की पत्रिका है। अतः इसमें इससे संबंधित सामग्री का ही प्रकाशन किया जाता है। दस्तावेज के कुछ स्तंभों का प्रकाशन लगभग नियमित रूप से होता है जबकि कुछ स्तंभ रचना की उपलब्धता के आधार पर प्रकाशित किए जाते हैं। कविताएं, लेख व टिप्पणी, पुस्तक समीक्षा व मूल्यांकन आदि लगभग नियमित प्रकाशित होने वाले स्तंभ है तथा समकालीन भारतीय साहित्य, देशांतर, मिथक चतन, पत्र आदि दस्तावेज के अस्थाई स्तंभ है। इसके अलावा बहस एवं परिचर्चा, कहानी, नाटक, परिक्रमा, यात्रावृत्त, संस्मरण, साक्षात्कार, डायरी, व्याख्यान, आत्मकथा, जीवनी, दोहे, ग़ज़ल आदि का प्रकाशन इनकी उपलब्धता के आधार पर किया गया है। यहां कुछ महत्वपूर्ण स्तंभों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा

रहा है-

(1) **संपादकीय**- किसी भी पत्र पत्रिका की अंतर्वतह्नप्राण धारा के प्रवाह का साक्षी संपादकीय होता है। दस्तावेज का संपादकीय भी इस कथन का अपवाद नहीं है। अन्य पत्र पत्रिकाओं की तरह दस्तावेज में भी संपादकीय का नियमित चलन नहीं है लेकिन साहित्य जगत में किसी विशेष घटना या अवसर पर इसका प्रकाशन अवश्य होता है। आमतौर पर दस्तावेज के संपादकीय अत्यंत ही तीक्ष्ण और व्यवस्था पर चोट करने वाले होते हैं। इन सम्पादकियों पर प्रतिक्रियाएँ भी भरपूर हुई है। ये संपादकीय कई महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं ने आदरपूर्वक मुद्रित भी किए हैं। अपने समय में किसी पत्रिका के संपादकीय को ऐसा गौरव मिलना बहुत दुर्लभ है।

(2) **'कविताएँ' स्तंभ**- 'कविताएँ' स्तंभ दस्तावेज का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं नियमित काशन वाला स्तंभ है। इस स्तंभ के अंतर्गत विभिन्न भारतीय भाषाओं की कविताओं का प्रकाशन किया जाता है। विभिन्न भाषाओं की अनूदित कविताएं भी इस स्तंभ में स्थान प्राप्त करती है। दस्तावेज ने इस स्तंभ में कई नए रचनाकारों की कविताओं को भी स्थान देकर ऐतिहासिक कार्य किया है।

(3) **'पुस्तक समीक्षा या मूल्यांकन' स्तंभ**- पुस्तक समीक्षा काप्रारंभ भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग की देन है। दस्तावेज इस परंपरा को जीवंत बनाए हुए हैं। दस्तावेज में लगभग नियमित रूप से पुस्तक समीक्षा या मूल्यांकन का काशन होता है। भारतेंदु व द्विवेदी युगीन पुस्तक समीक्षा गुण-दोष आधारित थी जबकि दस्तावेज में प्रकाशित पुस्तक समीक्षा में गुण दोष व इसके अतिरिक्त आलोचना जगत के समस्त पहलु सन्निहित हैं। इसमेंप्राचीन व नवीन सभी कार की रचनाओं की समीक्षा होती है। फिर भी दस्तावेज का जोर समसामयिकता पर अधिक रहा है। इसमें समकालीन पुस्तकों व रचनाकारों पर प्रायः चर्चा अधिक हुई है।

(4) **'लेख' स्तंभ**- लेख स्तंभ से दस्तावेज के व्यापक और उदारवादी दृष्टिकोण का पता चलता है। इस स्तंभ में समकालीन लेखन से जुड़े रचनात्मक लेखन कविता, निबंध, संस्मरण, यात्रावृत्त, पत्र,साक्षात्कार इत्यादि की समीक्षा को प्रकाशित किया जाता है।

(5) **'समकालीन भारतीय साहित्य' स्तम्भ**- यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि दस्तावेज ने समकालीनता को महत्व दिया है। इस स्तंभ में समकालीन भारतीय लेखन से परिचित कराने का यास किया गया है। यह स्तंभ विभिन्न भारतीय भाषाओं में हो रहे समकालीन रचनात्मक साहित्य को प्रकाशित करने का कार्य कर रहा है। दस्तावेज ने अब तक उड़िया, मराठी, गुजराती, असमिया, बांग्ला, पंजाबी, उर्दू, डोगरी, तमिल, मलयालम, तेलुगु इत्यादि भाषाओं के समकालीन लेखन से पाठकों को अवगत कराया है।

(6) **'देशांतर' स्तंभ**- दस्तावेज का देशांतर स्तंभ समकालीन विदेशी लेखन को समर्पित स्तंभ है। इसमें समकालीन विदेशी साहित्य को प्रकाशित किया जाता है। दस्तावेज ने इस स्तंभ के माध्यम से रूसी, जापानी, अमेरिकी, फिलिस्तीनी, वल्गारी, नाइजीरिया, अंग्रेजी, वियतनामी, इतालवी, बांग्लादेशी आदि भाषाओं के समकालीन भारतीय लेखन से संबंधित सामग्री प्रकाशित की है।

(7) **अन्य स्तंभ**- उपर्युक्त स्तंभों के अतिरिक्त मिथक, परिचर्चा, बहस, संस्मरण, जीवनी, यात्रावृत्त, डायरी, व्याख्यान, दोहे, ग़ज़ल आदि स्तंभों का उनकी उपलब्धता के

आधार पर प्रकाशन किया जाता है। जिसमें हिन्दी की लगभग सभी विधाओं से संबंधित सामग्री को स्थान दिया जाता है।

'दस्तावेज' पत्रिका के विशेषांक– दस्तावेज की अपनी विगत 40 वर्षों की निर्बाध विकास यात्रा में अद्यतन 158 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें से विभिन्न साहित्यकारों एवं साहित्यिक पहलुओं से संबंधित लगभग 20 विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं। दस्तावेज पत्रिका ने अपने विशेषांकों की शुरुआत हिन्दी के महान साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पुण्य स्मरण (संयुक्तांक 5-6) से की है। दस्तावेज के विशेषाकों की परंपरा में प्रेमचंद विशेषांक (संयुक्तांक 7-8), आठवें दशक की कविता विशेषांक (संयुक्तांक 13 -14), आठवें दशक की आलोचना विशेषांक (संयुक्तांक 15-16), आचार्य रामचंद्र शुक्ल विशेषांक (संयुक्तांक 21-22), रामविलास शर्मा विशेषांक (संयुक्तांक 23-24), अज्ञेय विशेषांक (अंक 29), विश्व कविता विशेषांक (अंक 41), जयशंकर साद विशेषांक (अंक 44), रचना और आलोचना विशेषांक (अंक 62), निराला विशेषांक (अंक 75), तुलसीदास विशेषांक (अंक 80), महात्मा गांधी विशेषांक (अंक 100), जैनेंद्र कुमार विशेषांक (अंक 119), हिन्दी स्वराज विशेषांक (अंक 125), उड़िया साहित्य केंद्रित विशेषांक (अंक 139), महात्मा बुद्ध पर केंद्रित विशेषांक (अंक 150) इत्यादि मुख रूप से उल्लेखनीय है। दस्तावेज के यह विशेषांक ऐतिहासिक महत्व के होने के कारण यह पृथक रूप से पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुए हैं। यह विशेषांक प्रकाशित कर दस्तावेज ने साहित्य जगत में जगत में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कायम की है।

'दस्तावेज' पत्रिका की सीमाएँ– "पत्रिका निकालना भी लेखन की तरह ही एक नरक से गुजरना है।"[14] प्रवेशांक के संपादकीय का यह कथन उचित ही तीत होता है। किसी भी पत्र-पत्रिका को निकालने में कई सारी समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक पत्रिका किसी भी काल के समग्र लेखन का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती है। दस्तावेज पत्रिका भी इस से पृथक नहीं है। इसकी भी अपनी कुछ सीमाएं हैं जिससे बाहर जाकर वह कार्य नहीं कर सकती है।

किसी भी साहित्यिक पत्रिका का संपादकीय उसकी अन्तर्वर्तीप्राण धारा का साक्षी माना जाता है। यह प्रत्येक अंक की समग्र सामग्री का प्रतिनिधित्व करता है। दस्तावेज में संपादकीय का नियमित प्रचलन नहीं है। जिससे कई बार पाठकों को संपादकीय रस से वंचित रहना पड़ता है। साथ ही दस्तावेज ने व्यापक और उदार दृष्टिकोण अपना कर समकालीन लेखन से जुड़ी सामग्रियों कविता, निबंध, संस्मरण, यात्रावृत्त, पत्र, साक्षात्कार एवं आलोचना का प्रकाशन किया है। पर रचना एवं आलोचना की इस पत्रिका में कहानी व उपन्यास को स्थान न मिलना संपादकीय दृष्टि श्न खड़े करता है।

दस्तावेज पत्रिका का जोर समसामयिकता पर अधिक रहा है। इसमें समकालीन हिन्दी साहित्य से जुड़ी सामग्री का प्रकाशन प्रचुर मात्रा में किया है। इस वजह से प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी साहित्य इसके अंकों में बहुत कम स्थान पा सका है जो इसकी एक कमी मानी जा सकती है। इस पत्रिका ने विभिन्न भारतीय भाषाओं में हो रहे समकालीन लेखन से पाठकों को परिचित कराया है तथा विभिन्न विदेशी भाषाओं में हो रहे समकालीन विदेशी लेखन को प्रकाशित कर उल्लेखनीय कार्य किया है। लेकिन दस्तावेज

अप्रवासी भारतीय लेखन के प्रति उदासीन है। इसके समग्र अंकों का विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि दस्तावेज ने अप्रवासी भारतीय लेखन से दूरी बना रखी है। प्रत्येक पत्रिका की अपनी सीमा होती है। दस्तावेज की भी अपनी सीमाएं हैं किन्तु दस्तावेज ने अपनी सीमाओं के बावजूद भी उल्लेखनीय कार्य किया है। कोई भी रचनाकार किसी साहित्य के रचनात्मक लेखन का आंकलन करते समय रचना-आलोचना की इस पत्रिका दस्तावेज की उपेक्षा नहीं कर सकता।

'दस्तावेज' पत्रिका : एक मूल्यांकन– 'दस्तावेज ' पत्रिका मूलतः रचना एवं आलोचना की पत्रिका है। जिस समय इसका उद्‌भव हुआ वह दौर लघु पत्र पत्रिकाओं का दौर था। उस दौर की पत्र पत्रिकाओं में से कुछ ही बची रह सकी है जबकि बहुत सी कालकवलित हो गई। लेकिन 1978 से 2018 तक लगातार दस्तावेज अपने जिस विचारधारा, संतुलित कलेवर और अपनी निरंतरता के लिए जानी जाती है उसका पूरा श्रेय इसके संपादक विश्वनाथ साद तिवारी को है। दस्तावेज साहित्यिक पत्रिका के क्षेत्र में अपनी निरंतरता बिना किसी बाहरी सहयोग और बिना विज्ञापन का सहारा लिए पाठकों के बीच रचनात्मकता को रेखांकित करती हुई और आलोचनात्मक विवेक को बनाए हुए है। दस्तावेज के प्रवेशांक में संपादक ने घोषणा की थी दस्तावेज ने अपनी उस तिज्ञा, अपने संकल्प का पूर्ण तत्परता से निर्वाह किया है।

दस्तावेज नाम से जिस सत्यता और माणिकता का बोध होता है वास्तव में दस्तावेज ने अपने इस अर्थ को शुरू से चरितार्थ किया है। जहां कहीं उसे अपने उद्देश्यों में असंतुलन दिखाई पड़ा है उसने अपने संपादकीयों द्वारा कारगर ढंग से हस्तक्षेप किया है। इस दृष्टि से इसके संपादकों का महत्व भी बढ़ा है। इन संपादकीयों पर जितनी तिक्रियाएं छपी है शायद ही हिन्दी में किसी लेख पर छपी हो। ये संपादकीय कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं ने आदरपूर्वक मुद्रित भी किए हैं।

अपने 40 वर्षों के इतिहास में दस्तावेज ने 158 अंक प्रकाशित किये है जिसमें से लगभग 20 विशेषांक हैं जो की अत्यंत महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक महत्व के हैं। ये विशेषांक लेखकों, काव्य रूपों, रचना वृतियों, हिन्दी की बोलियों और हिन्दीतर भाषाओं पर भी केंद्रित है। दस्तावेज ने समकालीन भारतीय साहित्य स्तंभ के अंतर्गत लगभग सभी भारतीय भाषाओं और देशांतर स्तंभ के अंतर्गत अनेक विदेशी भाषाओं पर कुछ ना कुछ सामग्री प्रकाशित की है। साथ ही दिवंगत साहित्यकारों के पत्रों को प्रकाशित करके एक ऐतिहासिक कार्य किया है। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि दस्तावेज किसी खास विचारधारा का मुखपत्र नहीं है। दस्तावेज अब तक किसी खेमे का मुखपत्र नहीं बनी, यह उसकी सीमा नहीं शक्ति है।'[15] इसमें सभी विचारधाराओं से संबंधित सामग्री प्रकाशित हुई है। यहां तक कि जो संपादक के विचारों के विरुद्ध है वह भी दस्तावेज ने प्रकाशित किया है। दस्तावेज ने नए रचनाकारों, न प्रतिभाओं को सामने लाने में गहरी रुचि ली है। लेकिन स्थापित साहित्यकारों की उपेक्षा किए बगैर। दस्तावेज एक अकेले व्यक्ति के संकल्प से निकलने वाली पत्रिका है। इसके पीछे ना कोई पूंजी संस्थान है, ना सरकार, न कोई राजनीतिक दल या लेखक संगठन। यह एक ऐसी पत्रिका है जो बिना किसी भय और लोभ के अपने सीमित संसाधनों से हिन्दी भाषा की रचना और आलोचना को सामने लाने की कोशिश कर रही है।

सारांशतः यह कहा जा कहा जा सकता है कि दस्तावेज की उपलब्धियां किसी भी लिहाज से कमतर नहीं है। संभव है इसके कुछ लेख, कुछ कविताएं एवं कुछ समीक्षाएं कमजोर रही हो या वह हिन्दी के समग्र लेखन का तिनिधित्व ना कर पाई हो किन्तु इन सब सीमाओं के बावजूद भी दस्तावेज को स्वस्थ पत्रकारिता के क्षेत्र में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 2003, अंक 101,संपादकीय
2. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
3. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
4. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
5. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
6. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 2003, अंक 101,संपादकीय
7. अभिनव इमरौज, व्यक्ति विशेश दस्तावेज 2 डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, सभ्या प्रकाशन, नई दिल्ली, संपादकः देवेन्द्र कुमार बहल, प्रथम प्रकाशन 2018, पृ. 356
8. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
9. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
10. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
11. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : एक मूल्यांकन, रेवती रमन, सामयिक बुक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, पृ.304
12. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
13. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 1978, अंक 1,संपादकीय
14. 'दस्तावेज' पत्रिका, बेतियाहाजा, गोरखपुर, अक्टूबर-दिसंबर 2003, अंक 101,संपादकीय
15. मेरे साक्षात्कार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, किताबघर प्रकाशन,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृ. 27

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

छत्तीसगढ़ लोकनाट्य 'नाचा' में लोक-चेतना

* अर्चना झा
** भगवती साहू

सारांश- *किसी विशेष क्षेत्र की प्रकृति और सांस्कृतिक जीवन की झलक प्रस्तुत करने के लिए उनके सांस्कृतिक रूपों उनकी स्थानीयता लोकजीवन, परंपराओं, अनुष्ठानों, लोकाचारों, लोक मूल्यों तथा भाषा के विविध रूपों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। छत्तीसगढ़ की संस्कृति तथा लोक-कला रूपों की समृद्ध परंपरा है। सभी कला रूप अपने आप में अनूठे हैं उनकी पारंपरिक नृत्य-संरचना, संगीत, लय-ताल तथा अभिनय कला प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।*

मुख्य शब्द- लोक परम्परा, लोक जीवन, लोक, भाव भंगिमायें, लोकनाट्य, नंचका दिन गम्मत

चेतना के द्वारा ही मनुष्य अपने चतुर्दिक जीवन-जगत का ज्ञान प्राप्त करता है और अपने व्यावहारिक क्रियाकलापों को उद्देश्यपूर्ण बनाता है। समाज क्रमशः अपनी लोक-परंपराओं के विकास के साथ जनोपयोगी भी होता है। ब्राह्मण-वादी समाज, सामंतवादी व्यवस्था, राजाओं की निरंकुशता, वर्ग विशेष की श्रेष्ठता और धार्मिक-कट्टरता का इतिहास ने सदा विरोध किया है। युगानुरूप लोक दृष्टि बदली। आधुनिक काल में लोक-जीवन की पारंपरिक स्तब्धता लगभग टूटने लगी और स्वाधीनता के पश्चात् तो टूटने का क्रम बहुत तेज हो गया। लोक को समझने के लिए लोक जीवन में प्रवेश कर उन्हें निकट से जानना नितांत आवश्यक है। महावीर अग्रवाल के अनुसार ''आज का मानव जीवन सामाजिक पाखंड ऊंच-नीच की खाइयों, जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं, भौतिक ऐषणाओं एवं यौनजनित कुंठाओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के जाल में इतना जकड़ा हुआ है कि वह अपने लक्ष्य से भटक गया है। जो उसका नहीं है उसकी प्राप्ति के लिए संघर्षरत हैं।''[1]
'लोक' एक वृहद जन समूह है जो अपने श्रम और उल्लास की अभिव्यक्ति पारंपरिक रूपों में करता आ रहा है। यह सत्य है कि सामूहिकता की भावना ही 'लोक' की आत्मा है। सुरेश अवस्थी नाट्य-विधा के संबंध में लिखते हैं- ''नाट्य परिदृश्य की संकल्पनाओं में अभिव्यक्ति के सभी माध्यम और विधाएं सम्मिलित होती हैं। इसमें कथित शब्द से लेकर गायन, वादन संगीत, भाव भंगिमाओं, स्वांग, रंग सज्जा, वेशभूषा और अंतर्मन की अवस्था तक का समावेश होता है। लोक कलाएं तब तक सशक्त और सार्थक नहीं बन पाती जब तक कि उसमें लोक का अर्थ प्रतिध्वनित नहीं होता उसकी यह प्रकृति ही उसे परंपरा और

* शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, श्री शंकराचार्य महाविद्यालय जुनवानी, भिलाई (छत्तीसगढ़)
** शोधार्थी, शासकीय वि.या.ता.स्वाशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

प्रयोग दोनों से जोड़ देती हैं।''[2]

रामप्रसाद दधीचि ने लोकनाट्य की समृद्ध परंपरा के विषय में लिखा है- ''लोकनाट्य जहां हमें अपनी समृद्ध परंपराओं से जोड़ता है वहां मानव जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है और वह समाधान आज भी उतना ही अर्थ में है जितना अतीत में था।''[3] कहना ना होगा कि लोकनाट्य मात्र अतीत के अवशेषों का संकलन व प्रस्तुति नहीं हैं, बल्कि वह वर्तमान का जीवित अभिलेख भी है। सहजता और आडंबर-हीनता के कारण ही लोकनाट्य को मंच विहीन रंगमंच भी कहा जाता है। लोक और नाटक की संकल्पना हमें अपनी समृद्ध परंपराओं से जोड़ता है। साथ ही मानव जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करता है। युगानुरूप लोक परंपरा ही नहीं बदलती, इतिहास दृष्टि निर्मित करने वाला जनमानस के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होता है।

लोक अभिव्यक्ति का बहुत सशक्त माध्यम है लोकनाट्य। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य लोक जीवन की हर अनुभूति और कल्पना, उसके संघर्षों की गाथा उल्लास और विजय की मुस्कान है। लोक जीवन में नाचा का जो विद्यमान रूप है उसमें लोक जीवन की घटनाएं सहजता पूर्वक प्रतिबिंबित होती है। इसके माध्यम से लोक-चेतना के अनेक रूप हमें देखने को मिलते हैं। छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक स्वाभिमान को जागृत एवं प्रदर्शित करने के लिए छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य नाचा स्वस्थ् मनोरंजन और लोकरंजन के भाव से परिपूर्ण लोक कला है। नाचा के कलाकार कथावस्तु, साज सज्जा, संगीत और धुन के साथ साथ गायन-वादन को समयानुकूल प्रयोग करते हुए अपनी मौलिक पहचान और आस्वाद बनाए रखते हैं। लोक जीवन में व्याप्त श्रम के प्रति निष्ठा, दुख और पीड़ा को हंसकर झेलने की क्षमता और प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखने की दृष्टि हास्य व्यंग्य के साथ सामने प्रस्तुत होती है।

''छत्तीसगढ़ की लोक नाट्य 'नाचा' में धड़कती संस्कृति और लोक-धर्मी जन के अकुलाते प्रश्न अतीत की अनुगूंज ओर वर्तमान की गतिशीलता को साथ-साथ सामने लाते हैं।''[4] नाचा अपने आप में एक संपूर्ण नाट्य विधा है जबकि गम्मत उसका हास्यप्रधान प्रधान स्वरूप है इसका संगठन अत्यंत सहज और सरल है। नाचा के कलाकार कोई ऐसे विषय वस्तु पर कटाक्ष करते हैं जो सामाजिक बुराइयों, तात्कालिक समस्याओं या सामाजिक विसंगतियों के रूप में उन्हें ज्वलंत प्रतीत होते हैं। हालांकि उनके पास कोई लिखित आलेख नहीं होता ना ही नाट्य विधा के अनुसार अलग-अलग दृश्य एवं संवाद ही होते हैं। अपने नाट्य कौशल के द्वारा बहुत ही कम समय में और बिना किसी कठिनाई के सभी कार्य को संपन्न कर लेते हैं।

'नाचा' किसी साहित्य की तरह केवल शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं है ना ही वह किसी चित्र या मूर्ति कला की तरह काल की बाहों में कैद कोई स्थिर रूप है। वह तो जीवन की अनुभूतियों, आवेग, आकांक्षाओं और सपनों को सहज सादगी से अभिव्यक्ति देने वाला जीवंत मंच है। नाचा में लोक चेतना की तेजस्विता उनेक रूपों में परिलक्षित होती है। इसी तेजस्विता के बल पर कलाकारों की संघर्ष शक्ति की प्रखरता अनेक विसंगतियों पर करारा चोट करती है। प्रारंभिक स्वरूप में ही नाचा की प्रस्तुति का प्रमुख उद्देश्य नसीहत के साथ मनोरंजन ही था। सामाजिक संबंधों में विकृतियां, अंधविश्वास, सामाजिक बुराइयां जैसे

दहेज, छुआछूत, बाल विवाह, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, शोषण एवं देश प्रेम आदि को काफी गंभीरता के साथ प्रस्तुत कर समाज को जागरूक करने का प्रयास किया गया।

लोकनाट्य में हरियाली का सुंदर संदेश प्रस्तुत करते हुए कलाकार गंभीर कथ्य को व अपने दर्द को वाणी देते हुए कहते हैं कि ''एं दू कोस के रेंगई मोला नई बियापे बेटा, आज के दु कोस हा काली के चार कोस हो जाही तोर संसो बियापे है। जस जस जंगल हा दुरिहा होवत जाथे ये पीरा बाढ़त जात है।''[5]

समयानुसार नाचा ने अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा लोगों में जागृति लाने की महती भूमिका अदा की है। देश की आजादी में छत्तीसगढ़ की जनता पीछे नहीं थी। सांस्कृतिक चेतना का सबसे मुखर उदाहरण के रूप में लोक नाट्य नाचा लोकचेतना का संवाहक बना। नाचा की प्रमुख स्त्री पात्र नंचकारिन अपनी मधुर आवाज द्वारा अंग्रेजों को इंगित करते हुए गीत प्रस्तुत करती हैं –

''अई हो `.......................
भागे ला हरथे गा मोरो
भाग ला हरथे न
आए हे बिदेशी सगा, आए हे बिदेशी सगा
भागे ला हरथे न ....।''[6]

अभिनय एवं गीतों के माध्यम से कलाकार समाज को जो संदेश देना चाहते हैं उसमें वह सफल हो जाते हैं। लोकनाट्य की परंपरा सदियों से प्रवाहित होती रही है। लोक जीवन की समर्थ अभिव्यक्ति का अत्यधिक प्रभावी माध्यम हैं 'नाचा'। लोकनाटकों का उद्‌भव एवं विकास ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ वहीं फलित वह पोषित हुआ संभवतः यही कारण है कि उसमें ग्रामीण जीवन की सहजता, उन्मुक्ता और अलमस्ती का होना स्वाभाविक है। 'पोंगा पंडित' मे। स्वर्णकुमार साहू की यह रचना छुआछूत के विरूद्ध लोक चेतना का प्रबल साक्षी है –

''जात खातिर कतिक तोर, गुमान रे बइहा
कुकुर बिलई घर में पोसे नई गिस तोर जात
भाई-भाई के मारपीट में लगथे तोला भात
ये बइहा.......................................।''[7]

प्रेम साइमन है ने अपनी आत्माभिव्यक्ति में कहा है कि हम अपनी आंखों के सामने अन्याय अत्याचार, शोषण रोज होते देख रहे हैं, सुन रहे हैं पर हम कुछ भी नहीं कर पाते यह कुछ ना कर पाने के लिए लिजलिजे पन से उपजे चुभन ही सबसे बड़ी व्यथा है चुभन और पीड़ा को गीतों एवं अभिनय के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने में कुशल होते उनके सभी कलाकार।

लोक-व्यूह का भेदन करने वालों में दाऊ दुलार सिंह 'मंदराजी', दाऊ रामचंन्द्र देशमुख, महासिंग चंद्राकर हबीब तनवीर, प्रेम साइमन, राम हृदय तिवारी, खुमान साव जैसे महान लोक कलाकारों ने नाचा का परिष्कार किया और उसे सामाजिक दायित्व बोध से जोड़ने के सफल प्रयास किए। दर्शक रात-रात भर जागकर उतावली और बावली होकर नाचा को देखती है। सूर्य की पहली किरण जब तक अपनी रोशनी नहीं बिखेरती तब तक वह मंत्रमुग्ध बैठे रहते हैं। गम्मत प्रस्तुत करने वाला गम्मतिहा गम्मत के माध्यम हास्य और

व्यंग्य की प्रबल धारा और प्रचुर सांगीतिक वैभव के साथ रात-रात भर दर्शकों का मनोरंजन करता रहता है। लोक कलाकार की अंतर्वेदना को रेखांकित करता हुआ लोकनाट्य 'गम्मत' लोक कलाकारों के वास्तविक जीवन की समस्या को सामने रखता है। मस्ती और आनंद में डूबे हुए सभी कलाकार एवं दर्शक छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत नाचा को आज भी जीवंतता प्रदान किए हुए हैं। नाचा को नई ऊंचाई प्रदान करने वाले हबीब तनवीर ने 'बहादुर कलारिन' में नारी की घुटन और पीड़ा को क्रमशः प्रस्तुत किया है। गीत, नृत्य और अभिनय का अद्भुत समन्वय नाचा, सतत प्रवाहिनी नदी की तरह नयेपन को स्वीकारते हुए तथा अपने रंग-ढंग में ढालने की शक्ति रखता है। नाचा की प्रस्तुतियां पोथियों में बंद आचार व्यवहार और संस्कार ना होकर जीवन की व्यवहारिकता है। यही कारण है कि नाचा की आत्मीय तरंगिनी अब तक प्रवाहित होकर इस अंचल के लोक जीवन को स्पंदित कर रहा है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. अग्रवाल महावीर, हबीब तनवीर का रंग संसार, पृष्ठ 218
2. अवस्थी सुरेश, प्रयोग और परंपरा, चौमासा अंक 4 पृष्ठ 86
3. दधीचि रामप्रसाद, लोक साहित्य शरदांक, जुलाई 1985, पृष्ठ 46
4. अग्रवाल महावीर, छत्तीसगढ़ी लोक नाट्य नाचा, पृष्ठ 45
5. वही, पृष्ठ 45
6. साहू दलेश्वर, लोक मडई प्रकाशन पृष्ठ 17
7. वहीं, पृष्ठ 18

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

पं. माधवराव सप्रे के निबंधो में शिक्षा और नीति

* जी.पी. जायसवाल

सारांश- *पं. माधवराव सप्रे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन साहित्यकार थे। वे एक सफल कहानीकार समालोचक अनुवादक एवं पत्रकार ही नहीं थे अपितु एक श्रेष्ठ निबंधकार भी थे। सप्रे जी जीवन संग्राम में विजय प्राप्ति एवं व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा और नीति सम्मत होना आवश्यक मानते थे। इसी कारण उनके निबंधों में शिक्षा और नीति के विषय विशेष रूप से दिखाई देते हैं। शिक्षा और नीति परक निबंधो में उनके जीवन अनुभव का सार है, जिसमें मानव समाज विशेषकर युवापीढ़ी एवं विद्यार्थियों को नई सोच व नई दृष्टि के साथ जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। इनके निबंधों में जीवन में आने वाले संघर्ष, सफलता- असफलता, आशा-निराशा, सुख-दुःख, हर्ष- विषाद के कारण और समाधान का दिग्दर्शन भी होता है।*

मुख्य शब्द- जीवन-संग्राम, शिक्षा- नीति, धैर्य, स्वावलम्बन, उत्तम शील।

शोध पद्धति- प्रस्तुत शोध आलेख में मैंने द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया है। इसके अन्तर्गत मैंने पं. माधवराव सप्रे के साहित्य पर उपलब्ध कृतियों, लेखों, समाचार पत्रों के आधार पर तथ्य संकलन किया है। प्रारंभ से ही समाज के लिए शिक्षा और नीति को आवश्यक माना गया है। शिक्षा और नीति की यह प्रवृत्ति साहित्य में आधुनिक युग में भारतेन्दु युग में दिखाई देती है। यद्यपि शिक्षा और नीति नवजागरण काल की पृष्ठभूमि बनी किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु जी के आगमन के बाद यह साहित्य में व्यापक रूप से दिखाई देने लगी। भारतेन्दु जी के निबंध, नाटक एवं काव्य में शिक्षा और नीति की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। यह प्रवृत्ति आगे चलकर द्विवेदी युग के निबंधकारों में विशेष रूप से दिखाई देने लगी। स्वयं द्विवेदी जी शिक्षा और नीति के ध्वजवाहक रहे। इसी कारण द्विवेदी जी के निबंधों में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इन्होंने न केवल साहित्य के माध्यम से अपितु पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से शिक्षा और नीति का संदेश दिया। इसी प्रकार द्विवेदी युगीन निबंधकार पं. माधवराव सप्रे के पत्र-पत्रिकाओं एवं उनके निबंधों में शिक्षा और नीति की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

सप्रे जी के ''जीवन-संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय'' निबंध संग्रह में संकलित बीस निबंध शिक्षा और नीति पर आधारित है। सप्रे जी ने शिक्षा और नीतिपरक निबंधों में अपने जीवन अनुभव के उन पहलुओं को रेखांकित किया है। जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दृष्टिकोण से मानव समाज को विकासोन्मुख जीवन जीने की प्रेरणा

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, संत गुरुघासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला धमतरी (छ.ग.)

मिलती है। ''जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय'' निबंध संग्रह के संदर्भ में छत्तीगसढ़ के प्रसिद्व साहित्यकार केयूर भूषण ने लिखा है- ''इसमें संग्रहित सभी लेख जीवन से जुड़े हुए विषयों पर है, केवल उपदेशात्मक नहीं, जीवन की अनुभूतियों को इसमें उन्होंने प्रकट किया है। मानों प्रयोगशाला में सिद्व हुए ''योग'' है। बीमारी को दूर करने के लिए यह दवा के रूप में मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए अर्थात पूर्ण इंसान बनने के लिए जिन गुणों की आवश्यता है उसे प्राप्त करने के उपाय इसमें बताए गए हैं। स्वास्थ्य से लेकर वक्तृत्व कला तक। ज्ञान का आगार है यह पुस्तक पर बोझिल नहीं।''[1] इसी प्रकार इस निबंध संग्रह के महत्व पर प्रकाश डालते हुए छत्तीसगढ़ के प्रसिद्व साहित्यकार व समीक्षक डॉ. विनय कुमार पाठक ने लिखा है- ''जीवन दर्शन पर आधारित ऋषि मुनियों से लेकर आधुनिक पाश्चात्य लेखकों की कृतियां मिलती है लेकिन सरल हिन्दी भाषा में तर्क की कसौटी पर कसकर और व्यवहार की तुला पर तौलकर जिन बीस निबंधों को संग्रहित किया गया है वे अत्यन्त महत्वपूर्ण और जीवनोपयोगी है, इनमें पाश्चात्य लेखकों की तरह उलझन नहीं, भारतीय संस्कृति और पर्यावरण की दृष्टि से सुलझने का सहारा है, आज जबकि जीवन में जटिलताएँ अधिक है विषम स्थितियाँ और समस्याएँ प्रचुर है यह ग्रंथ सबके लिए पठनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।''[2] डॉ. पाठक जी ने आगे लिखा है- ''प्रस्तुत कृति के लेख कोरे उपदेश और थोथे आदर्श नहीं है प्रत्युत्तर एक अनुभवी और विविध क्षेत्रों में सफल व्यक्ति के जीवन अनुभवों का निचोड़ है जो अमृत बूंद की तरह मृत जीवन में जीवन संचार कर सकता है, यह पुस्तक जीवन साफल्य की कुंजी है, जिसे देश और समाज को सप्रे जी ने लोकार्पित किया है।''[3] स्पष्ट है कि सप्रे जी के शिक्षा और नीति पर आधारित निबंध न केवल उपदेशात्मक है अपतु व्यावहारिक जीवन का दर्पण भी है।

सप्रे जी सामान्य शिक्षा और नीति शिक्षा के प्रबल पक्षघर थे। वे मानते थे कि विद्यार्थियों को सामान्य शिक्षा और नीति शिक्षा साथ-साथ दी जानी चाहिए। उन्होंने 'शिक्षक' निबंध में साधारण शिक्षा और नीति शिक्षा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- ''जब-जब शिक्षक को कोई अवसर मिल जाय तब-तब वह अपने विद्यार्थियों को इस प्रकार का उपदेश दिया करें कि सदाचरण की योग्यता बहुत बडी है, सन्मार्ग से चलने में चाहे कितनी कठिनाईयाँ आवे पर धीरज धरकर उनमें से पार होना चाहिए और सन्मार्ग का त्याग करने को चाहे कोई कैसा लालच दिखलावें तो भी मोहित न होना चाहिए। यदि प्रत्येक शिक्षक शाला की साधारण शिक्षा देते-देते उपर्युक्त प्रकार की कुछ नीति शिक्षा भी दिया करें तो उसमें उसकी क्या हानि है।''[4]

आज प्रत्येक व्यक्ति जीवन में सुख-शांति और आनंद प्राप्त करना चाहता है। उनकी यह भी इच्छा रहती है कि उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, की भी प्राप्ति हो। इस सबकी प्राप्ति के लिए सप्रे जी ने आरोग्यता को प्रमुख साधन माना है। उन्होंने लिखा है-''यदि हम आरोग्यता की ओर उचित ध्यान न देंगे तो हमें सदा यही कहना पड़ेगा कि ''तन रोगों की खान हैं'' और ''यह संसार असार है।'' रोगी मनुष्य अपने कुटुम्ब के लिए भार तो हो ही जाता है परन्तु वह स्वयं अपने जीवन को भी भार रूप मानने लगता है। व्याधि से अधिक भयानक शत्रु इस संसार में कोई नहीं है। इसमें अपने शरीर को सदा बचाये रखने का प्रयत्न करना प्रत्येक मनुष्य का पवित्र कर्तव्य है।''[5]

संसार में जिस किसी ने समय के महत्व को समझा है, वह सफलता के सोपान तक पहुँचा है। संसार में आज जितने विद्वान हुए, महान बने प्रसिद्धि की उँचाई को प्राप्त किए वे सभी प्रत्येक क्षणों का सदुपयोग किये। संसार में ऐसा कोई नहीं है जो बीते हुए क्षणों को पुनः वापस दिला दे। एक बार समय निकल जाने के बाद वह फिर से प्राप्त नहीं होता। हम न उसे कम कर सकते हैं न खरीद सकते हैं और न इच्छा अनुसार बुला सकते हैं इसीलिए समय रहते ही अपना कार्य कर लेना चाहिए। सप्रे जी ने समय को धन से भी मूल्यवान निरूपित करते हुए कहते हैं- ''बहुधा लोग धन -संबधी बातों में थोड़ा बहुत विचार किया ही करते हैं परन्तु वे समय की कुछ परवा नहीं करते। लेकिन समय धन से भी अधिक मूल्यवान है। गया हुआ धन मेहनत करने से भी आ सकता है, भूली हुई विद्या पठन से फिर भी आ सकती है, बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य भी कभी-कभी औषधि द्वारा सुधर सकता है, परन्तु गया हुआ समय हमको हजार सिर पटकने पर भी कभी नहीं मिल सकता।''[6] जीवन-सग्राम में विजय प्राप्ति के लिए सप्रे जी उद्देश्य की एकता को आवश्यक मानते हैं। उनकी मान्यता है कि जो एक निश्चित उद्देश्य निर्धारित कर कार्य करता है, उसे सफलता अवश्य मिलती है। जो एक साथ अनेक कार्यो को करने के लिए सोचता है वह किसी भी कार्य को पूर्ण रीति से नहीं कर सकता। सप्रे जी ने लिखा है- ''यदि हम अपने एक मन को अनेक कामों में एक साथ ही बाँट देंगे तो ''न इधर के न उधर के' वाली कहावत चरितार्थ हुए बिना न रहेगी। यह जमाना खास या विशेष काम करने वालों का है, साधारण जनों का नहीं। जो मनुष्य किसी एक काम को हाथ में लेकर एकाग्रचित से उसी काम को पूरा करेगा वही इस जीवन-संग्राम में विजय प्राप्ति का आधिकारी हो सकता है।''[7] आज विद्यार्थी अपने उद्देश्य के प्रति गंभीर दिखाई नहीं दे रहे हैं। वे अपने उद्देश्य से भटक रहे हैं। एक निश्चित उद्देश्य न लेकर एक साथ विभिन्न कार्यो को करना चाहते हैं। इसी कारण अपेक्षाकृत सफलता प्राप्त नही होती। ऐसे में सप्रे जी के यह निबंध प्रासंगिक है।

'संतोष' निबंध में सप्रे जी ने प्रत्येक मनुष्य को संतोष प्रवृत्ति को अपना कर अपने जीवन के अभावों को दूर करने के लिए कर्मवादी बनकर सतत कार्य करने की प्रेरणा दी है। उनकी मान्यता है कि संतोष प्रवृत्ति के मनुष्य जीवन के संघर्षों को और कष्टों को ईश्वर का वरदान मानकर सहते हैं, और मन को कभी विचलित नहीं होने देते। उन्होनें संतोष वृत्ति को कल्पवृक्ष की संज्ञा देते हुए लिखा है- ''संतोष एक प्रकार का कल्पवृक्ष है। यद्यपि उससे कल्पवृक्ष के समान इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती तथापि इच्छित वस्तु के होने से जो आनंद होता है, वैसा ही मनुष्य को अपना मन संतुष्ट रखने से भी होता है। ऐसा कोई नियम नही है कि संतुष्ट रहने से कार्य की सिद्धता होती है, परन्तु अपने कार्य की हानि होने से असंतोषी मनुष्य को जिस प्रकार दुःख होता है वैसा संतोष रखने वाले को नहीं होता। संतोष से मन सदैव स्थिर रहता है, मन की स्थिरता से सुख और अस्थिरता से दुःख होता है।''[8] सप्रे जी ने संभाषण कुशलता को जीवन-संग्राम में विजय प्राप्ति के लिए आवश्यक गुण माना है। इस गुण को उन्होंने एक कला निरूपित किया है। संभाषण कला के द्वारा मनुष्य लोकप्रिय तो होता है साथ ही उसके व्यक्तित्व की एक अलग पहचान हो जाती है। सप्रे जी ने लिखा है- ''जिस मनुष्य को यह बात अच्छी तरह से मालूम है कि किस मौके पर किस मनुष्य के साथ कैसी बातचीत करनी चाहिए उसके पास एक बड़ा भारी

अस्त्र है। यह उस अस्त्र की सहायता से स्वार्थ और परार्थ साधन करके थोड़े ही परिश्रम से समाजप्रिय हो सकता है।''[9]

'स्वावलम्बन' निबंध में सप्रे जी ने स्वावलम्बन के महत्व को बताया है। उन्होंने स्वावलम्बन अर्थात आत्मनिर्भता को मनुष्य की उन्नति और सफलता के लिए आवश्यक गुण माना है। सप्रे जी लिखते हैं- ''यह एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य अनेक विघ्नबाधाओं के रहते हुए भी अपने उद्देश्य को पूरा करने का यत्न कर सकता है। आलसियों और परोपजीवियों के लिए तो यह विष से भी अधिक कड़वा है। जिसे संसार में रहना है, जिसे संसार में अपना अस्तित्व स्थिर रखना है और जिसे सुख का अनुभव करना है, उसके लिए स्वावलम्बन एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रिय विषय है।''[10] स्वावलंबी मनुष्य के महत्व को रेखांकित करते हुए सप्रे जी ने आगे लिखा है- ''जो मनुष्य अपनी शक्तियों पर पूरा विश्वास रखेगा वही स्वावलंबी होकर अपने भाग्य का विधाता बन जायेगा और अपने देश तथा समाज की कुछ उपयोगी सेवा भी कर सकेगा। उल्टा, जो अपनी शक्तियों पर विश्वास नहीं रखता और जिसे परावलम्ब ही प्रिय है वह दासत्व की श्रृंखला में बंधा हुआ मृतप्राय बना रहेगा। पानी के बुलबुले की तरह उसका पैदा होना न होना बराबर है।''[11] इस तरह जीवन में सफलता के लिए स्वावलंबी होना आवश्यक है।

सप्रे जी ने जीवन-संग्राम में विजय प्राप्ति के जितने भी उपाय है, उनमें उत्तम शील को श्रेष्ठ माना है। मनुष्य अपने श्रेष्ठशील के बल पर धर्म, अर्थ, ऐश्वर्य, यश और ज्ञान की प्राप्ति करता है। यह गुण मनुष्य का सच्चा जीवन-चरित्र है। उत्तम शील के महत्व पर प्रकाश डालते हुए सप्रे जी ने लिखा है- ''बहुधा देखा गया है कि सम्पत्तिवान तथा शिक्षित मनुष्य भी उत्तम शील के अभाव में अपनी उदण्ड वृत्ति के कारण अपमानित और नष्ट हो जाता है और धनहीन तथा अल्प शिक्षित मनुष्य शीलवान होने के कारण समाज में पूज्य माना जाता है। जिस मनुष्य में उत्तम शील होता है उसे अपने विषय में दूसरों से सिफारिश कराने की आवश्यता नहीं होती क्योंकि उसका सिफारिश करने वाला स्वयं उसका शील है। विदेश यात्रा में और अपरिचित मनुष्यों के बीच में किसी मनुष्य का सबसे श्रेष्ठ सहायक केवल उसका शील ही हो सकता है।''[12] मनुष्य चाहे जितना शिक्षित या धनवान हो शील के अभाव में उसकी उपेक्षा होती है और उत्तमशील के बल पर साधारण मनुष्य भी महान बन जाता है। सप्रे जी ने लिखा है- ''उत्तम शील किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही आवश्यक नहीं होती बल्कि यह एक ऐसा अमूल्य गुण है जिसके बिना मनुष्य किसी भी व्यवसाय में या किसी प्रकार की जीवन यात्रा में सुखी और सफल मनोरथ नहीं हो सकता। संसार मे ऐसे बहुत से कुरूप, धनहीन और विद्याहीन मनुष्य हो गये हैं, जो केवल शीलवान और सदाचारी होने कारण इतिहास के पृष्ठों को अंलकृत करके अपना नाम अजर अमर कर गये हैं।''[13]

दृढ़ इच्छा शक्ति के बल पर मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इस शक्ति के आधार पर मनुष्य अनेक कठिन, असंभव, असाधारण एवं अद्भुत कार्य को भी कर लेता है। इसीलिए कहा भी गया है ''जहाँ चाह है वहाँ राह है।'' दृढ़ इच्छाशक्ति के संबध मे सप्रे जी ने लिखा है- ''दृढ़ इच्छाशक्ति वही है जिसके प्रभाव से हम अपने संकल्पित कार्य की सिद्धि के लिए आत्मसमर्पण कर दें, किसी अड़चन, विघ्न या बाधा की परवा न करें, किसी भी कारण से पीछे न लौटें, किन्तु अपने इष्ट-कार्य में तन, मन, धन

से सदा प्रयत्न करते रहें।''[14] 'धैर्य' निबंध में सप्रे जी ने जीवन में धैर्य के महत्व व आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। यह सत्य है कि जब मनुष्य के जीवन में कष्ट, दुःख, अभाव, संकट व संघर्ष आता है तो धैर्यहीन मनुष्य विचलित हो जाता है किन्तु धैर्यवान मनुष्य इन संकटों का सामना इस आशा और विश्वास के साथ करता है कि कभी न कभी अच्छे दिन तो आयेगा ही। सप्रे जी लिखते हैं-''विपदार्णव को पार करने के लिए धैर्य से बढ़ कर दूसरी नाव ईश्वर ने बनाई ही नहीं। मानवी जीवन-संग्राम में आगे कदम बढ़ाने के लिए और विघ्न तथा दुःख रूपी शत्रुओं के कठोर आघात सहन करने के लिए हमको धैर्य का ही कवच धारण करना चाहिए।''[15]

जीवन में सफलता हासिल करने के लिए सप्रे जी ने निर्णय शक्ति को भी आवश्यक गुण माना है। मनुष्य कठिन परिस्थितियों और अभावों में रहकर भी अपनी निर्णय क्षमता के बल पर अनेक उपब्लधियों को हासिल कर लेता है। सप्रे जी ने लिखा है- ''चाहे मनुष्य कितना भी योग्य क्यों न हो जब तक किसी काम को करने के लिए उसका इरादा बिलकुल पक्का न रहेगा तब तक वह जीवन की दौड़ में केवल धक्के ही खाता रहेगा। कंटकाकीर्ण पथ में सिद्धि केवल उसी को मिलती है जो सफलता पाने की दृढ़ इच्छा रखकर किसी एक बात का निर्णय करे और अच्छे लिखाड़ी की गेंद की तरह हर बार उतनी ही तेजी और और शक्ति के साथ उपर उठने की कोशिश करे, जितनी शक्ति के साथ आपत्तियाँ इसे नीचे पटक देने का प्रयत्न करें।''[16] कहा जा सकता है कि निर्णय शक्ति के आधार पर मनुष्य जीवन में उल्लेखनीय और अनुकरणीय कार्य कर जाता है।

'आदत अथवा स्वभाव' निबंध में सप्रे जी ने विद्यार्थियों को ही नहीं अपितु सभी मनुष्यों को अपने जीवन को सार्थक एवं सफल बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण आदतों को ग्रहण करने की बात कही है जैसे- ''प्रत्येक दिन के कार्य को पहले से निश्चित करना, निरन्तर परिश्रम करना, कार्य पूर्ण होने तक उसमें दृढता से जुटे रहना, प्रत्येक कार्य समय पर पूर्ण करना, प्रत्येक मनुष्य से कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करना, प्रत्येक कार्य या विचार के लिए एक सिद्धान्त होना, आचरण उत्तम होना, किसी भी कार्य को उत्तमता के साथ पूरा करना, अपनी मनोवृतियों को अपने अधीन रखने का यत्न करना, स्नेहीजनों से आत्मीय व्यवहार करना।''[17]

अतः समग्र रूप से कहा जा सकता है कि आज मनुष्यों में विशेष रूप से विद्यार्थियों में आत्म विश्वास, दृढ़ इच्छा शक्ति, धैर्य, निर्णय शक्ति, सदाचार, संभाषण कुशलता, उत्तमशील, व्यावहारिक कार्यकुशलता, उद्देश्य की एकता, संतोष, स्वावलम्बन, शारीरिक आरोग्यता, समाज प्रेम, देश प्रेम, गुरूजनों, माता-पिता व बड़ो के प्रति आदर भाव की कमी दिखाई पड़ रही है। चारो ओर अनैतिकता, अनुशासनहीनता, दुराचार, उदण्डता, उच्चश्रृंखलता एवं स्वार्थ का बोलबाला है। ऐसे समय में पं. माधराव सप्रे के शिक्षा और नीति पर आधारित निबधों के पठन-पाठन की अत्यंत आवश्यकता है। यह निबंध न केवल साहित्यिक, सामाजिक दृष्टिकोण से उत्कृष्ट है अपितु व्यावहारिक व शिक्षा और नीति के दृष्टिकोण से भी उत्कृष्ट एवं प्रासंगिक है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. सप्रे, संपादक डॉ अशोक सप्रे : 'जीवन -संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' पं. माधवराव

सप्रे साहित्य शोध केन्द्र रायपुर (छ.ग.) प्रथम संस्करण 23 अप्रैल 2005 भूमिका

2. दैनिक नवभारत, 14 जुलाई 2008
3. वही, 14 जुलाई 2008
4. 'छत्तीसगढ- मित्र' सितम्बर 1901 'शिक्षक' पृ- 2
5. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'शारीरिक स्वास्थ्य' पृ- 10
6. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'समय का सद्व्यय' पृ- 11-12
7. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'उद्देश्य की एकता' पृ- 21
8. 'छत्तीसगढ़- मित्र' फरवरी 1901 'संतोष' पृ- 14
9. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'संभाषण कुशलता' पृ- 89
10. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'स्वावलम्बन' पृ- 29
11. वही पृ- 37
12. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'उत्तम शील' पृ- 49
13. वही पृ- 52
14. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'दृढइच्छा शक्ति' पृ- 75
15. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'धैर्य' पृ- 138
16. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'निर्णय शक्ति' पृ- 170
17. सप्रे, संपादक डॉ अशोक : 'जीवन- संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय' 'आदत अथवा स्वभाव' पृ- 148-156

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

बघेलखण्ड की सांगीतिक धरोहर-संगीत सम्राट तानसेन एवं उनके ध्रुपद

* वाणी साठे

सारांश- *बघेलखण्ड में, संगीत की एक समृद्ध परंपरा रही है, यहाँ की संगीत विभूतियों में, संगीत सम्राट तानसेन, उस्ताद मुहम्मद खान, बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ आदि का नाम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लिया जाता है। संगीत सम्राट तानसेन, ग्वालियर से, महाराजा रामचन्द्र के शासनकाल में रीवा आये व यहाँ के राज गायक हुए। तानसेन ने रीवा में, संगीत सार '''रागमाला'' व ''गणेश स्त्रोत'' जैसी अनमोल व कालजयी रचनाऐं की। तानसेन के शिष्यों में रामसिंह व शिष्या तानी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है, यह दोनों ही रीवा के थे तानी ''मल्हार'' गायन की विदुषी मानी जाती थी। कुछ समय पश्चात् अकबर के बुलाये जाने पर, महाराज रामचन्द्र ने तानसेन को आगरा भेज दिया रीवा रियासत के अन्य संगीत कलाकारों में सर्वश्री धनसुर, बुधप्रकाश, व धोंधी आदि का नाम सम्मान से लिया जाता है। रीवा रियासत में आश्रय व सम्मान प्राप्त करने वालों में संगीतज्ञ हासिरखान, सुक्खन खान, सक्कर खान, कुतुबअली, मोहम्मद खान, मुबारक अली, अहमद खान, मुनव्वर खान आदि प्रमुख है। इनके अलावा सर्वश्री बख्तावर, सीताराम (गायक व नर्तक) बिहारी जी (मर्तक) झब्बा (नतर्क) दिलावर खान (ख्यालगायक) करम अलि खान(वीणा-वादक) साधूबाबा, बच्चा जी, जगन्नाथ, रघुनाथ (सितार-वादक) आदि भी बघेल खण्ड के मूर्धन्य कलाकार थे।*

मुख्य शब्द- धरोहर, ध्रुपद, राजनीति की धुरी, आश्रयदाता, रसज्ञ

बघेलखण्ड सुसंस्कृति का हृदय, विन्ध्यांचल का गौरव राजनीति की धुरी, चार सौ वर्षों के राजनैतिक परिवर्तन का साक्षी एक ऐसा भूखण्ड है, जो राजतंत्रीय, कुलीन तंत्रीय और लोकतंत्रीय सभ्यता को अपने अंग में समेटे हुए भारत के मध्य में स्थित है। धर्म निरपेक्षता इस क्षेत्र के लिये नई बात न होकर यहाँ की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर है।[1] विन्ध्य क्षेत्र के राजवंशों का साहित्य एवं संगीत के क्षेत्र में जो योगदान रहा है, वह मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। विन्ध्य क्षेत्र के राजा कला और विद्या के पोषक तो थे ही, साथ ही में विद्वानों, साहित्यकारों, संगीतकारों और गायकों के आश्रयदाता भी थे। इनके द्वारा संस्कृत, हिन्दी साहित्य और ध्रुपद साहित्य को काफी प्रोत्साहन मिला। यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा अपनी भौगोलिक इकाई में सीमित होकर भी देश की सांस्कृतिक धारा से अविछिन्न रूप से जुड़ी है।[2]

संगीत कला के इतिहास में इस क्षेत्र का विशिष्ट स्थान है। रीवा राजवंश संगीत का

* शोध छात्रा, संगीत, बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

विशेष सम्मान करता था। अतएव यहाँ संगीतकला खूब फली-फूली। यहाँ प्रतिदिन संगीत सभाऐं होती थी, इन सभाओं में मृदंग, वेणु और वीणा का विशिष्ट स्थान था। इसके अलावा तूर्य, पतह भेरी जैसे वाद्यों का भी प्रचलन था। इस क्षेत्र में मध्यकाल में ध्रुपद गायकी का विशेष विकास हुआ तानसेन के रचित ध्रुपद इसमें प्रमुख उदाहरण है।

बघेलखण्ड को संगीत जगत में विशिष्ट स्थान दिलाने वाले तानसेन ही थे, जो बघेलराजा रामचन्द्र (1555-82 ईसवी) के दरवारी गायक थे। तानसेन के ध्रुपद गायन और ताल पक्ष पर राजा रामचन्द्र ने एक करोड़ चन्द्रांकित टका दान में दिये थे। तानसेन के संगीत की यशकीर्ति जब दिल्ली दरबार तक पहुँची, और बादशाह अकबर ने उन्हें राजा रामचन्द्र जू देव से दिल्ली दरबार में पहुंचाने का आदेश दिया, तब बहुत ही द्रवित होकर, भारी मन से, राजा रामचन्द्र ने तानसेन को ससम्मान दिल्ली पहुँचवाया। इतना ही नही स्वयं राजा ने तानसेन की कला को नमन करते हुए उनके आदर स्वरूप उनकी पालखी को स्वयं कांधा भी दिया। सम्राट अकबर ने जलाल खाँ शस्त्राध्यक्ष को रामचन्द्र राजा के पास भेजकर तानसेन को बुलवाया। राजा रामचन्द्र ने विद्रोह करना अपनी शक्ति से बाहर समझकर, तानसेन को पूरे साज और सामान के साथ बादशाह के लिये भेंट आदि देकर विदा किया।[3]

तानसेन की ध्रुपद रचनाओं में बादशाह अकबर का नाम तो मिलता ही है। राजा रामचन्द्र की प्रशंसा में रचित ध्रुपद उनकी गुणग्राहकता, उदारता, कलाप्रियता और संगीत प्रेम और समर्पण का साक्ष्य देता है।

इन ध्रुपदों में राजा रामचन्द्र बघेला प्रतापी दरबार दानशीलता, पराक्रम संगीतज्ञता से भरपूर वर्णन मिलते हैं। आश्रय दाताओं की मुद्रा से अंकित ध्रुपदों में (रागमाला में अंकित) राजा रामचन्द्र जी संगीत की समझ एवं उनके सभा संगीत का वर्णन स्वयं तानसेन जी ने अपने काव्य में किया है।

जहाँ तक हम जानते हैं, वहाँ तक राज्याश्रित किसी भी कवि को तानसेन जैसा बड़ा पुरस्कार नही मिला। उस युग में इतना धन और सम्मान भला किस कलाकार को आश्रयदाता की प्रशंसा के लिये विवश न कर देगा? राजा राम ने पर्याप्त समय तक अकबर से डँटकर मोर्चा लिया और अकबर के राज्याभिषेक से प्रायः 29 वर्ष पश्चात् वे अकबर से मिलने तब गये, जबकि उन्हें लेने के लिये जैन खाँ, कोका और बीरबल जैसे प्रतिष्ठित सामन्त भेजे गए इनकी प्रशंसनीयता असंदिग्ध है।[4]

राजा रामचन्द्र जू देव की संगीत गुण ग्राहकता से भरपूर संगीत सम्राट तानसेन का यह ध्रुपद इस बात का प्रमाण है।

सभा संगीतः-

''जहाँ सभा पण्डित नितै कालीन होई ते
श्रवननि दुषभंजन कलाअंत कलानिधि नाम
जोई जो राजा राम, और जो कौन काम सुनि चक्रवती तहाँ रिधि
नाम प्रथम ही गाइ अलापिख, रसु राखि विनु रीझीअै कछू कहै अदना
जिनि जिनि के नेत्रानि सुषु जीवन कौ फलु सु तौं तुम नीकें जानत
जाकी सम को मेरे जान कोउ जग मध ना
राग टोडी-धीमा-तिताला,

मंगलकामना- अचल चक्रवती बघेलों चक्रता नरेस गुरू
गनेस बुधि सुरेश सकल विद्या विनांनी,
छत्र पाट सिंगासन अभिचल रहौ
जो लौं दधि सुमेर भुअ लौं सुलितानी
सप्तदीप नव थंड दसौं दिसा जसु छायौ
षट दरसन निवास परम ज्ञानी
वीरभांन जूँ के नंद करन
महाराज राजा रामचन्द्र इन्द्र सनमानी

-मालकौंस तेवरा

''नाद सागर''के अनुसार तानसेन लिखते हैं

अगम अपार नाद सागर की राह तामे
तम जिहाज मान आहत अनाहत
जम जानि इकईस मूराछिना वादवान
बाइस सुरति सौं चलावैं।
कावि, रीति, संगीत, गीत परबंध
धुरपद धरु तन-वितत जानि
ता मध बैठी शरज लगाई
लंगर सप्तसुर मंदराचल
उनचास कोटि सुतान सुध फिराई
मथन करें सुचउदह रतन लेई,
निकारिनाम गनावै,
ओडव-षाडव संपूरन वादी समवादी,
अतीत, अनाघत, सम बिसम तीनि, ग्रामिनि के करि दिषावै।
दस विधि गमक,लें आरोह-अवरोह मन्द्र सो,
मध तार स्फुरत प्रत्यहित उपज करि।
धरनि, मुरनि, अलाप, चारी, सघन,
औ, सुर बरज, जाने अस्थान।
चारि, विचारि राग लीऐ निकारि,
अनेक रत्न, संगीत रत्नाकर, सौ।
कहि माल धूअ माठादि ताल समेति गाई रिझाई,
गुनीजन राम को तब भावौं।

सुधमल्हार-चौताला

इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीत सम्राट तानसेन ने स्वयं राजा रामचन्द्र के संगीत प्रेम ही नही शास्त्रीय संगीत के शास्त्र एवं उसकी बारीकियों को समझने की क्षमताओं का उल्लेख भी इस ध्रुपद में किया है। इससे यह तो निश्चित ही सिद्ध होता है कि राजा रामचन्द्र जू देव संगीत के गुण ग्राहक ही नही संगीत कला एवं शास्त्र के सूक्ष्म ज्ञाता भी थे। यह गौरव हमारे बघेलखण्ड को ही मिला है।[5]

इसके अलावा तानसेन ने महाराज रामचन्द्र जू देव की शान में दरवार में ध्रुपद लिखा

है जो-षट चौताला 57 आ. में है, श्यामा,-ईमनी बिराउरि चौताला, जिसे वर्तमान में यमनी बिलावल चौताल के नाम से जाना जाता है, नयन तुरंग ध्रुपद यह भी ईमनी बिलावल चौताल के नाम से जाना जाता है, महाराजा की दानशीलता का वर्णित ध्रुपद राग पूरिआ-चौताला जिसे आज राग पूरिया-चौताल कहते हैं- निबद्ध है। उसी प्रकार बसंत ऋतु और होली का वर्णन और राजा रामचन्द्र की होली के उत्सव का सुन्दर वर्णन राग हिन्दोल-चौताला, तथा नादसागर नामक ध्रुपद में महाराजा की संगीत ज्ञानशीलता एवं समझ का वर्णन है।

तानसेन द्वारा महाराजा रामचन्द्र की स्त्रुति में गाऐ जाने वाले श्रंगारिक ध्रुपद भी मिलते है। जिसमें नयन-नामक ध्रुपद जो राग सुध मल्हार-चौताला, रूप यौवन गर्विता ध्रुपद जो राग सारंग-चौताला दूतिवचन मानिनि-ध्रुपद जो ईमन पूरिआ धीमा-तिताला, विप्रलब्धा ध्रुपद जो पूरबी-धीमा-तिताला इत्यादि भी है। इन सभी में तानसेन ने महाराजा रामचन्द्र जू देव की भूरि-भूरि प्रशंसा एवं यश गाथा कही है।

इसी प्रकार संगीत सम्राट तानसेन ने महाराजा रामचन्द्र देव के पराक्रम एवं प्रताप पर कितना सुन्दर ध्रुपद लिखा हैः-

जाके दान थरथरात मेदिनी अैसो वीरभान को नंदन,
राजाराम बघैलो वीर।
जाके चढ़त सेम कलमलौ अैसो प्रचंड बलवीर,
अपवलि, तपवलि भागिवली दान किरबान बली।
हद करनी, साइरतीर,सप्तदीप लौं चिरंजीव रहौ,
तानसैनि करें परदुष काटन पीर।

राजा रामचन्द्र महान दानी और ध्रुपद गायन-शैली के मर्मज्ञ थे। सन् 1556-58 ईसवी में तानसेन राजा रामचन्द्र के पास पहुंचे। एवं किवदंति के अनुसार मोहम्मद गौस बी मृत्यु के बाद तानसेन फकीरी वेश धारण कर लिया ग्वालियर छोड़ कर बांधवगढ़ की ओर चल दिये। महाराज पूजन में बैठे थे तथा किसी को भी आने की अनुमति नही थी तानसेन फकीरी वेश में थे रोके जाने पर भी निराश नही हुए अपना तानपूरा लेकर राजप्रसाद के पीछे जा बैठे तथा गायन आरंभ किया-[6]

''तू ही वंद, तू ही पुराण, त ही हदीस, तू ही कुरान।
तू ही ध्यान, तू ही ज्ञान, तू ही त्रभवनेश।।

कहा जाता है कि राजा रामचन्द्र जिस शिव-लिंग की पूजा कर रहे थे, उसका मुख राजा की ओर से हटकर तानसेन की ओर हो गया, जिस ओर से गायन की ध्वनि आ रही थी, राजा उनके चरणों में गिरे तथा क्षमा याचना मांगी। कथा चाहे जो हो यह सत्य हो सकता है कि तानसेन बैरागी के वेश में बांधवगढ़ पहुंचे हो। यह अनुश्रुति रोचक है यही रोचकता उसका उद्देश्य भी है।

राजा रामचन्द्र बाघेला की राजसभा में तानसेन का प्रथम गायन दुर्भाग्य से राजा रामचन्द्र को संबोधित तानसेन के अभी तक 7-8 पद ही उपलब्ध है। प्रथम वार तानसेन ने राजाराम की राजसभा में यह पद गायाः-

गये मेरे सब दुख, देखे तै आप दरस
अष्ट-सिद्धि नव-निधि देत है पलक में धन-जन-कंचन जात बरस एकन को गज तुरंग,

एकन को भूषन, एकन कौं बस्तर देही सरस, ''तानसेन'' कहै राजा राम सकल काज पूरन,

गुनियन के दारिद जात हरत''

गये मेरे सब दुख, देखे तै आप दरस

मुल्ला बदायूँनी ने लिखा है कि राजा ने तानसेन को एक करोड़ स्वर्ण मुद्राऐं पुरस्कार में दी थी यह बहुत सम्भव है कि पुरस्कार इसी पद को सुनने के उपरान्त राजा ने तानसेन को दिया हो।

इस प्रकार आभार प्रदर्शन हेतु तानसेन ने यह पद गाया थाः-

सुन्दर अति प्रवीन महा चतुर अचल राज करौ,

रवि-ससि जो लौं भूमि पर,

चिरंजीवी रहो जो लौ ध्रुव-धरनि-तरन-पवन-पानी राजनमनि राजा रामचन्द्र रघुवर।।

तानसेन ने राजा रामचन्द्र बघेला की मंगलकामना में भी एक ध्रुपद की रचना की हैः-

'' अचल चक्रवर्ती बघेलौ चकत्ता नरेश,

गुर गनेस बुधि सुरेश सकल विद्या विनानी

छात्र-पाट सिंघासन अभिचल रहौ,

जो लौं दधि सुमेर भुज लौं सुलितानी

सप्त दीप नवखण्ड दसौ दिसा जसु छायौ

शट दरसन निवास परम ग्यानी

बीरभान जू कौं आनंद करन विशेष

महाराजा राजा रामचन्द्र इन्द्र सनमानी

अप्रकाशित ''रागमाला'' में राजा रामचन्द्र बघेला के नाम युक्त 12 पद दिये गऐ है। उन्हें पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि उनमें से कुछ पद तानसेन के भी है। राजा रामचन्द्र की संगीतज्ञता के विषय में तानसेन ने एक पद लिखा हैः-

धर्म कर्म की अलाप हार सम्हारी, गुन पूरौ करिबै को बैठो हटवारी।

आकार की डाँडी, कीनी जोति करि काइम, ग्राम डोरे,

मानो द्रवननि पालरा, तारकी चटक पाटी पीछै गहि डारी।

अर्थ मूल ते अछिर समझों नीकी नीकी,

धुरपत चतुर तौल तुंक अति भारी

जा गुन कौ गाहक राजा रामचन्द्र देत करोरनि,

बेचत ''तानसेन'बैपारी''

इसमें गुण के ग्राहक रामचन्द्र है और मैं एक व्यापारी हूँ यह दर्शाया गया है। उसी प्रकार राजा रामचन्द्र की संगीत मर्मज्ञता के बारे में तानसेन ने कहा हैः-

अगम अपार नाद सागर की राह तामैं तुम जिहाज मान

आहत अनाहत जंभ जानि इकईस मुरिछिना

वादवान बाईस सुरति सौ चलावै

काब (काव्य) रीति संगीत-गीत प्रबंध धुरपद धारुतत वितत जानि तामध बैठि परज लगाई लंगर सप्त सुर मंदराचल उनंचास कोटि सु तान सुध फिराई कथन करे, सु चौदह रतन लेई निकारि नाम गनावै।। तानसेन रचित एक ध्रुपद प्राप्त हुआ है जब तानसेन ने राजा रामचन्द्र की सभा को छोड़कर जलाल खाँ कुर्ची के साथ आगरा की ओर प्रस्थान किया

था। वह ध्रुपद हैः-

''आज तो सखी री देखौ रामचन्द्र छत्रधारी
गज की सवारी लिए चले जात वाट है।
कितै असवार सोहै, कित्ते सवार सोहैं
कितै सोहे बरकदार अवर किते आनन्द के ठाठ है
(-राग बागेश्री, चौताला)

इसमें किसी को आपत्ति नही हो सकती कि तानसेन बाल-गंधर्व थे वे अपने समय के श्रेष्ठतम कलावंत थे। उन्होंने संगीत शास्त्र का गहन अध्ययन भी किया था। यद्यपि उस समय के काल में बैजू, गोपाललाल तथा बक्खू को भी अत्यंत आदर के साथ स्मरण किया जाता है। पर यह सत्य है कि तानसेन अपने समय के मूर्धन्य कलावंत थे।

इस संगीत सम्राट की प्रतिभा को सम्पूर्ण भारत में गूँजित करने का प्राथमिक श्रेय हमारे बघेलखण्ड को ही जाता है। अगर महाराजा रामचन्द्र तानसेन को दिल्ली दरबार में नही पहुँचवाते तो वे वहाँ के नव रत्नों में शामिल कैसे हो पाते? आज तानसेन विश्व प्रसिद्ध संगीत सम्राट के नाम से सुविख्यात है वह बघेल राजा रामचन्द्र के ही कारण तानसेन द्वारा रचित ध्रुपदों के, राग तो मिलते हैं ताल भी, परंतु ध्वनि-मुद्रिका या स्वरलिपि के अभाव में उसे गायन करना या गा पाना बहुत कठिन कार्य है।

महाराज रामचन्द्र जी की संगीत मर्मज्ञता, संगीतज्ञान एवं संगीत की बारीकियों को समझनें की मीमांसा, तानसेन के राजा राम की सभा में बिताए गऐ दिनों का विवरण स्थानीय संस्कृत कवि माधव के ''वीर भानूदय महा काव्यम्'' के दशम सर्ग के कुछ श्लोकों में मिलता है।

गान्धर्व-विद्यामय-देहभाजे, यस्तान सेन्नाम्-कला विदेऽदात्।
राग-प्रतीह, प्रति तानमेतत्, प्रति ध्रुपात्कोटि शशांक टंकाम्।।
अष्टौ स यामान् नयति स्म-तेन रागा दिना तत्स मुदीरितेन।
वर्षादि कालं गमयन् महीन्द्रः सोऽवागमत्तत्र निपेषमात्रम्।
भूतो भविष्यन्नापि वर्तमानों न तानसेनैः सदृशो धरण्याम।
तथा प्रसिद्ध स्त्रिदिवेऽपि मन्थे नैताछशः केष्णयनवद्य-विद्यः

मूर्तिगंत गांधर्व-विद्यामय, तानसेन नामक कलाकार को जो राजा रामचन्द्र प्रत्येक राग के लिये, प्रत्येक ध्रुपद के लिये, कोटि शशांक टेंका (मुद्रा विशेष) अर्पित किया करते थे तथा तानसेन के द्वारा प्रयुक्त राग इत्यादि में ही आठ प्रहर उन्हीं के साथ व्यतीत किया करते थे। तानसेन जैसा, भूतल पर न कोई हुआ है न होगा तथा मेरा अभिमत है कि स्वर्ग में भी इनके समान गान विद्या में अत्रुट रूप से पारंगत और विख्यात कोई नही, उनके पल्लवन और प्रस्फुटन की भूमि बघेलखण्ड की भूमि ही थी जिसका श्रेय महाराजा रामचन्द्र जू देव को ही जाता है क्योंकि वे स्वयं इस कला के मर्मज्ञ, गुणग्राहक रसज्ञ और पारखी थे।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. एस. अखिलेश, रीवा दर्शन (2005), गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा (म.प्र.)
2. प्रो.एस अखिलेश, रीवा राज्य का इतिहास (2009) गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा (म.प्र.)

3. आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति, ध्रुपद और उसका विकास, राष्ट्रभाषा-परिषद पटना, बिहार।
4. डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी, तानसेन, जीवनी व्यक्तित्व तथा कृतित्व, विद्या मन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर मुरार ग्वालियर (म.प्र.)
5. आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, संगीत कार्यालय हाथरथ (उ.प्र.) सन् 1966
6. डॉ. प्रभुदयाल मीतल, संगीत सम्राट तानसेन, जीवनी और रचनाऐ, साहित्य संस्थान मथुरा (उ.प्र.) सं. 2017 वि.

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

व्यक्ति की खेल में सहभागिता के मनोवैज्ञानिक कारणों का विश्लेषण

* अर्चना दुबे

सारांश– *खेल प्राणी जगत में स्वभाविक रूप से पाया जाने वाला व्यवहार है। एक एक ऐसी क्रिया है जिसके लिए मनुष्य कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं करता जो स्वतः रचनात्मक होती है। खेलकूद का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। अपने देश में खेलकूद के विकास के लिए सतत् प्रयास जारी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात खेलकूद के विकास हेतु अनेक प्रयास किये गये, विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा के विकास हेतु अनेक प्रयास किये गये। विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा के विकास हेतु कई समितियां गठित की गई और उनमें अध्यापक प्रशिक्षण तथा खेलकूद में प्रतिभाओं के अभाव का विवेचन किया जाये तो स्पष्ट होता है कि उचित प्रोत्साहन के अभाव में खेलकूद प्रतिभायें खेल से विमुख हो जाती है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि वे अपने अध्ययन काल में खेलकूद में भाग लेने के लिए अभिप्रेरित ही नहीं हुये तो वे खेलना ही बंद कर देते हैं। समस्या यह है कि कोई बालक/ बालिका खेलकद में अपनी भागीदारी को किन-किन दशाओं में निरंतर रख पाता है। ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ है जिनके कारण वह खेल में भाग लेना बंद कर देते है। प्रस्तुत अनुसंधान में उपरोक्त समस्या के अध्ययन का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों की खेलकूद के प्रति अभिवृत्ति तथा खेलों में सहभागिता के निर्धारण में स्वयं की मित्रों, शिक्षकों एवं माता-पिता की खेलकूद के प्रति अभिवृत्ति में क्या भूमिका होती है।*

मुख्य शब्द– व्यवहार, शारीरिक शिक्षा, अभिवृत्ति, सहभागिता, जिमनास्टिक, अपिवृद्धी

खेलकूद के आधुनिक मोड़– सर्वप्रथम 1882ई. में ''भारतीय शिक्षा अयोग'' ने शारीरिक शिक्षा को मान्यता दी जिसमें जिमनास्टिक ड्रिल आदि प्रक्रियायें सम्मिलित हुईं। गैर शारीरिक संस्थाओं ने शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में व्यायाम शाला जिमनेज़ियम आदि की स्थापना की। जिसमें योगिक क्रियायें, दण्ड बैठक, सूर्य नमस्कार, कबड्डी, खो-खो आदि क्रीड़ाऐं लोकप्रिय हुई। शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में YMCA **शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय में एवं 1932 में ही क्रिश्चियन कॉलेज ऑफ फिजिकल एजुकेशन लखनऊ की स्थापना हुई।**

1947 ई. में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद खेलों व स्वास्थ्य के विकास के लिए नई-नई योजनाऐं बनी। 1950 में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने Central Advisory Board of Physical Education and Recreation **तथा 1954 में** All India Council of Sports **की स्थापना की। इसी उद्देश्य से अखिल भारतीय खेलकूद परिषद् की सिफारिशों से मोतीबाग**

=========================

* क्रीड़ा अधिकारी, शासकीय नवीन महाविद्यालय, केसली (म.प्र.)

पटियाला में एक राष्ट्रिय खेलकूद संस्था की नींव पड़ी जिसे नेता सुभाषचन्द्र बोस के नाम पर नामकरण किया गया।

खेलकूद के मनोवैज्ञानिक पक्ष– अभिप्रेरणा कोई भी विशिष्ट आंतरिक अवस्था है जो क्रिया का आरंभ कर उसे बनाये रखती है और व्यवहार का नियंत्रण व परिणामों से उसके संबंधों के आधार पर होता है। और व्यवहार की प्रवृत्ति लक्ष्य प्राप्ति तक बनी रहती है इससे स्पष्ट होता है कि प्रशिक्षकों को उस बात की जानकारी होना जरूरी है कि किस खिलाड़ी के लिए सार्थक प्रोत्साहन क्या है एवं क्या खिलाड़ी खेल निष्पादन और वांछित/अवांछित परिणामों के बीच कोई संबंध देख पाते हैं।

खेल के प्रति अभिवृत्ति– का तात्पर्य व्यक्ति के खेलकूद कार्य का धनात्मक या ऋणात्मक मूल्यांकन है। खेल के प्रति भाव, खेलकूद संबंधी संज्ञान तथा खेलकूद व्यवहार के आधार पर यह मूल्यांकन होता है। अभिवृत्ति का व्यक्ति के खेलकूद में सहभागिता से घनिष्ट संबंध होता है। आईसेन (Eisen; 1994) ने हार्मोन तथा मस्तिष्कीय रसायनों की खेल में सहभागिता पर प्रभाव का अध्ययन किया। हार्मोन के प्रभाव में लैगिंग भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा खेल उत्पाद व प्रक्रिया दोनों हैं। इसका खिलाड़ियों की शारीरिक योग्यता, असफल खिलाड़ियों की तुलना में अधिक होती है। खेलों में आयु भी एक महत्वपूर्ण कारक है। खिलाड़ी एक विशेष आयु में ही उच्च क्षमता प्रदर्शित करते है जबकि अन्य आयु स्तरों पर उच्च कोटि का प्रदर्शन नहीं कर पाते। ऑलम्पिक खेलों के सफल खिलाड़ियों की आयु का अध्ययन अनेकों ने करके इस तथ्य की पुष्टि की है।

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य भी यह अध्ययन करना था कि खेलकूद में सहभागिता एवं खेलकूद के प्रति अभिवृत्ति में अकादमिक एवं विभिन्न मनोवैज्ञानिक कारकों का क्या योगदान है।

परिकल्पना–

1. खिलाड़ियों के प्रति गैर खिलाड़ियों की तुलना में माता-पिता की खेलकूद संबंधी अभिवृत्ति अधिक सकारात्मक होगी।
2. खिलाड़ी गैर खिलाड़ियों की अपेक्षा सार्थक रूप से कम हॉस्टिलिटी वाले होगे।

शोध विधि– प्रतिदर्श प्रस्तुत अनुसंधान के लिए हायर सेकेण्डरी विद्यालयों के 200 छात्र व 200 छात्राओं को प्रयोज्य के रूप में चुना गया था। सभी प्रयोज्य X^{th}, XI^{th} तथा XII^{th} के विद्यार्थी थे, जिसमें 100 प्रयोगात्मक व 100 नियंत्रित समूह से लिया गया था।

उपकरण एवं परीक्षण– प्रस्तुत अनुसंधान में खेलों में सहभागिता के वस्तुनिष्ठ मापन के लिए कुछ परीक्षणों का उपयोग किया गया है।

1. माता-पिता की उनके पुत्र/पुत्री के खेलकूद में भाग लेने के प्रति अभिवृत्ति प्रश्नावली।
2. हॉस्टिलिटी के मापन के लिए रोमा पाल एवं डॉ. तसनीम नकवी (1983) द्वारा निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

इसमें प्रश्नावली व परीक्षण द्वारा प्रयोज्यों से सीधे प्रश्न पूछकर जानकारी ली गयी है।

परिणाम तालिका– खिलाड़ी व गैर खिलाड़ी छात्र/छात्राओं की खेलों के प्रति सहभागिता में माता-पिता की खेलकूद संबंधी अभिवृत्तियों का मापन पर प्राप्त अंकों,

मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात।

तालिका-1 : छात्र

कक्षा	खिलाड़ी	गैर खिलाड़ी	टी–अनुपात सार्थकता स्तर
Xth	N=24	N= 34 df 56	0.87 NS
	24.20 (3.36)	23.38 (3.58)	
XIth	N=53	N= 33 df 84	3.00
	25.64 (3.57)	22.96 (5.75)	.01
XIIth	N = 23	N = 35 df 54	1.02 NS
	22.95 (5.67)	24.37 (4.17)	
Total Student (200)	N = 100	N = 100 df 198	2.00
	24.68 (4.10)	23.56 (4.62)	>.05

तालिका-2 : छात्राऐं

कक्षा	खिलाड़ी	गैर खिलाड़ी	टी–अनुपात सार्थकता स्तर
Xth	N=25	N= 16 df 39	1.83 NS
	24 (3.49)	21.93 (3.28)	
XIth	N=45	N= 44 df 87	- 0.59 NS
	24.17 (3.67)	24.68 (4.24)	
XIIth	N = 30	N = 40 df 68	1.30 NS
	24.66 (4.51)	22.97 (517)	
Total Student (200)	N = 100	N = 100 df 198	1.13 NS
	24.28 (3.54)	23.56 (4.90)	

तालिका 1 के अध्ययन से स्पष्ट है कि Xth व XIIth के समूहों के औसत से स्पष्ट है कि माता-पिता की खेलकूद संबंधी अभिवृत्ति के संदर्भ में दोनों समूहों में सार्थक अंतर नहीं है। XIIth एवं कुल छात्रों में सार्थक अंतर पाया गया है। XIIth के समूहों में >.01 स्तर पर सार्थक अंतर पाया गया। टी अनुपात 3.00 है एवं कुछ छात्रों में 0.05 स्तर पर अंतर पाया गया टी अनुपात 2.00 है।

तालिका 2 के अध्ययन से स्पष्ट है कि Xth, XIth, XIIth व कुछ छात्राओं के समूहों में माता-पिता की खेलकूद संबंधी अभिवृत्ति गैर खिलाड़ी छात्राओं की तुलना में सार्थक अंतर नहीं है अर्थात् खिलाड़ी छात्र/छात्राएँ गैर खिलाड़ी छात्र/छात्राएँ की तुलना में अपने माता-पिता की (अपने प्रति) खेलकूद संबंधी अभिवृत्ति को अधिक सकारात्मक मानते हैं।

तालिका-3 : खिलाड़ी व गैर खिलाड़ी छात्राओं के व्यक्तित्व संबंधी (हॉस्टिलिटी) मापनों पर प्राप्त अंकों का मध्यमान, विचलन एवं टी अनुपात

कक्षा	खिलाड़ी	गैर खिलाड़ी	टी–अनुपात सार्थकता स्तर
X^{th}	N=25	N= 16 df 39	0.73 NS
	135.96 (11.7)	127.56 (31.43)	
XI^{th}	N=45	N= 44 df 87	-1.97 NS
	126.83	140.97 (32.35)	
XII^{th}	N = 30	N = 40 df 68	-3.24
	197.96 (36.93)	117.27 (35.38)	>.01
Total Student (200)	N = 100	N = 100 df 198	-1.98 NS
	123.45 (66.19)	129.35 (33.46	

तालिका-4 : खिलाड़ी व गैर खिलाड़ी छात्रों के व्यक्तित्व संबंधी (हॉस्टिलिटी) मापनों पर प्राप्त अंकों का मध्यमान, विचलन एवं टी अनुपात

कक्षा	खिलाड़ी	गैर खिलाड़ी	टी–अनुपात सार्थकता स्तर
X^{th}	N=24	N= 24 df 56	.02 NS
	143.16 (29.47)	142.94 (36.59)	
XI^{th}	N=53	N= 33 df 84	1.52 NS
	135.71 (32.90)	134.45 (31.87)	
XII^{th}	N = 23	N = 33 df 54	-0.0003 NS
	135.34 (24.95)	137.42 (29.29)	
Total Student (200)	N = 100	N = 100 df 198	0.53 NS
	137.42 (26.92)	133.02 (32.76)	

तालिका 3 एवं 4 के X^{th}, XI^{th}, XII^{th} एवं कुल छात्रों के खिलाड़ी छात्रों में गैर खिलाड़ी छात्रों के मध्य हॉस्टिलिटी में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

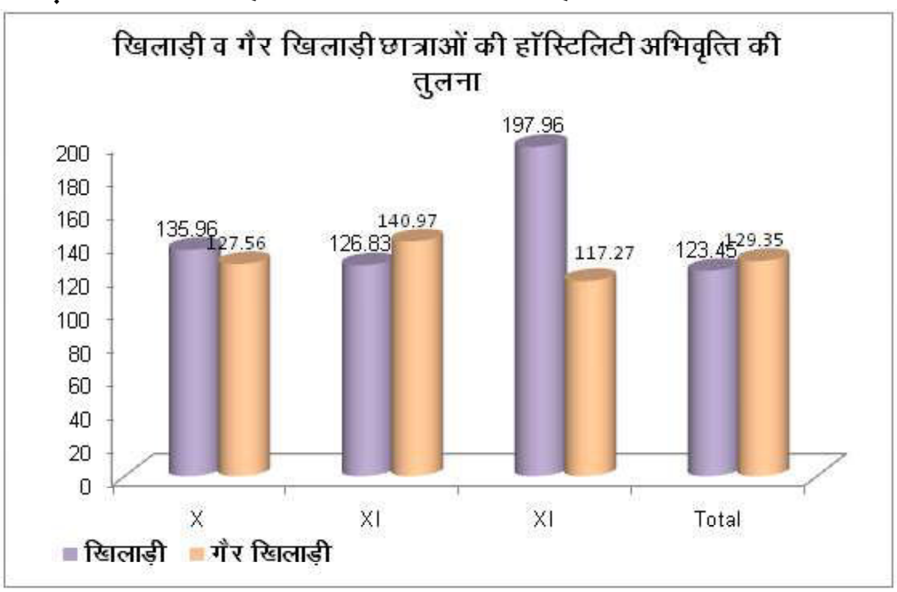

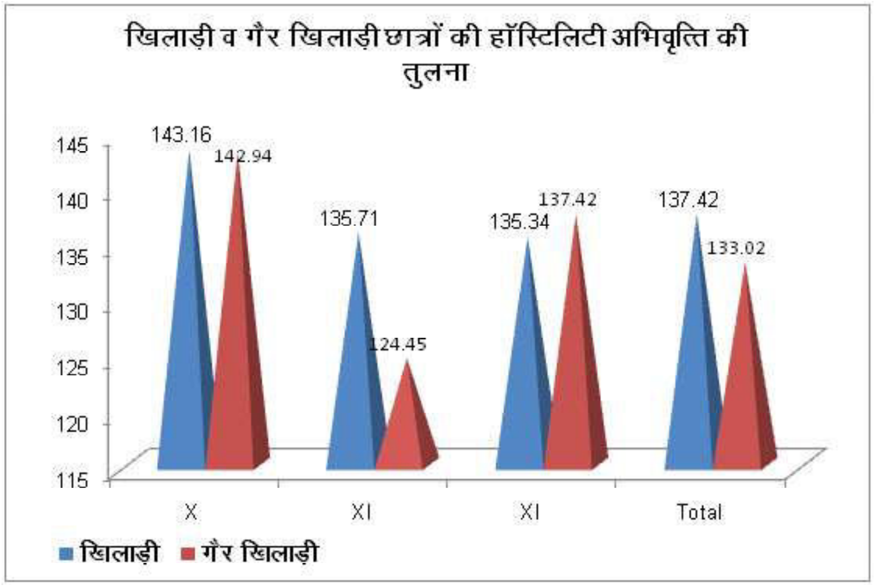

इसी प्रकार हॉस्टलिटी में X^{th}, XI^{th} एवं कुल छात्राओं के समूहों के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया गया पर XII^{th} की खिलाड़ी छात्राओं एवं गैर खिलाड़ी छात्राओं के मध्य सार्थक पाया गया। मध्यमानों में 0.01 स्तर पर अंतर देखने को मिला, टी अनुपात -3.24 है।

विवेचना– माता-पिता के संदर्भ में परिकल्पना की गयी थी कि खिलाड़ियों के प्रति गैर खिलाड़ियों की तुलना में माता-पिता की (खेलकूद संबंधी) अभिवृत्ति अधिक सकारात्मक होगी।

अनुसंधान से प्राप्त परिणामों के अनुसार XI^{th} एवं कुल खिलाड़ी छात्रों के प्रति गैर खिलाड़ी छात्रों की तुलना में उनके माता-पिता अधिक सहयोगी रहते है और छात्राओं के प्रति, गैर खिलाड़ी छात्राओं की तुलना में उनके माता-पिता की खेलकूद संबंधी अभिवृत्ति सकारात्मक नहीं पायी गयी।

स्पष्ट है कि माता-पिता विद्यार्थियों के लिए अनौपचारिक प्रतिमान होते है। छात्राओं में खेलकूद में भाग लेने की प्रवृत्ति कम होती है क्योंकि हमारा ध्यान सामाजिक मान्यताओं, सामाजिक स्थितियों तथा खेलों के प्रति जाता है। चूंकि खेलों के प्रति खिलाड़ी छात्राओं को सुबह-शाम घर से बाहर रहना पड़ता है, अतः ज्यादातर छात्राओं को ऐसी स्थिति में भाग लेने के लिए कठिन होती है। किशोर लड़कियां अकेले या छोटे समूह में असुरक्षित होती है तो अभिभावक अकेले उन्हें भेजना पसंद नहीं करते वे बाहर या विद्यालय में न खेलकर घर पर ही पढ़ाई की थकान व ऊब से बचने के लिए खेलती है लेकिन खिलाड़ी छात्राओं में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। सोही (1988) के अनुसार खिलाड़ियों के प्रेरणा स्त्रोत माता-पिता, भाई, रिश्तेदार, मित्र आदि ही थे। इन चरों में माता-पिता एवं परिवार का महत्व सबसे अधिक होता है। उक्त शोध के अनुसार, परिकल्पना की गई थी कि खिलाड़ी विद्यार्थी गैर खिलाड़ियों की अपेक्षा कम हॉस्टलिटी वाले होंगे।

उक्त शोध में प्राप्त परिणामों के अनुसार खिलाड़ी छात्राओं में हॉस्टलिटी का स्तर

कम पाया गया। छात्र खेल में मनोरंजनात्मक दृष्टिकोण रखते हुए खेल स्पर्धा करते है वे खेल में ज्यादा दवाब महसूस नहीं करते। अतः उनमें हॉस्टलिटी कम पायी जाती है।

हॉस्टिलिटी– के लिए किसी व्यक्ति या घटना पर या घटना के विरूद्ध क्रोध या आंतरिक या फिर भावनात्मक माना जाता है। Buss-Durkess **(1957) के अनुसार हॉस्टिलिटी के गुण बताये गये आक्रमण, अप्रत्यक्ष हॉस्टिलिटी, चिड़चिड़ापन, नकारात्मक सोच, क्रोध, शंका आदि। शोध से प्राप्त खिलाड़ी छात्र/छात्राओं में हॉस्टिलिटी कम पायी गई हो सकता है कि यह खेल भावना के कारण हो।**

यह भी पाया गया कि खिलाड़ी अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों (माता-पिता, मित्र, सहपाठी, शिक्षक) की अभिवृत्ति का जैसा प्रत्यक्षीकरण करते है, उसी प्रकार की अभिवृत्ति का निर्माण खेलों के प्रति करते हैं।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Elsen, G. (1994) Braub chemistry, the endocrine system and the question of play, special issue; play, communication and cognition. Communication cognition, 27(3), 251-259.
2. Sohi, A.S (1980) social status of Indian elite sportsmen in perspective of social straitification and mobility. International Review of sports sociology.
3. Carter (1982 & 1984), Reported in N.B. Shukla (1977) Psycho-Social Study of Indian Cricket Player, Varanasi: Indian Society for Sports Scientists.
4. Cattell, R.B. (1957), Personality and Motivation : Structure and Measurement. New York : World Book.
5. Dwreha, D.K. & Sharma, B.M. (1977), Peace and International Understanding though Sports. Journal of Physical Education and Sports Science.
6. Ebbeck, V. (1994), Self Perception and Motivational Characteristics of Tennis Participants : The Influence of Eye and Skill. Journal of Applied Sport Psychology, 6(1); 71-86.
7. Erickson, E.H. (1950), Childhood and Society, New York, Norton.
8. Frederick, C.M.; Ryon, R.M. (1993), Differences in Motivation for Sports and Exercise and their Relation with Participation and Mental Health. Journal of Sports Behaviour, 16(3), 124-146.
9. Gill, D.L.; Gross, J.B. & Hadtlestone, S. (1983), Participation Motivation in Youth Sports. International Journal of Sports Psychology, 14, 1-14.
10. Gross, K. (1901), The Play of Man, New York, D Appleton.
11. Goswami, S.K. & Mathur, D.N. & Kansal, D.K. (1989), A Study on Birth order and some Ecological Factor of top Indian Sport man Proc. for Recent Development in Sports & Physical Education, Patiala.
12. Hull, C.L. (1943), Principles of Behaviour. New York; Appleton Century Crofts.

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

चित्रकला में प्रतीकों की भूमिका

* निशा गुप्ता

सारांश– *प्राचीन काल से ही प्रतीकों का स्थान सर्वोपरि रहा है। जब से मानव ने कला सृष्टि प्रारम्भ की तभी से प्रतीको ने भी अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है। वास्तव में प्रतीक भावाभिव्यक्ति में अपनी विशेष भूमिका निभाते है। वैज्ञानिक पहलुओं में भी प्रतीक एक चिन्ह के रूप में उपयोगी है। प्रतीक स्वयं में एक सांकेतिक अर्थ लिए होते है। प्रागैतिहासिक काल से आज तक कलाकार मानव समाज को असंख्य प्रतीक देते आया है। प्रतीक गूढ़ अर्थ रखते है। इन प्रतीको से मानसिक विकास बड़ी ही तीव्र गति से होता है। प्रतीक सार्वजनिक भी होते है एवं व्यक्तिगत भी। जब से मानव की बुद्धि का विकास हुआ उसने रेखा खींचनी सीखी तभी से वह अपने भावों का प्रदर्शन प्रतीको के माध्यम से करने लगा। प्रतीक धर्म, दर्शन, साहित्य, राजनीति, मनोविज्ञान एवं कला हर क्षेत्र में क्रियाशील है।*

मुख्य शब्द– प्रतीक, लौकिक, आलौकिक, अभिव्यक्ति, कल्पना, मूर्त

कला जगत में प्रतीकों का स्थान सर्वोपरि है। प्रतीको की रचना कलाकार द्वारा अपने कल्पना लोक में विचरण करने पर ही होती है। जिसमें वास्तविकता एवं यथार्थता का समावेश मिलता है। प्रतीकों की रचना केवल संसार में देखे गये रूपों के आधार पर ही नहीं होती, बल्कि कलाकार अनेक लौकिक–अलौकिक एवं वास्तविक–काल्पनिक वस्तुओं d sl ;aks l sHkh i zrhd ksa dh l f"V djrsgSa[1] आंशिक रूप से अचेतन मस्तिष्क पर पड़े प्रभाव को जब हम किसी चिन्ह के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं तो प्रतीक स्वतः जन्म ले लेता है। प्रतीकों में सृष्टा एवं सृष्टी का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से रहता है। परमेश्वर से कलाकार का आत्मिक मिलन एक मूक अभिव्यक्ति को जन्म देता है।[2] आदि मानव द्वारा चित्रित कन्दराओं में विभिन्न भावों को प्रकाशित करने वाले चित्र प्राप्त हुए है। देश, काल तथा संस्कार के आदिकाल में मानव प्रकृति के वशीभूत था। वह प्रकृति के रौद्र रूप से भयाक्रान्त भी था। उसने प्रकृति के पीछे किसी अदृश्य शक्ति की भी कल्पना की होगी किन्तु वह प्रकृति के रहस्योद्घाटन में असमर्थ था। प्रागैतिहासिक काल में पशु तथा वनस्पति जगत का अधिक प्रतीकात्मक अंकन प्राप्य है। निःसन्देह उनके निरूपण की पृष्ठभूमि में प्रकृति की महान शक्ति की परिकल्पना रही होगी। अतः मंगल की कामना तथा सुरक्षा हेतु उसने वृक्ष, जल आदि की पूजा आरम्भ की और उनमें देवता का निवास माना।

प्रकृति को सारी कलाओं की जननी माना जाता है। प्रकृति की छटा देखकर और उसकी सृष्टि के रहस्यों को समझकर ही कलाकार अपनी कथा को प्रस्तुत करने के लिए

* एसोसिएट प्रोफेसर, जे.के.पी. पी.जी. कॉलेज मुजफ्फरनगर

प्रेरित हुआ है। समस्त मानवीय क्रियाए, ज्ञान-विज्ञान और कलाएँ इसी प्रकृति के रहस्यों को समझने, उनका उपभोग करने और उन्हीं के आधार पर पुनः सृष्टि करने में ही प्रस्फुटित हुई हैं। प्रकृति के मूल में जो सृष्टिकारक शक्ति है, वहीं मानव कलाकार के भीतर बैठकर उसे भी सृजन एवं नियन्त्रण की प्रेरणा प्रदान करती है। मनुष्य ने आदि सृष्टि-कहकर ब्रहमा की कल्पना की। कालान्तर में यही ब्रहमप्राप्ति कला का लक्ष्य भी बनी। प्रकृति के रहस्यमय स्वरूप के कारण उसके अनेक प्रतीकात्मक अंकन हुए। प्राचीन काल में प्रायः सभी देशो में मानव-जीवन के नाना पहलू धर्म से अनुप्राणित रहे हैं। कला कहीं भी शिथिल नहीं है। भारतीय चित्रकला में देवताओं की आकृति के साथ उस आध्यात्मिक सन्देश को व्यक्त किया गया है जो उन देवताओं का पृथक-पृथक निजी प्रयोजन है। मांगलिक प्रतीकों की रचना की पृष्ठभूमि में भी यही धार्मिक भाव सन्निहित हैं प्रतीकों में लक्षणा-शक्ति प्राप्य है जो वस्तुओं के यथार्थ रूप में प्रायः नहीं होती। प्रतीक वस्तुओं का एक अत्यन्त सरल स्वरूप होता है। इसके साथ अनेक विगत अनुभव, भावनायें एवं संवेग जुड़े रहते हैं। उदाहरणार्थः चक्र। विष्णु पुराण में भगवान विष्णु की विभूति का वर्णन भी प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। निर्मल आत्मा को कौस्तुभ मणि, बुद्धि को गदा, तामस और राजस अहंकार को शंख एवं शार्ग (धनुष), मन को चक्र, वैजयन्ती माला को पंचतन्त्रमालाओं और पंचभूतो का संघात, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को बाण-समूह तथा विद्यामय ज्ञान को खड्ग कहा गया है।[3]

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य, अगोचर या अप्रस्तुत विषय का प्रतिपादन उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा किसी स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु 'प्रतीक' है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रति विधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है। जैसे- अदृश्य या अप्रस्तुत ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिभा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है।[4] प्रतीकों का प्रयोग चित्रों में अलग-अलग रूपों में हुआ है।

1. **ऊँकार** : शरीर, जीवात्मा और परमात्मा को क्रमशः पीपल और पक्षियों के रूप में दिखाया गया है, जो जीवन्त है किन्तु मात्र रेखाबल से परमात्मा को, अरूप को, अनाम और अनन्त को 'ऊँ' आकार देकर सर्वश्रेष्ठ 'नाम' दे दिया गया है। जो पर ब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब प्रकार के आलम्बनो में से सर्वश्रेष्ठ आलम्बन है। इस प्रकार 'ऊँ' कार ब्रहम और परब्रहम इन दोनों का प्रतीक है। हम 'ऊँ' को संसार का श्रेष्ठ प्रतीक तथा अति गम्भीर अर्थ वाला प्रतीक मानते है।

चित्रों में प्रयुक्त होने वाले अन्य प्रतीकों जैसे- स्वास्तिक, वृक्ष, कमल, पूर्ण कुम्भ, यक्ष-यक्षी, नाग-नागिन, सिंह, हस्ति, वृषभ-गाय,

हंस और गरूड-आदि का सूक्ष्म विवरण देकर प्रतीकों के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकते है।

2. **स्वास्तिक** : यह मानव समाज के कल्याण का प्रतीक है। स्वास्तिक पूजा का चलन हमें आदिम लोक-संस्कारों से लेकर शैल-चित्रों सिंधु घाटी की सीलों, जैन-बौद्ध तथा हिन्दु धर्म-प्रतीकों के रूप में मिलता है। अबाहु और सबाहु स्वास्तिक का अंकन शैल चित्रों में मिलता है। डा0 जगदीश गुप्त के अनुसार 'पूर्ण या सबाहु-स्वास्तिक' (निशान) का विकास मूलतः अबाहु स्वास्तिक (+) से हुआ है जो धन चिन्ह (+) और गुणन चिन्ह (×) दोनो रूपों में अंकित किया जाता था।[5] अबाहु स्वास्तिक का अंकन रोंप में सागर, चम्बल घाटी और भोपाल क्षेत्र के शिला-चित्रों में अकल्पनात्मक और सबाहु स्वास्तिक का अंकन मिलता है। बनौवस मानव को कुश-(क्रॉस) और वृक्ष देवता का परिचय भी था। आद्यैतिहासिक शैल चित्रों में ये प्रतीक मिले हैं। मेरू (पर्वत), स्वास्तिक, नन्दिपाद, कल्पवृक्ष, चक्र, हस्त, मंगलघट (पूर्ण कुम्भ), छत्र, त्रिशूल, सूर्य और चन्द्र। इनमें से अधिकांश प्रतीक बरखेडा और खरवाई से प्राप्त हुए है।[6]

डा0 कुमार स्वामी के मतानुसार- 'स्वास्तिक विश्वव्यापी अथवा सभी देशों में मिलने वाला प्राचीन प्रतीक है।'[7] प्राचीन भारत के मिट्टी के पात्रों पर भी ऐसे उदाहरण मिले हैं। पं0 रामचन्द शास्त्री बझे ने 'स्वास्तिक को कमल का पूर्व रूप माना है।' श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ने 'गणपति के बीजाक्षर गं का चतुरर्स मंडल ही स्वास्तिक माना है।'[8] सुष्ठु और मांगलिक भावाभिव्यक्ति को प्राचीन भारतीय परम्परा में 'स्वास्ति एवं स्वास्तिकम' कहा जाता था। 'चार दिशाओं में व्याप्त विश्वमण्डल के चतुर्भुजी रूप का प्रतीक सूर्य से सम्बन्धित है। यह मानव का सर्वोत्तम मांगलिक चिन्ह है।'[9] स्कन्द पुराण में विष्णु के दाहिने और बाएँ पॉवों में कुल 19 चिन्हों में स्वास्तिक का उल्लेख है। 'प्रातःकाल जिसके घर में स्त्रियाँ भूमि लीपकर उसमें स्वास्तिक नहीं बनाती थी, उन घरों से वित्त, यश और आयु के विनष्ट हो जाने का जन-विश्वास प्रचलित था।'[10]

मथुरा कला में इसके विविध नमूने मिले है। कंकायीटीला से प्राप्त स्वास्तिक-आयागपट्ट एक उत्कृष्ट उदाहरण है। जैन धर्म की उपासना पद्धति में अष्ट मांगलिक प्रतीकों के अन्तर्गत स्वास्तिक का स्थान महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य विद्धान लुडविंग मिल्लर के अनुसार 'स्वास्तिक लौह युग में एक विशिष्ट देवता का प्रतीक रहा है।'[11] प्रत्येक विषय का सम्बन्ध काम से जोड़ने वाले-पाश्चात्य विद्वानों ने स्वास्तिक को शिश्नीय, स्त्रीनियम या गर्भधारण का प्रतीक सिद्ध करने की चेष्टा की है। इसी प्रकार चित्रों में बौद्ध, जैन, वैष्णवादि धर्मो में स्वास्तिक को मंगलमय प्रतीक माना जा रहा है। यह उज्जवल भविष्य का प्रतीक भी बना है।

3. **कमल, पद्म या पुष्कर :** चित्रों में, धर्म और दर्शन में कमल या पद्म सबसे महत्व वाला प्रतीक हैं इसका प्रयोग चित्रों, मूर्ति और स्थापत्य सभी में हुआ है और आज भी हो रहा है। अलंकरण की दृष्टि से भी इसके अनेक रूप अनेक अर्थ दृष्टव्य है। सृष्टि के रचयिता का जन्म कमल से हुआ है। कमल सृष्टि का प्रतीक है, भागवतों के अनुसार संसार को भू-पद्मकोश कहा गया हैं और सृष्टि का जन्म पद्म से माना गया है। दो प्रकार की सृष्टि मानी गयी है। एक पद्मजा दूसरी अण्डजा। पद्मजा सृष्टि क्षीरशायी विष्णु की नाभि से होती है। अण्डजा सृष्टि हिरण्यगर्भ से होती है। वैदिक मान्यता में जो स्थान हिरण्यगर्भ का था वही-भागवत दर्शन में पद्म का है। विष्णु के हाथ में पद्म रूप में विश्व है। यही चेतना का पद्मनाल बौद्धो का स्तूप और स्तम्भ है। यही शैवों का शिवलिंग और जैनों की दाण्डायमान तीर्थंकर प्रतिमा है।[12] पद्म के तीन रंग लाल, उज्जवल और संतरी, नीलवर्ण त्रिमूर्ति के प्रतीक है जो एक ही के तीन रूप थे। लाल ब्रहमाःसृष्टा उजला शिवः परमात्मा, नीला विष्णुः जगत के त्राता।[13]

4. **वृक्ष पूजा :** वृक्ष पूजा आदिम काल से होती चली आ रही हैं वर्डडर्ड के कथनानुसार यह अति प्राचीन पूजा है।[14] भारतीय शैलचित्रों में वृक्ष-पूजा के दृश्य मान्टेरिजा, आबचन्द में प्राप्त हुए हैं। चम्बल घाटी में वृक्षों का चित्रण अकल्पनात्मक रूप में मिलता है। मोहनजोदड़ों के खण्डहरों की खोज करने से जो मूर्तियाँ और ठप्पे आदि मिले है, उनसे पता चलता है कि उस समय के लोग वृक्षो की भी पूजा करते थे।

श्री के वृक्ष का अभिप्रायः संसार रूपी वृक्ष से हैं, जिसे अश्वत्थ कहा गया है। यही पीपल या बौधिवृक्ष हुआ। यही पीपली के रूप में और बड़-बट्टो के रूप में प्रकट होती है जो महती प्राणशक्ति का ही रूप है। यह कहा जा सकता है कि आरम्भ में लोग वृक्षों की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर उसकी आराधना करते रहे होंगे। 'वृक्ष जीवन का प्रतीक है, शाखाएँ जीवन की समस्याएँ हैं।' आधुनिक काल में तुलसी पूजा, पीपल वट, विल्ब और आँवलें के वृक्ष की पूजा के मूल में कौन सी भावना कार्य कर रही हैं? वृक्ष पूजा के मूल में प्राचीन परम्पराएँ, लोक-विश्वास तथा उपयोगिता कार्य कर रही हैं। तुलसी पूजा विष्णु प्रिया वृन्दा की, पीपल वसुदेव के, वट वृक्ष ब्रहमा के, विल्व वृक्ष भगवती के, दुर्वा विष्णु की और शमी वृक्ष अग्निधारक के प्रतीक के रूप में पूजे जाते है।

नीम का कड़वापन जीवन के दुखात्मक पक्ष का और आम जीवन के मधुर फल का प्रतीक है। आँवलें का वृक्ष स्वस्थ जीवन का प्रतीक है।[15]

5. **पूर्ण कुम्भ :** चित्रों में हम देवी-देवताओं के चित्रों के साथ-साथ मंगलकारी पूर्ण घट का भी चित्रण प्राप्त करते हैं। मिट्टी से बना हुआ कुम्भ, जल से भरा, स्वास्तिक और अन्य अलंकरणों से सज्जित तथा जिसका मुख आम्र, वत, अश्वत्थ आदि की पत्तियों से ढका हुआ और इसके ऊपर नारियल फल इत्यादि रखा हुआ चित्रों में यें सौन्दर्य और मंगल का प्रतीक है। हमारे धार्मिक अनुष्ठानों और

संस्कारों में ये पूजे जाते है।

ऋग्वेद में पूर्ण घट या भद्रकलश का उल्लेख है। वह सोम से भरा पात्र हैं। सोम जीवन का अमर और मीठा रस हैं। अर्थववेद में घृत और अमृत से भरे पूर्ण कुम्भ का उल्लेख मिलता है।[16]

एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दहनः कलशैरगुः ।।

पूर्णा नारि प्रभर कुम्भमेंत घृतस्य धाराम पृतेन संग्रताम् ।।

अर्थात् इसमें पिंघलते हुए रस का (कुम्भः) घड़ा (दहनः) दही के (कलशैः) कलशों के साथ आये हैं।

हे नर का हित करने वाली गृह पत्नी! इस पूर्ण घट में से अमृत से भरी हुई घी की धारा को भली प्रकार ला।

'घर को मंगल घट या मंगल कलश कहा गया है।' अर्थववेद में पूर्ण कुम्भ नारी का भी उल्लेख आया है। इस अभिप्रायः के मूल में ऐसा मांगलिक चिन्ह लिया जाता था, जिसमें कोई सौभाग्यवती स्त्री मंगलघट लिये शोभायात्रा में चलती थी।[17]

कमल के प्रतीक के साथ अथवा फूल-पत्तियों से समुद्र कलश या कुम्भ सुख-सम्पत्ति और जीवन की पूर्णता का प्रतीक है।

6. **नाग–नागिन** : शेषनाग के रूप में विष्णु का वाहन यहीं है। कथाओं में नागो को मृत्यु, तम और अनर्थ का प्रतीक माना गया। बौद्धो ने नागों को संभ्रान्त देवों की श्रेणी में स्थान दिया है। बुद्ध, महावीर और कृष्ण के जीवन में नाग देवता की कथा चित्रित है। बुद्ध ने अपलाल को, महावीर ने चन्द्र को और कृष्ण ने कालिया आदि नागों को वश में किया। कृष्ण की 'कालियादमन' की प्रतीकात्मक व्याख्या चित्रों में कई रूपों में प्रस्तुत की जाती है। जैसे- कालिया नाग रूपी तामसिक एवं अशिव वृत्तियों द्वारा संसार रूपी यमुना के जल को विषाक्त करना, कृष्ण रूपी स्थिर प्रज्ञ मन द्वारा उन तामसिक वृत्तियों रूपी नाग-नागनियों को वश में करना, आध्यात्मिक व्याख्या है, शिव ने विष पान करके सर्पो को अपने शरीर पर स्थान दिया। इन सब कथाओं का चित्रण चित्रों में अलग-अलग रूपों में मिलता है।

शंकर महायोगीराम है। अतः नाग-नागनियाँ उनके आभूषण बन गये। विष्णु जगत-पालक है, इन्होने कुण्डलिनी को वश में करके नागराज को अपना शयनासन बना लिया। नाग प्रकृति देवी शक्ति का प्रतीक था, इसलिए बौद्धो ने सर्प को धर्म-प्रतीक का रूप दिया।

जैन-धर्मावलम्बियों ने भी सर्प को धर्म-प्रतीक का रूप दिया। जैन धर्मावलम्बियों ने भी सर्प को पार्श्वनाथ (तेईसवें तीर्थकर) से सम्बद्ध किया। पार्श्वनाथ के सिर पर नाग का सात फन वाला रूप चित्रित है।

7. **हस्ति** : भारतीय संस्कृति में हाथी समृद्धि का प्रतीक है, चित्रों में लक्ष्मी के साथ इसलिए दो हाथियों को जल चढ़ाते हुए चित्रित किया गया है। यह देवी गजलक्ष्मी कहलाती है।

शुंग कालीन कला में भरहुत, बोधगया, वेदिकाओं तथा सांची तोरण पर गजलक्ष्मी की आकृतियाँ उल्लेखनीय है।

हाथी का काला रंग मेघ का प्रतीक है। इसके दार्शनिक तथा पौराणिक मतों को दृष्टि में रखकर हस्ति (वर्षा के रूप में) संसार का पालनकर्ता माना जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यह सारे नभ मण्डल में विचरण करता है और इन्द्र का वाहन हो

जाता है।[18]

आशय यह है कि हस्ति को प्रतीक रूप में, सबसे अधिक बौद्ध धर्म में स्थान मिला। हस्ति के इन्हीं सब रूपों को इतिहास से चित्रों के रूप में ग्रहण करके जन-जन तक पहुँचाने का कार्य तत्पर है।

8. **सिंह :** सिंह पशु जगत में सबसे शक्तिशाली पशु हैं वह अपने गुणों से शक्ति का प्रतीक बन गया है। भारतीय चित्रकारों ने भी शक्ति प्रदर्शन के लिए सिंह का चित्रण खुलकर किया है। चाहे वह आलेखनों में हो, चाहे देवी प्रतिमाओं और चित्रों के साथ और चाहे अशोक के स्तम्भों पर। देवियाँ स्वयं शक्ति का प्रतीक मानकर चित्रित की गई हैं। अतः सिंह का उनके वाहन के रूप में सम्बद्ध होना निश्चित था।

गौतम बुद्ध शाक्य देश के सर्वश्रेष्ठ पुरूष थे। अतः उन्हें शाक्य सिंह के रूप में जाना गया। अशोक ने इसी भाग को प्रदर्शित करने हेतु कोल्हुआ (वैशाली) तथा लोरियानन्दन (चम्पारन) के स्तम्भ शीर्षो पर सिंह शिल्प का लक्षण कराया। सांची और सारनाथ में चार सिंहों से युक्त स्तम्भ शौर्य उल्लेखनीय हैं। सिंह बुद्ध का प्रतीक माना गया।

अतः प्राचीन काल से लेकर आज तक मांगलिक चिन्हों के पीछे यह भावना शामिल रही है कि मनुष्य का जीवन सुखमय हो। विभिन्न धर्मों के प्रादुर्भाव का अभिप्राय मानव-जीवन में भद्र का सृजन था। आदिकाल से ही मनुष्य शान्तिपूर्वक जीवन-यापन की राह खोजता रहा। सुख शान्ति से जीवन-व्यतीत हेतु विभिन्न प्रतीकों के रूप में मनुष्य के सम्मुख अनेक मार्ग उपस्थित किये गये। इसी शुभ पक्ष के प्रतीकात्मक अंकन-स्वरूप चिन्हों एवं प्रतीकों के महत्व को स्वीकारा गया।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डा0 गिर्राज किशोर अग्रवाल - कला सौन्दर्य
2. डा0 मोहन लाल सिंह - कला सौन्दर्य के सिद्धान्त
3. डा0 विमल मोहिनी श्रीवास्तव - प्राचीन भारतीय कला में मांगलिक प्रतीक
4. हिन्दी साहित्य कोष - प्रतीक वाद
5. जगदीश गुप्त - प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला
6. कृष्णदत्त बाजपेयी - प्राच्य प्रतिभा (सम्पादकीय)
7. प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा
8. परिपूर्णानन्द - प्रतीक शास्त्र
9. डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल - भारतीय कला
10. मारकेण्य पुराण
11. अ डिक्शनरी ऑफ सिम्बल्स,
12. जर्नादन मिश्र - भारतीय प्रतीक विद्या
13. ई0बी0 हैवेल - इण्डियन आर्केटैक्टर
14. जार्ज वर्डवर्ड - सिम्बोलिज्म ऑफ द ईस्ट एण्ड वेस्ट भूमिका
15. लक्ष्मय्या शेट्टी - सूरसागर में प्रतीक योजना
16. डा0 गोपाल मधुकर चतुर्वेदी - भारतीय चित्रकला
17. ऋग्वेद
18. वासुदेव उपाध्याय - प्राचीन भारतीय मूर्त विज्ञान

UGC Journal No. 40942, Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXIV-I, Hindi Edition, Year-12, June, 2018

भारत में कचरे की समस्या (द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित)

* आकांक्षा सारस्वत
** दीपमाला श्रीवास्तव

सारांश– *भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है। अपनी विशाल जनसंख्या तथा उपभोगवादी मानसिकता की बदलती हुई स्थिति के साथ भारत प्रदूषण की समस्या से जूझ रहा है। प्रदूषण केवल वायु, जल एवं मृदा तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह कचरे से होने वाले प्रदूषण के रूप में भी फैला हुआ है। यह भी कहा जा सकता है की कचरा वर्तमान की समस्याओं (प्रदूषण सम्बन्धी) का जनक बना हुआ है। कचरे के भस्मीकरण से वायु प्रदूषण, जल में घुलने से जल प्रदूषण तथा जिस स्थान को डंपिंग प्लेस बनाया जाता है वहां पर मृदा प्रदूषण को उत्पन्न करता है। भारत में कचरे के प्रबंधन को लेकर अत्यधिक परेशान करने वाला तथ्य यह है कि जन सामान्य इसके प्रति जागरूक नहीं है अथवा अल्प जागरूक है। नगर पालिका (कुछ अपवादों को छोड़कर) कचरा प्रबंधन के नियमों को पूर्णतः अपनाती नहीं हैं। नगर पालिका ठोस अपशिस्ट (प्रबंधन एवं हथालन) नियम 2000 के नियमों को नगर पालिकाओं द्वारा पूर्ण रूप से अपनाया नहीं गया है। नगर पालिकाएं एवं प्रबंधनकर्ता अपने कर्तव्यों से विमुख हैं। भारत में 2014 से प्रारम्भ किये गए स्वच्छ भारत अभियान एवं स्वच्छता सर्वेक्षण ने कचरे के प्रबंधन की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। चूँकि कचरा प्रबंधन की दिशा में भारतीय अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किये गए शोध (कचरा प्रबंधन के क्षेत्र में) अत्यंत कम मात्रा में हैं अतः इस क्षेत्र में कचरा प्रबंधन के तरीकों को जानना जनसमुदाय तथा प्रबंधनकर्ताओं के बीच आपसी सहभागिता को समझना तथा इसके आधार पर ऐसे नियमों को खोज निकालना आवश्यक है जो इस दशा में लाभ पहुंचाए। अतः शोधपत्र लिखने का मेरा उद्देश्य कचरे के प्रबंधन में आने वाली समस्याओं को ज्ञात करना है जिससे समस्याओं के निराकरण हेतु उचित प्रयास किये जा सकें।*

मुख्य शब्द– प्रदूषण, भस्मीकरण, डंपिंग प्लेस, अपशिस्ट, स्वच्छता, नियंत्रण, स्वच्छ भारत अभियान।

प्रस्तावना– **वर्तमान भारतीय समाज में अनेक समस्याएँ है परन्तु एक समाजशास्त्री की भांति अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि वातावरण का प्रदूषित होना एक वृहद सामाजिक समस्या हैं। पर्यावरण के दूषित होने का सर्वाधिक प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर**

* शोध छात्रा, एम.फिल., समाजशास्त्र, इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर महाविद्यालय, आगरा (उ.प्र.)

** विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर महाविद्यालय, आगरा (उ.प्र.)

पड़ता हैं जो उसकी सामाजिक सहभागिता तथा भूमिकाओं के निर्वहन को प्रभावित करता है। पर्यावरण से सम्बंधित समस्याओं में जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं जलवायु परिवर्तन आदि हैं। उपर्युक्त सभी प्रदूषणों के प्रमुख स्रोत के रूप में कचरे का सही रूप से प्रबंधन न हो पाना विद्यमान है। कचरे का नालियों, सड़कों के किनारे ढेर देखा जा सकता है जो वर्षा के द्वारा बहकर नदियों में जाता है और बाढ़ का कारण भी बनता है। अतः इससे सम्बंधित विभिन्न आयामों को जानना तथा समझना अति आवश्यक है जिससे भविष्य में इस प्रकार की समस्या को कम किया जाए अथवा समाप्त किया जाए। विचारणीय प्रश्न यह है की कचरा लगभग सभी देशों में उत्त्पन्न होता है परन्तु भारत इस समस्या से छुटकारा नहीं प्राप्त कर पा रहा है जबकि जापान का कामिकात्सु शहर पूर्ण रूप से कचरा मुक्त घोषित कर दिया गया है। इसी प्रकार अन्य विकसित देश भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है की भारत में राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT), उच्चतम न्यायालय द्वारा कचरा प्रबंधन के क्षेत्र में लिए गए निर्णयों के प्रति जन सामान्य जागरूक हो तथा अपना सहयोग भी प्रदान करे।

उद्देश्य– वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में जहाँ एक ओर कचरे के प्रबंधन, प्रदूषण नियंत्रण एवं स्वच्छता के लिए पहल शुरू हुई है वहीं कुछ सामाजिक इकाइयाँ इस प्रकार की पहल (स्वच्छ भारत अभियान, स्वच्छता सर्वेक्षण) से अनभिज्ञ हैं अथवा स्वयं को अलग रखती हैं। इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्यों में जन जागरूकता की आवश्यकता को ज्ञात करना, भारत में तकनीकी यंत्रों तथा प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों एवं अभियंताओं की आवश्यकता को प्रस्तुत करना सम्मिलित है। भारत में तकनीकी के आयात की आवश्यकता है तथा इसके सुचालन हेतु अभियंताओं की भी। विशेष रूप से कचरे के प्रबंधन के लिए नवीन तकनीक अत्यंत आवश्यक है।

कचरा प्रबंधन में नगर पालिका की भूमिका को ज्ञात करना इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्यों में सम्मिलित है। अपशिष्ट प्रबंधन में नगर पालिका अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है की नगर पालिका एवं नगर निगम आदि इकाइयाँ अपने कार्य को जिम्मेदारी के साथ पूरा करें। कचरे के कुशल प्रबंधन तथा आर्थिक स्तिथि में सकारात्मक सह सम्बन्ध को ज्ञात करना- आर्थिक रूप से समृद्ध व्यक्ति अपनी अन्य आवश्यकताओं (शिक्षा, स्वस्थ्य, भोजन) की भांति ही स्वच्छता पर भी व्यय करते हैं जबकि आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाते हैं। कचरे के प्रबंधन में प्रचिलित अवधारणाओं को ज्ञात करना- कचरे के प्रबंधन पर समाज में प्रचलित अवधारणाओं का भी प्रभाव पड़ता है इसे ज्ञात करना आदि इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य हैं।

अवधारणात्मक विश्लेषण– कचरे से तात्पर्य प्रायः उन अनावश्यक वस्तुओं से है जिन्हें लोगों द्वारा प्रयोग नहीं किया जाने पर फेंक दिया जाता है। कचरा प्रदूषण का रूप तब लेता है जब हम उसे सही जगह पर नहीं फेंकते तथा उसका सही प्रबंधन नहीं करते। कचरे को अनेक भागों में बांटा जा सकता है- 1. घरेलू कचरा, 2. औद्योगिक कचरा, ३. इलेक्ट्रॉनिक कचरा आदि उपर्युक्त सभी प्रकार के कचरे को दो भागों में बांटा जा सकता है। जैव निम्नकरणीय कचरा एवं अजैव निम्नकरणीय कचरा। इन दो भागो में कचरे को विभाजित करने का आधार कचरे की निस्तारण की प्रक्रिया है। जीवाणु कवक या अन्य

जीवों के द्वारा जिन पदार्थों का रासायनिक विघटन किया जा सकता है वह जैव निम्नकरणीय अपशिष्ट कहलाते हैं जैसे की सब्जियों के छिलके, सड़े गले फल आदि। जबकि अजैव निम्नकरणीय कचरे में वे पदार्थ सम्मिलित होते है जो जीवों कवकों तथा रासायनिक विघटन द्वारा अपघटित नहीं हो पाते जैसे प्लास्टिक, कांच आदि। इस प्रकार के कचरे को विघटित करने हेतु भस्मीकरण की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। कचरे के प्रबंधन में कचरे की बढ़ती समस्या को कम करने तथा कचरे को सही रूप से निस्तारित करना सम्मलित होता है। कचरे का प्रबंधन उसके उद्‌गम स्थान से ही प्रारम्भ हो जाता है। सबसे पहले कचरे को उनकी विशेषताओं के आधार पर अलग अलग करना जैसे जैव निम्नकरणीय कचरा एवं अजैव निम्नकरणीय कचरे को अलग अलग करना होता है। इसके पश्चात कचरे को सुगमता पूर्वक उद्‌गम स्थान से निस्तारण के लिए परिवहन करना होता है। अंतिम रूप में कचरे को निस्तारित करके उर्जा की प्राप्ति एवं अन्य लाभ प्राप्त किये जाते हैं।

1. घरेलू कचरे में गत्ते, कागज, कांच, प्लास्टिक, पोलीथिन के पैकेट, धातुएं, सड़ी गली सब्जियां और अन्य तरह के सामान जो घरों से निकलते हैं को सम्मिलित किया जाता है।
2. औद्योगिक क्षेत्र से निकलने वाला कचरा पेंट, लेदर, प्लास्टिक, क्लोरीन कंपाउंड्स तथा हानिकारक रसायन आदि औधोगिक कचरा कहलाता है।
3. इलेक्ट्रोनिक कचरा से आशय किसी विद्युतीय उपकरण से है जो पुराना, टुटा-फूटा, खराब या बेकार होने के कारण फेंक दिया गया हो। इनमे से कुछ पुनर्चक्रित हो जाता है जबकि कुछ कचरा बन जाता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य–

वैश्विक परिदृश्य में देखने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में जन घनत्व अत्यधिक कम होने के कारण कचरा अत्यधिक कम मात्र में उत्सर्जित होता था जिसे लोग साधारण तरीके से निस्तारित कर लेते थे जैसे भूमि भरण विधि तथा भस्मीकरण विधि के द्वारा। परन्तु इसका पर्यावरण पर अत्यधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ता था जो की वायु प्रदुषण एवं जल प्रदूषण के रूप में देखा जाता रहा है। सेंट्रल अमेरिका में एक प्रथा प्रचलित थी जिसमें महीने के अंतिम दिन सामूहिक रूप से ग्रामीण एकत्रित होकर अपने अपशिष्ट को जला देते थे। जिससे पता चलता है की कचरे का प्रबंधन एक सामूहिक क्रिया के रूप में किया जाता रहा है।

इंग्लैंड में आई औधोगिक क्रांति के परिणाम स्वरुप नगरीकरण एवं जन घनत्व में अति वृद्धि हुई जिसके परिणाम स्वरुप नगरीय क्षेत्र की प्रवृति उपभोगवादिता की ओर बढ़ने लगी। उपभोगवादी मानसिकता में 'प्रयोग करो ओर फेंको' के विचार सम्मिलित थे। इससे कचरे की मात्र में तो वृद्धि हुई परन्तु इसके निपटान के नियमों का अभाव रहा जिसके परिणाम स्वरुप सड़कें, नालियाँ कचरे के कारण अवरुद्ध होने लगी जो की बाढ़ जैसी समस्याओं का कारण बनने लगीं। 1842 ईस्वी में सामाजिक कार्यकर्ता एडविन चेड्विक ने जन स्वाथ्य के लिए कचरे के प्रबंधन को आवश्यक बताया। उन्नीसवीं शताब्दी तक आते आते वैश्विक पटल पर लोगों में जागरूकता बढ़ी एवं कचरे की समस्या को गंभीरता से लिया जाने लगा एवं निपटान के तरीकों की खोज की जाने लगी।

भारत में स्थानीय स्वशासन अर्थात नगर पालिकाओं को नगरीय कचरे के प्रबंधन की जिम्मेदारी दी गयी है। 1990 के पश्चात जब मुक्त व्यापार, उदारवाद तथा वैश्वीकरण का प्रभाव बढ़ा तो कचरे के कई प्रकारों ने भारत में घर कर लिया जो मुख्यत: विदेशी कंपनियों के व्यवसायीकरण का प्रतिफल था। कचरे की समस्या को निपटने की लिए सन 2000 में नगर पालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हथालन) नियम बनाये गए जिसमे नगर पालिकाओं एवं प्रशासकों को कचरा प्रबंधन की जिम्मेदारी सोंपी गयी, इस क्षेत्र में कई प्रकार के NGO महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। निजी कर्मचारियों एवं कचरा बीनने वालों की भूमिका भी कचरे के प्रबंधन में महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान में कचरे से उर्जा प्राप्ति हेतु विदेशी तकनीकी को मंगाया जा रहा है तथा स्वच्छता सर्वेक्षण के माध्यम से लोगों इन में जागरूकता को बढ़ाया जा रहा है। अक्टूबर 2014 से प्रारम्भ स्वच्छ भारत अभियान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

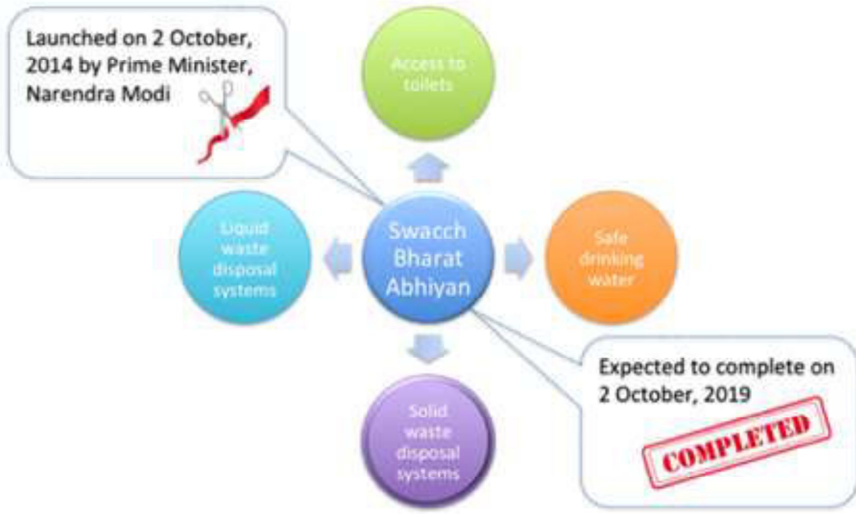

अत: वर्त्तमान में कचरा प्रबंधन स्वच्छ भारत अभियान के प्रमुख उद्देश्यों में सम्मिलित होने के कारण जन-जन तक पहुँच कर लोगों से सहयोग प्राप्त कर रहा है।

सम्बंधित साहित्य का पुनरावलोकन-

1. डॉ अनीता सावंत[1] ने अपनी पुस्तक ठोस अपशिस्ट प्रबंधन (2010) में अपने घरों से निकलने वाले कचरे को पुनर्चक्रण योग्य तथा गैर पुनर्चक्रण योग्य कचरे में वर्गीकृत किया है। इस वर्गीकरण का 80% भाग पुनर्चक्रण होता है जबकि केवल 20% भाग को ही गेन पुनर्चक्रण योग्य माना जाता है। पुनर्चक्रण से कंपोस्ट बनने की विधि तथा समय को प्रस्तुत कर कचरे से धनार्जन तथा रोजगार प्राप्ति के उपाय सुझाये हैं। इस प्रकार कचरे के प्रबंधन एवं उससे लाभ प्राप्ति हेतु उपायों को साकार करने के लिए जन जागरूकता की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है। कचरे के सही रूप से प्रबंधन करने एवं उससे लाभ प्राप्त करने के लिए आपने जन जागरूकता के महत्व को आवश्यक बताया है।

2. Agenes Jonton Kamara[2] **ने अपने अध्ययन** (Tswane Metropolitan Area) **में कचरा सम्बन्धी अध्ययन (2006) कर** Tswane **का कचरा सम्बन्धी अध्ययन किया है।**

आपने स्पष्ट किया है की आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्ति कचरे का कुशलता पूर्वक प्रबंधन करते हैं तथा प्रबंधन पर धन भी अधिक खर्चते हैं। दूसरी ओर गरीब तथा कम आय वाले व्यक्ति कचरे के प्रबंधन को गंभीरता से नहीं लेते ओर न ही इस पर अधिक धन खर्च करते हैं। इस प्रकार आपके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि धन शिक्षा एवं रोजगार कचरे के प्रबंधन को प्रभावित करते हैं।

3. Ramatta Yamasa Yodda[3] ने अपने अध्ययन में अफ्रीका के घाना देश के नगरीय क्षेत्र में कचरे के प्रबंधन का अध्ययन किया। आपने 364 परिवारों का अध्ययन किया जिसमे से 61% लोग कचरे को सही रूप से कूड़ेदान अथवा सड़कों के किनारे खाली स्थानों पर डालते हैं तथा लगभग 39% लोग कचरे को अव्यस्थित रूप से नालियों एवं गड्ढों में फेंक देते हैं। आपने अपने अध्ययन के लिए सूचना दाता के रूप में परिवारों के मुखिया का चयन किया तथा व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं प्रश्नावली के माध्यम से सूचनाएं प्राप्त कीं। अधिकांश सूचनाओं के द्वारा पता चला की वे कचरे के प्रबंधन की जानकारी को बच्चों के लिए आवश्यक मानते हैं तथा यह मानते हैं की कचरा प्रबंधन के प्रति नयी पीढ़ी को अधिक जागरूक होना चाहिए।

4. सुनील कुमार तथा स्टीफन आर स्मिथ[4] के द्वारा किये गए अपने अध्ययन में भारत के कचरा प्रबंधन में आ रही बाधाओं तथा समस्याओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। प्रमुख बाधाओं में से एक भारत में तकनीकी के लिए विदेशी आयात पर निर्भरता और इंजिनीयर्स की कमी है। आपने अपने अध्ययन में कचरा प्रबंधन के साधारण तरीकों जैसे भूमिभरण तथा भस्मीकरण की तुलना तकनीकी रूप से प्रबंधित किये जाने वाले कचरे से की है। आपने तकनीकी विधियों से कचरा प्रबंधन के लाभ को स्पष्ट किया है इसमें जल प्रदूषण को रोका जाना तथा छोटे जीवों कीटों एवं जानवरों के स्वास्थ्य को बचाना सम्मिलित हैं। नवीन तकनीकियों का प्रयोग करके कचरे का परिवहन एवं सुगमता पूर्वक निस्तारण किया जा सकता हैं।

5. राजकुमार जोशी तथा शिराजुद्दीन अहमद[5] द्वारा किये गए अध्ययन में नगर पालिका कचरा प्रबंधन की स्थिति तथा उसके सामने आ रही बाधाओं को प्रस्तुत किया है। भारत में कचरा प्रबंधन करने में नगर पालिका के समक्ष सबसे बड़ी बाधा जन जागरूकता की कमी हैं। अपने घर से कचरा निकल कर बाहर फेकने की मानसिकता भी प्रबंधन में बाधक है। आपने 'केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' तथा जनगणना 2011 से लिए गए द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया है। नगर पालिका द्वारा जनसहभागिता के माध्यम से नियमित रूप से कचरे को एकत्रित किया जाए उनका वर्गीकरण करके प्रबंधित किया जाये। आपने अपने अध्ययन में जैव निम्नीकरणीय साधनों के प्रयोग का सुझाव दिया है। आपने नगर पालिकाओं के लिए सुझाव दिया है कि भूमि भरण के समय भूमिगत जल को प्रदूषित होने से बचाए जाने के उपाय निकले जाएँ।

समस्या का विश्लेषण–

डॉ. अनीता सावंत के अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट होता है की कचरा एक अपशिष्ट पदार्थ मात्र न होकर धनार्जन तथा रोजगार प्राप्ति का महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है। वर्तमान में कचरा एक ऐसे समस्या है जो जन स्वास्थ को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है परन्तु विडम्बना यह है की इस समस्या को लोग जानते तो हैं लेकिन समझते नहीं।

लोगों के द्वारा इस समस्या को समझकर समाधान निकालने सम्बन्धी जागरूकता में कमी है।

Agenes Jonton Kamara के द्वारा किये गए अध्ययन में स्पष्ट किया गया है की कचरे का प्रबंधन धनी, शिक्षित एवं समृद्ध व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। इस विषय में वर्तमान भारतीय समाज भी एक उदाहरण प्रस्तुत करता है। भारत में औधोगिक क्षेत्रो एवं उसकी आसपास की कॉलोनियों में कचरे का सही निपटान होता है तथा कचरे की समस्या उत्पन्न नहीं होती। चूंकि राजनीतिक पहुँच होने के कारण यहाँ नगर पालिका सफाई कर्मचारी नियमित रूप से पहुंचते हैं साथ साथ वे अपने निजी सफाई कर्मचारी भी लगा लेते हैं। कचरे का सही तथा नियमित परिवहन भी होता है। मथुरा शहर के सिविल लाइन्स व चंदनवन कालोनी वाले क्षेत्र उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं जहाँ साफ सफाई के प्रति लोगों में जागरूकता है। इसके विपरीत कुछ कॉलोनियां चंदा कॉलोनी, गोपाल नगर आदि धन के अभाव में कचरे का सही रूप से प्रबंधन नहीं कर पाते हैं अतः I genes Jonton Kamara का अध्ययन भारतीय परिप्रेक्ष के लिए भी लाभकारी है।

Ramatta Yamasa Yodda के द्वारा किये गए अध्ययन में स्पस्ट है की सौ में से 61% लोग कचरे को व्यवस्थित रूप से कूड़े दान तथा सही जगह पर डालते हैं जबकि 39% लोग अव्यवास्थित रूप से इसे फेंकते हैं। भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित मथुरा शहर को लें तो यह आंकड़ा सही प्रतीत नहीं होता। मात्र कई अधिकांश भाग में 61% (लगभग) अव्यवस्थित रूप से कचरे को घर के आस पास पड़ी खाली जमीन, नालियों, नालों तथा कूड़ेदानों के बाहर ही फेंक देते हैं जो यमुना प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण का प्रमुख कारण बनता है। अतः भारत में Yodda द्वारा किये गए अध्ययन से प्राप्त सूचना को सही प्रतीत करने के लिए प्रयास करने होंगे।

सुनील कुमार तथा स्टीफन आर स्मिथ द्वारा किये गए अध्ययन में कचरे के परिवहन तथा निस्तारण के लिए अच्छी तथा नयी तकनीक की आवश्यकता पर बल दिया है। भारत के किसी-किसी क्षेत्र में कचरे से उर्जा बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं इन प्रयासों के लिए विदेशो से तकनीकी सहायता ली जा रही है। इसमें सबसे बड़ी बाधा भारत में तकनीकी यंत्रों की कमी है तकनीकी सहायता तथा अभियंताओं की मदद से न केवल कचरे को सही

रूप से प्रबंधित किया जा सकता है बल्कि उससे उर्जा के नवीन स्रोतों को भी प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में नगर पालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हथालन) नियम 2000 की धज्जियाँ भी उड़ाई जाती देखी जा सकती हैं इसके तहत नगर पालिकाओं का यह कर्तव्य है की वे कचरे का सही तथा नियमित परिवहन करे, उसके पुनर्चक्रण तथा निस्तारण की उचित व्यवस्था करें। परन्तु वास्तिवकता तो यह है की नगर पालिकाओं के कूड़ेदान (हरे व नीले) स्टोर रूम में ही पड़े रह जाते हैं, वे ले जाते ही नहीं। यदि ले जाए भी जाते हैं तो उन्हें भरने के पश्चात तत्काल संग्रहित नहीं किया जाता और कचरा कूड़ेदानों से ऊपर निकलकर आसपास के क्षेत्र में गिरता रहता है। इस प्रकार के उदाहरण मथुरा तथा आगरा के नगर निगम क्षेत्रों में भी देखे जा सकते हैं परन्तु इसमें कुछ क्षेत्रों को अपवाद के रूप में भी लिया जा सकता है।

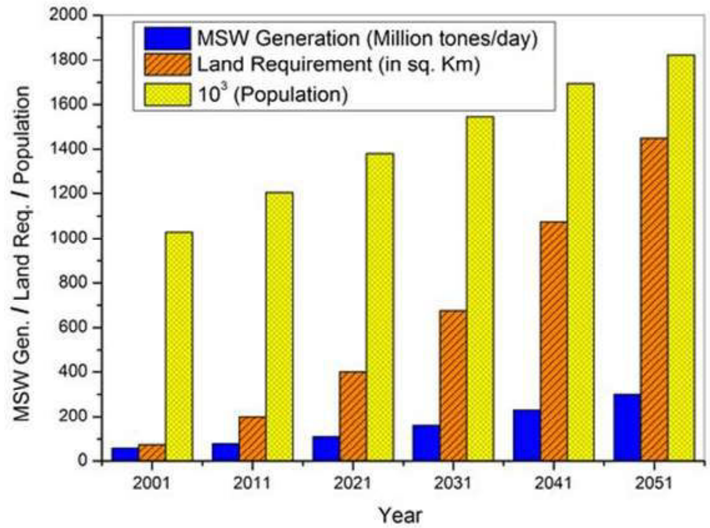

2001 से 2011 तक के प्रस्तुत आंकड़े प्रायः स्पष्ट करते हैं की जिस गति से जनसंख्या वृद्धि हो रही है तथा भूमि की आवश्यकता बढ़ रही है उसी क्रम में नागरिक ठोस अपशिष्ट में भी वृद्धि देखी जा सकती है।

निष्कर्ष– भारत में मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में कचरा प्रबंधन की समस्या अनेक स्वास्थ्य समस्याओं को उत्पन्न कर रही है। पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन तथा जन स्वास्थ्य की समस्याओं के चलते यह आवश्यक हो गया है की कचरे की प्रबंधन सम्बन्धी जानकारी से जन सामान्य को परिचित कराया जाए एवं उन्हें जागरूक बनाया जाए। वर्तमान में खुले में पड़े कचरे को किया जाय जो की वायु प्रदुषण रोकने का एक कदम है। भूमि भरण की प्रक्रिया का प्रयोग कर उर्जा की प्राप्ति की ओर लोगों को जागरूक किया जा रहा है तथा बायोगैस की प्राप्ति हेतु भूमिभरण की प्रक्रिया का प्रयोग किया जा रहा है। प्लास्टिक एवं रबर उत्पादों को सड़क निर्माण कार्यों में प्रयोग किया जाने भी एक सराहनीय प्रयास हैं। स्वच्छ भारत अभियान, स्वछता सर्वेक्षण, स्मार्ट सिटी मिशन आदि कचरे के प्रबंधन को एक सकारात्मक दिशा प्रदान कर रहे हैं। उपर्युक्त प्रयासों का लाभ तब ही प्राप्त किया जा

सकता है जब जनजागरूकता, पर्यावरण शिक्षा को सभी तक पहुंचाया जाए। चूँकि भारत 'मेक इन इंडिया' को प्रोत्साहन दे रहा है अतः कचरे का पुनर्चक्रण देशी रूप में किया जाये जैसे प्लास्टिक बोतल, पोलीथिन आदि को पुनर्चक्रित कर सड़क निर्माण आदि में प्रयोग किया जाए तथा ये कार्य बेरोजगारों को रोजगार भी प्रदान करे। इसके द्वारा न केवल कचरे की समस्या दूर होगी बल्कि प्रदूषण से मुक्ति मिलेगी एवं रोजगार तथा उर्जा की प्राप्ति होगी।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. डॉ. अनीता सावंत,'ठोस अपशिष्ट प्रबंधन', परिवेश भवन, पूर्वी अर्जुन नगर, दिल्ली
2. Agenes Jonton Kamara 'Household participation in Domestic Waste disposal and recycling in the Tswane metropolitan area' University of South Africa (2006).
3. Ramatta Yamasa Yodda and others, 'Domestic Waste Disposal Practices and Perceptions of Private Sector Waste Management in Urban Accra' University of Ghana (2014)
4. Sunil Kumar, Stephan R Smith and Others 'Challenges and opportunities associated with waste management in India (2017)'
5. www.royalsocietypublishing.org
6. राजकुमार जोशी तथा शिराजुद्दीन अहमद, 'Status and Challenges of Municipal Solid Waste Management in India : A Review'
7. Jamia Millia University New Delhi (2016)
8. Images source: Google image search

RNI No MP BIL 01034 / 12 / 1 / 2005 - TC
REGISTRAR OF NEWS PAPERS IN INDIA, GOVT. OF INDIA

ISSN 0973-3914
9 770973 391009

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802,Year-1997
www.researchjournal.in

Editor : Prof. Braj Gopal, Printed and Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications, 41/42 Raghuwans Sadan, Bichhiya, Rewa, 486001 (MP) and Printed at Yuvraj Press, Ghoghar, Raniganj, Rewa 486001 (MP)